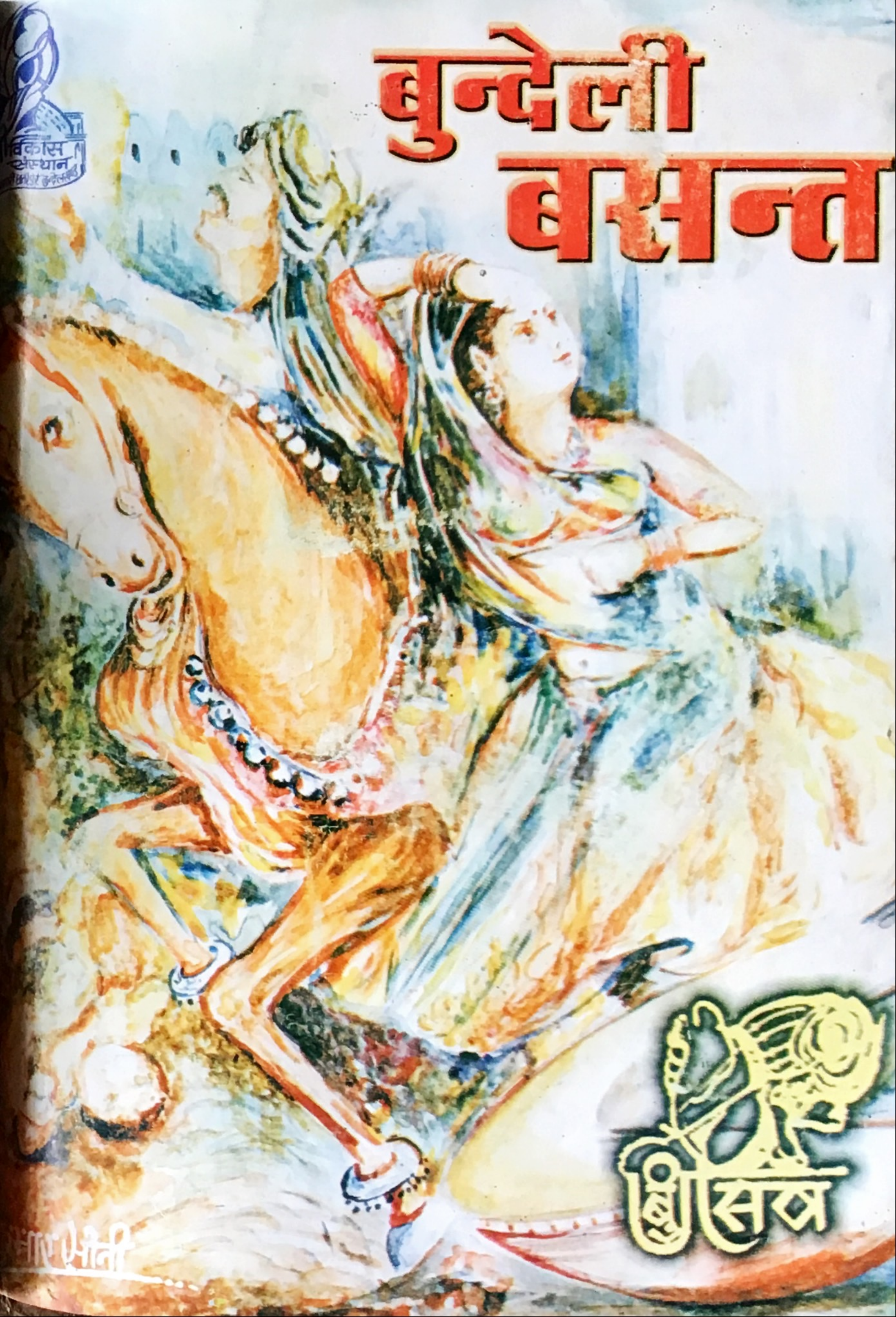
बुन्देली बसन्त



देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली बसन्त

अंक 1 वर्ष 1 10 फरवरी 2003

संरक्षक :

शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१२९०, २४१४२९

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

४/२, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : (०७६८२) २४४१३३

सह संपादक :

डॉ. के. एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४३०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२५१

✦

☐ संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

✦

☐ **आवरण चित्र :**

रामकुमार सोनी, छतरपुर (म.प्र.)

✦

☐ **छाया चित्र :**

आर.के. स्टूडियो एवं दिनेश पटेल, छतरपुर

✦

☐ कीमत :

५०/— (पचास रुपये)

✦

☐ **संगणकीय अक्षर संयोजन :**

जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर

✦

☐ **मुद्रक :**

जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
छतरपुर (म.प्र.) ☎: (०७६८२) २४८६८६

✦

☐ **आवरण मुद्रण :**

प्रियंका आफसेट, भोपाल (म.प्र.) ☎: (०७५५) २५५५७८९

✦

अनुक्रम

भाषा, साहित्य एवं आलोचना –

- बुन्देली लोकरागिनी सैर में राष्ट्रीय भावना – *डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी* १४
- कहनी करनी करि गयो, एक व्यास इहि काल – *जगदीश प्रसाद रावत* ३१
- कालिदासकालीन विंध्यखंड – *डॉ. कन्हैयालाल 'कलश'* ३४
- कलगी सम्प्रदायी ख्यालकार भोगीलाल – *डॉ. श्रीनारायण पाठक* ३९
- फड़काव्य परम्परा के कवि : रामसहाय कारीगर – *डॉ. दयाराम वर्मा 'बेचैन'* ४३
- अज्ञात प्रतिभा अमान सिंह गोटिया (तालुकेदार) – *डॉ. गंगा प्रसाद बरसैंया* ४५
- ईसुरी की फागों के पाठ – निर्धारण की चुनौती – *घनश्याम कश्यप* ४७
- बुन्देली के माधुर्य का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण – *डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी* ५१
- बुन्देली बोली की साहित्यिक भाषा : समस्याएँ और समाधान – *पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'* ६३
- अप्रकाशित कृति : खाण्डेराय रासो – *डॉ. लखन लाल खरे* ६५
- कहावतों की उत्पत्ति : कुछ ऐतिहासिक कहावतें – *डॉ. वीरेन्द्र 'निर्झर'* ६८
- बुन्देली लटके – *माधव शुक्ल 'मनोज'* ८१
- बुन्देली लोकगीतों में दलित चेतना – *डॉ. आर.बी. पटेल* ८२
- बुंदेली जिंकड़ी भजनों की कथात्मकता एवं दार्शनिकता – *डॉ. सुश्री शरद सिंह* ८४
- छतरपुर जिले का मध्ययुगीन रीतिकाव्य और ललितकलाओं का अन्तर्सम्बन्ध – *श्रीनिवास शुक्ल* १०१
- बुन्देली के विरोधाभासी शब्द युग्म – *सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'* ११६

संस्कृति –

- बुन्देली बेटियों की कला साधना – *विंध्य कोकिल पं. भैया लाल व्यास* १७
- बुन्देलों की आराध्या : विन्ध्यवासिनी देवी – *उदयशंकर दुबे* २३
- बुन्देली लोक जीवन में नवधा भक्ति – *डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'* ५६
- संकल्प व्रत – कार्तिक स्नान – *डॉ (श्रीमती) मधु श्रीवास्तव* ६०
- बुन्देली बालिकाओं का खेल : चपेटा – *आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल* ७३
- लोक संस्कृति के संरक्षण की दिशा – *अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'* ७८
- लोकजीवन में लोकोत्सव का महत्व – *सुधा रावत 'क्षमा'* ८६
- एक लोकखेल : तूरमार – *साकेत सुमन चतुर्वेदी* ८९
- कार्तिक स्नान : परंपरा और विधि – *कु. रामकिशोरी गुप्ता* ९६
- बल्देवगढ़ की विन्ध्यवासनी देवी – *रमेश शंकर सक्सेना* ९८
- भक्ति और शौर्य के प्रतीक कारसदेव – *डॉ. दुर्गेश दीक्षित* १०५

इतिहास एवं पुरातत्व –

- बुन्देलखण्ड के सूर्य मन्दिर एवं सूर्य विग्रह – *हरिविष्णु अवस्थी* १
- मातृभूमि के सजग प्रहरी वीर चंपतराय और लाल कुंवरि – *हरगोविन्द तिवारी* ७
- बुन्देलखण्ड नाम क्यों और कब से – *स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य* २५
- मरहठा–बुन्देला सम्बन्ध और छत्रसाल – *राधाकृष्ण बुन्देली* २७
- किला मनियागढ़ एवं राजगढ़ – *डॉ. के.पी. त्रिपाठी* २८
- महाराज छत्रसाल और मराठे – *कुँ. सुरेन्द्र सिंह बुन्देला/डॉ. आर.के. अग्रवाल* ३६

- राजगुरु एवं राजमंत्री ओरछा : कन्हरदास — *डॉ. रामनारायण शर्मा* ५३
- बुन्देलखण्ड का गौरव : महाबलि गामा — *डॉ. परशुराम शुक्ल* ९१
- बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक युद्धों में — जानवरों की भूमिका — *जगदीश किंजल्क* ९४
- बुन्देली जनश्रुतियों में इतिहास—तत्व — *डॉ. हरिसिंह घोष* १०८
- शाहगढ़ : वो भूली दास्तां... — *राघवेन्द्र सिंह ठाकुर* ११०
- छतरपुर जिले का उत्तरगुप्त, प्रतिहार एवं चन्देलकालीन मंदिर स्थापत्य — *डॉ. चन्द्रमौलि शुक्ल* ११२

बुन्देली काव्य —

- ऊरीं तरइंयाँ — *शिवाजी चौहान* २२
- कैसें माने के आओ बसंत — *डॉ. प्रेमलता नीलम* २६
- रामगीत — *श्रीमती विजया केलकर* ३३
- राष्ट्रीय गीत — *जगन्नाथ प्रसाद 'सुमन'* ३८
- गाँव के तारे — *पूजा ठाकुर* ३८
- बुन्देली युगल गीत — *सुनील केशव देवधर* ५०
- बुन्देली चौकड़ियाँ — *डॉ० कुन्जीलाल पटेल 'मनोहर'* ५०
- चपेटा — *डॉ. ए.के. जड़िया* ५५
- गोरी—धना किसान की — *कल्याणदास साहू 'पोषक'* ५९
- फागुन — *डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक'* ६२
- न रोपौ गाड़े सें पाड़ौ — *गोपाल दास रूसिया* ७०
- चौकड़ियां फाग — *डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर* ७२
- सड़कें — *गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त* ७२
- आज काहे के लाने अबेर कर दई — *कमल सिंह सोलंकी* ८५
- चौकड़ियां — *लल्लूमल चौरसिया* ८५
- गीत — *डॉ. हरिसिंह घोष* १२१
- जौ लरका... — *डॉ. अमिता अरजरिया* १२३
- खड़ी फागें — *मुन्नीलाल चौबे* १२३
- दूसरे में आबे की कान लगे... — *श्रीमती विजयश्री बुन्देला* १२७

बुन्देली गद्य —

- छोटौ ठेकेदार (लघुकथा) — *निहाल अहमद सिद्दीकी* २०
- पतिव्रता—पंवार पुत्री (लोक कथा) — *डॉ. कृष्णानन्द हुण्डैत* २१
- सरग (लघु कथा) — *निहाल अहमद सिद्दीकी* २४
- तुम चलौ हम आउतइ (संस्मरण) — *डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल''* ३२
- कवि कीं चतुरई (लोककथा) — *डॉ. नारायण दास 'कमलेश'* ६७
- सौना औ रूपा (लोककथा) — *रवि प्रताप रावत* ७१
- महिला संगठनन कौ महत्त्व (निबंध) — *कुन्ती व्यास* ७६

अन्य —

- दुर्गाउत्सव के अवसर पर बुन्देली लोकगीतों, लोकनृत्यों एवं बुन्देली कवि सम्मेलन का सफल आयोजन — *हशमत छतरपुरी एवं अनुराग खरे* १२१
- उतसौ में बढ़ चढ़कें भाग लेव — *श्रीमती विजयश्री बुन्देला* १२२
- बुन्देलखण्ड की झांकी बना बुन्देली उत्सव — *भरत श्रीवास्तव* १२४
- कार्टूनो में बुन्देली उत्सव — *नीरज सोनी* १२६
- *आयोजन समितियां* १२९

संपादकीय –

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में संसार को सूचना तकनीक के बल पर गाँव घोषित किया जा रहा है किन्तु विचारणीय प्रश्न है कि सूचना तकनीक की सुविधायें कितने लोगों के पास हैं? अभी भी संसार में अधिसंख्य जनसंख्या रोजी–रोटी, शिक्षा तथा आवास की मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। लोगों की आत्मा लोक में बसती है, जहां भौतिक विकास ने अभी दस्तक दी है। लोक गाँव की गली में, शहर की कुलियों में तथा महानगरों की पुलियों (पाइपों–झुग्गियों) में निवास करता है। मैं जब 'लोक क्या है?' पर विचार करता हूँ तो एक विचारक के इन विचारों से सहमत होता हूँ कि ''लोक वही है जो गाढ़े की कमाई खाता है, एड़ी–चोटी का पसीना एक करता है, दिन–रात जमीन–आसमान एक किये रहता है, जीवट का आदमी है जो तेली के बैल की तरह चक्कर काटता रहता है, जो दिन को दिन नहीं तथा रात को रात नहीं समझता। जिसकी जिन्दगी में रोजगार छूटना और लगना लगातार लगा रहता है। जिसके बल पर जमीन सोना उगलती है जो बैलों की तरह जुत–जुत कर मरता है यानि गढ़ता है वह और भरता है संसार।'' कहने का तात्पर्य यह है कि लोक वह नहीं है जिसे अभिजनों ने पिछड़ा, संस्कारहीन, अंधविश्वासी तथा गँवारू घोषित कर रखा है। सच्चे मायने में अर्थगत आइने से देखें तो लोक उत्पादक है और संसार उपभोक्ता। इस उत्पादक वर्ग अथवा लोक तक विकास की किरण पहुंची तो है किन्तु जिस अनुपात में पहुंचना चाहिए थी नहीं पहुंच पाई है। लोक की व्यापक आवश्यकताओं को लोकतंत्र में प्रतिनिधियों ने महसूस किया और उनको पूरा करने का जतन भी किया है। इसी परम्परा में बुन्देलखण्ड अंचल के छतरपुर के जनप्रतिनिधि श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' ने राजनीति को अपना जनसेवा का माध्यम बनाया और इसके साथ इन्होंने महसूस किया कि आर्थिक विकास के साथ हमें इस अँचल के सांस्कृतिक विकास में भी काम करना चाहिए क्योंकि लोक संस्कृति भारतीय जनतंत्र की धड़कन है क्योंकि इसमें भारत का जन–मन बसता है। आज जनमन में बदलाव आने से लोक संस्कृति में अनेक परिवर्तन दृष्टव्य हैं। इन परिवर्तनों से लोकदर्शन, लोक आचरण तथा लोक कलायें भी बच नहीं पा रहीं हैं। व्यावसायिकता के बढ़ते जोर तथा वैज्ञानिक अविष्कारों से प्राप्त सुविधाओं के फलस्वरूप लोक का स्वरूप परिवर्तित हो जहाँ एक ओर विकास की ओर उन्मुख हो रहा है, वहीं दूसरी ओर इसमें विकृतियाँ भी आ रही हैं। लोककलायें पहले सहज व सरल रूप में विकसित होती थीं और आज भी हो रही हैं किन्तु बढ़ती चमक–दमक तथा प्रदर्शनप्रियता से इसमें परिवर्तन आ रहे हैं। अब बुन्देलखण्ड अँचल के गाँवों में विवाह संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों की तानें कम सुनाई देती हैं। कतकारियों के गीत, रमटेरा की तानें, देवी के भजन तथा नौरता की काँवरों के बोल अभी सुनने को मिल रहे हैं, किन्तु ये विलुप्त न हो जायें? इन सभी विधाओं के कलाकारों को प्रोत्साहन मिले इसके लिए बुन्देली उत्सव के माध्यम से प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस आयोजन से अंचल में सांस्कृतिक चेतना तो झंकृत हुई है। इस तरह के आयोजन अब पूरे बुन्देलखण्ड में हो रहे हैं जिससे लोककलाकारों को आर्थिक संबल के साथ अपनी कला दिखाने का अवसर मिल रहा है।

'बुन्देली बसंत' के प्रकाशन की पहल को प्रोत्साहित कर आप सबने गति दी है जिसका प्रतिफल है यह अंक। इस अंक में हमने बुन्देलखण्ड के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। लोकसाहित्य की विधाएं मौखिक परम्परा में रहती हैं। जो आज हस्तांतरित नहीं हो पा रही हैं। इससे वृद्ध पीढ़ी के साथ बहुत अधिक मात्रा में लोकसाहित्य

काल के गाल में समाहित हो रहा है। इसका संकलन करने की महती आवश्यकता है। हमने 'सौना और रूपा' तथा 'पतिव्रता पँवार पुत्री' जैसी लोककथाओं का संकलन इसमें छापा है। बुन्देली का भाषाभण्डार अत्यधिक समृद्ध है। इसको प्रस्तुत करने में भाई सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' दिनरात परिश्रम करते हैं। इन्होंने बुन्देली के विरोधी शब्द–युग्मों का संकलन कर उनका अर्थ हिन्दी में दिया है, जो हमने प्रकाशित किया है। इसके साथ ही जहाँ बुन्देली के माधुर्य का भाषा वैज्ञानिक विवेचन इस अंक में है। वहीं बुन्देली की साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापना की समस्याओं पर चर्चा एवं समाधान दिया है। बुन्देलखण्ड के विलुप्त होते खेलों पर प्रकाश डालने हेतु 'तूरमार' तथा 'चपेटा' के बारे में एवं 'गामा' जैसे इतिहास प्रसिद्ध पहलवान के बारे में जानकारी दी गई है। अल्पज्ञात व अज्ञात रचनाकारों को प्रकाशित करने के क्रम में अमान सिंह गोटिया, भोगीलाल, रामसहाय कारीगर, कन्हरदास के कृतित्व को रेखांकित करने के साथ 'खाण्डेराय रासो' के बारे में जानकारी प्रकाशित की है। बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक पक्ष को उजागर करने हेतु चंपतराय और लालकुंवरि, छत्रसाल और मराठे आलेख इस अंक में हैं। 'किला मनियागढ़ और राजगढ़', 'बुन्देलखण्ड के सूर्य मंदिर' तथा छतरपुर जिले के प्रतिहार कालीन मंदिर संबंधी आलेख यहां की पुरातात्विक धरोहर को प्रस्तुत करते हैं। बुन्देली लोकसंस्कृति के विविध पक्षों को उद्‌घाटित करने वाले आलेखों के साथ 'ईसुरी की फागों का पाठ निर्धारण' सम्बन्धी लेख एक नई दृष्टि देता है। हमने समकालीन बुन्देली गद्य को 'महिला संगठनन कौ महत्व', 'तुम चलौ हम आउतइ' निबंधों के माध्यम से तथा लघुकथाओं द्वारा संकलित करने का प्रयत्न किया है। इसके साथ ही समकालीन बुन्देली कविताओं में सामाजिक, राष्ट्रीय तथा आर्थिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। आज के आतंकी एवं बाजारू परिवेश में बुन्देली संस्कृति व साहित्य के साथ भारतीय लोकसंस्कृतियों का लोकसाहित्य की अस्मिता व स्वाभिमान की रक्षा हेतु प्रयत्नशील रहने का संकल्प लेने का आव्हान भी हमने विगत अंक में किया था, निश्चय ही उसके धनात्मक परिणाम हमें मिले हैं। हमारी संस्था ने इस ओर दो कदम और आगे बढ़ाये हैं – प्रथम बुन्देलखण्ड की पुरातात्विक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धरोहर को खोजने, उजागर करने एवं संजोकर रखने के लिये बुन्देलखण्ड संग्रहालय की योजना बनाकर तथा द्वितीय प्रकाशन की व्यवस्था सुनियोजित ढंग से प्रारंभ करके। यह सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण एक यज्ञ है जिसके लिये आप सबको वैचारिक साकल्य और संग्रहण की समिधा जुटाना ही पड़ेगी ताकि यह सहज ही पूर्णता पा सके।

इस अंक से 'बुन्देली बसन्त' का पंजीयन भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक कार्यालय से हो गया है। इसके पूर्व अंकों को इसी की कड़ी माना जाये। अब 'बुन्देली बसन्त' को अनियतकालिक बुन्देलखण्ड के साहित्य संस्कृति तथा इतिहास की पत्रिका के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। इसका प्रकाशन हमारे सुधी एवं विद्वान लेखकों तथा पाठकों के सहयोग के बिना असंभव है। लेखकों, पाठकों तथा सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए हम आशा व्यक्त करते हैं आप सभी के सतत् प्रयत्न से बुन्देली बसन्त एक महत्वपूर्ण दस्तावेज बन सकेगी।

बहादुर सिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की —

बुन्देलखण्ड अंचल की सांस्कृतिक धरोहर को संवर्धितत, संरक्षित करने तथा लोक कलाकारों के उत्साहवर्धन हेतु बुन्देली उत्सव का आयोजन एवं स्मारिका का प्रकाशन एक अच्छा प्रयास है। मेरी शुभकामनाएं एवं आशीर्वाद आपके साथ हैं।

— **सुमित्रा महाजन,**
महिला एवं बाल विकास राज्य मंत्री,
भारत सरकार नई दिल्ली

"बुन्देली बसन्त'' स्मारिका को मनोयोगपूर्वक पढ़ा। मेरे लिए स्मारिका बहुत महत्वपूर्ण है। बुन्देलखण्ड से संबंधित विविध विषयों पर प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री अनुसंधित्सुओं और सुधी पाठकों के लिए विशेष उपयोगी है। इतनी सुन्दर, मनमोहक तथा संस्कृति के विविध आयामों से युक्त स्मारिका का प्रकाशन कर बुन्देली विकास संस्थान ने बुन्देलखण्ड का भला तो किया ही है साथ ही हिन्दी जगत के समक्ष एक नया आदर्श रखा है। पत्रिका की संपादकीय की मैं भूरि—भूरि प्रशंसा करता हूँ और आपके इस कथन से पूर्ण सहमत हूँ कि "पचास वर्ष पहले का... लोकजीवन इससे अछूता नहीं है।'' बुन्देली उत्सव का आयोजन कर श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला ने बुन्देली संस्कृति के उत्थान के लिए एक महत्वपूर्ण काम किया है।

उन्हें हार्दिक बधाई।

—उदय शंकर दुबे
'साहित्य कुटीर'
कठारी बाजार, खमरिया, वाराणसी उ.प्र.

आधुनिक संसाधनों की सुख—सुविधाओं ने बुन्देलखण्ड के लोगों को अपने मौलिक वैभव से अलग थलग होने की साजिस भरी क्रान्तिकारी लहरों ने बुरी तरह से प्रभावित करना प्रारंभ कर दिया था। पुरानी पीढ़ी के साथ ही हमारी जमीन का जमीर अलविदा होता प्रतीत होने लगा था। इसको सबसे पहले भांपने वाले बुन्देली विकास संस्थान बसारी के संस्थापक संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' ने सांस्कृतिक विरासत के पुराने कंकाल में नवीन प्राणों का ऊर्जावान प्रस्फुटन किया है। इस बाल को बुन्देलखण्ड के किसी भी क्षेत्र के बूढ़े विद्वानों से प्रमाणित कराया जा सकता है। शंकर प्रताप सिंह जी बुन्देला के प्रयास शोधार्थियों को शोधकार्य के लिये मौलिक विषय, नवीन दिशाय देकर उपकृत करेंगे, हमें ऐसा विश्वास है।

— **डॉ. लखन लाल खरे,**
सहा. प्राध्यापक
शास. महाविद्यालय, कोलारस, शिवपुरी

'बुन्देली बसंत' का अंक प्राप्त हुआ। आवरण सज्जा से लेकर विषय वस्तु तक सम्पूर्ण अंक 'बुन्देलीरस' से सराबोर है। अंक में संजोया इतिहास, भूगोल, संस्कृति, सभ्यता, रीतिरिवाज इसे संग्रहणीय बनाने में अपना योग दे रहे हैं। वस्तुत: यदि किसी को 'बुन्देलखण्ड' को जानना है तो उसे इस अंक के अतिरिक्त कुछ देखने पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

प्रयास के लिए मेरी बधाई स्वीकार करें।

— **विभूति मिश्र**
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

बुन्देली उत्सव के माध्यम से जहां एक ओर समूचे बुन्देलखण्ड के उपेक्षित लोककलाकारों को अपनी कला प्रदर्शन का अवसर मिलता है। वहीं दूसरी ओर इसी मंच से सामंतवाद के विरुद्ध चेतना जागृत करने हेतु नाटकों का मंचन होता है। जिसमें सामन्तवाद के फलस्वरूप समाज में फैली अशिक्षा, अन्याय, कुरीतियां, शोषण तथा अन्धविश्वासों के खिलाफ चेतना जगाने का काम बुन्देली उत्सव करता है।

—विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास
छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव के माध्यम से बुन्देलखण्ड में एक सांस्कृतिक चेतना आयी है। आज भूमण्डलीयकरण के प्रभाव से हम विदेशी संस्कृति के प्रभाव में आ रहे थे। उससे मुक्त हो हम अपनी बोली—वानी, माटी के विसरते प्रेम को पुन: जगाने में बुन्देली उत्सव के माध्यम से सफल हो रहे हैं। इस अवसर पर बुन्देलखण्ड अंचल के साहित्य, इतिहास एवं कला के क्षेत्र में काम करने वाले साधकों को स्व. रावबहादुर सिंह बुन्देला सम्मान से सम्मानित करने का जो कार्य हो रहा है उससे कला साधकों को प्रोत्साहन मिल रहा है। यह प्रयास सराहनीय है।

— **डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त**
मंगलम, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

अपुन की पत्रिका मिली। मन में भौतई खुसी भई। अपनु सांचउ बुन्देली कौ उजयारौ कर रये। बधाई स्वीकारें। 'बुन्देली बसन्त' में सब रुचि के आलेख हैं। थोड़ी बहुत

बुन्देलखण्ड की संकलित सामग्री राखें तौ भौतई नौनो रैहै।

—डॉ. रामनारायण शर्मा,
६९५/३, सिविल लाइन्स, झांसी (उ.प्र.)

✉

आपके द्वारा भेजी गयी 'बुन्देली बसन्त' का अंक प्राप्त हुआ। आपने सामग्री को सूझबूझ के साथ संजोया है। बुन्देलखण्ड के लोक को समझने के लिए यह अंक संदर्भ ग्रंथ का काम करेगा।

—डॉ. श्याम सुन्दर दुबे
हटा, जिला दमोह (म.प्र.)

✉

बुन्देली उत्सव के बहाने बसन्त वाकई बसंत सौ सजा दैबे कै लाने आई है। ई पत्रिका में बुन्देली माटी कौ खजानौ देसभर में जानौ है। हमें तौ पढ़कें भौतई खुसी हो रइ।

—डॉ. बारे लाल, हिन्दी विभाग,
अवधेष प्रताप सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.)

✉

आपके द्वारा सम्प्रेषित 'बुन्देली बसन्त' का अंक प्राप्त हुआ। बुन्देली संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्धन करने में काफी सहायक है। मामुलिया तथा ईसुरी के समकक्ष है। आपका प्रयास सराहनीय है।

— डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'
श्यावरी, जिला झांसी, (उ.प्र.)

✉

आप लोग विगत वर्षों से बुन्देली क्षेत्र के साहित्य, संस्कृति, खेल आदि के आयोजनों द्वारा जो सेवा करते आ रहे हैं वह स्तुत्य है।

— रामशंकर द्विवेदी
१२६०, नयारामनगर, उरई (उ.प्र.)

✉

'बुन्देली बसन्त' की विषय सामग्री, प्रिंटिंग, फोटोग्राफी सभी कुछ रोचक, ज्ञानवर्धक, आकर्षक एवं सार्थक है। आप लोगों के कुशल संपादन ने इसमें चार चांद लगा दिये हैं। बुन्देली उत्सव एवं स्मारिका यों ही अपने प्रगतिपथ पर निरंतर बढ़ती रहे यही हमारी हार्दिक शुभकामना है।

—साकेत सुमन चतुर्वेदी
७२१, एबट गंज, चित्रा चौराहा झांसी, (उ.प्र.)

✉

'बुन्देली बसन्त' का अंक पढ़ते ही हार्दिक आनन्द की अनुभूति हुयी। साज–सज्जा तथा अन्य सामग्री की दृष्टि से स्मारिका बहुत ही सुन्दर और सारगर्भित है। इतनी शानदार शोधपूर्ण सामग्री स्मारिका के प्रकाशन तथा सफल संपादन हेतु मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

— डॉ. नारायण दास गुप्त 'कमलेश'
आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

✉

आपकी 'बुन्देली बसन्त' यहां परिषद् के मित्रों ने देखी तो उसकी प्रौढ़ सामग्री से सभी प्रभावित हुए। मैंने स्मारिका के लेख पढ़े हैं बुन्देली संस्कृति के बदलाव में आपने लोक जीवन के कटु सत्य को रेखांकित किया है। श्री नवल किशोर सोनी की कृति अन्य बुन्देली रचनाऐं और सभी विद्वानों के आशीष अभिमत पढ़े। आपकी समिति में पुस्तक का गहन अवगाहन प्रतिबिंबित है। यह सब कुछ पढ़कर बहुत अच्छा लगा।

— घनश्याम कश्यप,
खेड़ापति, ग्वालियर (म.प्र.)

✉

'बुन्देली बसन्त' की चयन सामग्री स्तुत्य है। आपका प्रयास और परिश्रम पत्रिका से सर्वत्र झलकता दिखाई देता है।

— डॉ. जवाहर लाल 'कंचन'
२९४/ चमनगंज सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

✉

'बुन्देली बसन्त' के चित्रों में प्रामाणिकता के अलावा विविध बसंती रंग भी हैं। कुछ स्तरीय रचनायें स्मारिका में पठनीय हैं। आशा है भविष्य में आपके प्रयास बुन्देलखण्ड के वैभव को उजागर करने में कीर्तिमान स्थापित करेंगे।

— महेन्द्र फुसकेले
नमक मण्डी, कटरा बाजार, सागर (म.प्र.)

✉

बुन्देली धरती अपने सांस्कृतिक वैभव के लिए, लोकमूल्य व लोकदेवत्व के लिए, लोकगीतों की अनेक लोकविधाओं के लिये, अपने मुल्क की लोककथाओं व लोकगाथाओं के लिये, लोककवियों के लिए, लोककलाओं के लिये तथा जगह जगह पर स्थापित अनगिनत मंदिरों, महलों, दुर्गों व किलों के लिये सुविख्यात् रही है। आधुनिकता के प्रभाव से हमारी धरती के लोग हमारे ही बहुआयामी लोकवैभव को भूलने बिसरने लगे थे।

बुन्देलखण्ड की माटी में ही शिक्षित–दीक्षित, कुं. शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' ने क्षेत्र की राजनीति में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन तो किया ही है किन्तु अपने क्षेत्र के खानपान को, रहन सहन को, बोलचाल को, तीज त्योहारों को, रीतिरिवाजों को, गायन वादन को खेलकूदों को, लोककथाओं को, लोकनाट्यों को, लोकमूल्यों को तथा समूची लोकधरोहर को सहेजकर समृद्ध बनाये रखने के लिये जो बीड़ा उठाया है इसके लिये वे बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक महामानवों की श्रेणी में सर्वोपरि स्थान के अधिकारी बन गये हैं।

— डॉ. शैलेन्द्र पटेल,
खुटेही, रीवा

बुन्देलखण्ड के सूर्य मंदिर एवं सूर्य विग्रह

— हरिविष्णु अवस्थी

सूर्य, चन्द्र, भूमि, व्योम, जल, वायु, अग्नि आदि सृष्टि के मूल कारक हैं। सभ्यता के विकासकाल में मानव प्रकृति प्रदत्त उपरोक्त आकारों का ही पूजन, अर्चन करता रहा। सिन्धुघाटी के उत्खनन में इनकी पूजा के प्रमाण प्राप्त हुए। इन प्राकृतिक आकारों की पूजा में सूर्य पूजा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। सूर्योपासना भारत में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में भी प्राचीन काल से प्रचलित रही है। वेदों की रचना के पूर्व से ही सूर्य पूजा का महत्व स्थापित हो चुका था। वेदों ने इसे और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया।

ऋग्वेद में — गृत्सो राजा वरुणश्चक्रएतं दिवि प्रेंख हिरण्ययं शुभेकम्। अर्थात् — राजा वरुण ने व्योम में दीप्ति हेतु सूर्य का निर्माण स्वर्ण के झूला के समान किया। ७.८७.५

यजुर्वेद में — विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परसुव। यद् भद्रंतन्नआसुव।
अर्थात — सूर्य देव, समस्त प्रकार के पापाचारों को दूर कर जो श्रेष्ठ से उसे सर्वजन हिताय लायें। (३०.३)

वेदों एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों में सूर्य को जगत नियंता की परमशक्ति मानकर यथेष्ट सम्मान प्रदान किया गया है। 'नंदिकेश्वर संहिता' में ऐसा विधान है कि भुवन भास्कर को अर्ध्य प्रदान करने के पूर्व, भगवान विष्णु, महादेव शिव एवं माता जगदम्बा का पूजन अर्चन नहीं किया जा सकता है। 'भविष्य पुराण' में भगवान श्री कृष्ण के पुत्र शाम्ब द्वारा सूर्योपासना का उल्लेख मिलता है। 'अग्नि पुराण' में भी पंच देवोपासना में सूर्य, विष्णु, शिवशक्ति एवं गणपति के पूजन का विधान है।[१] 'रामायण' एवं 'महाभारत' में भी सूर्योपासना के प्रभूत संदर्भ विद्यमान है।

सूर्य पूजन सर्वप्रथम्, चक्र, कमल, वर्तुल एवं स्वर्ण पत्र आदि के प्रतीतात्मक रूप में आरंभ हुआ। धीरे—धीरे सूर्य विग्रहों की रचना होनी लगी। अब तक कि हमारे देश में उपलब्ध सूर्य की प्राचीनतम प्रतिमा, पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में सुरक्षित है। सूर्य की यह स्थूलकाय प्रतिमा चार अश्वों युक्त रथ में सुसज्जित रूप से आरूढ़ है। पुरातत्व विशेषज्ञों के अनुसार सूर्य का यह विग्रह ईसा की द्वितीय शताब्दी के लगभग निर्मित हुआ होगा। वाकाटक एवं गुप्तकाल तक सूर्य के प्रतीक चक्रादि एवं विग्रह दोनों प्रकार की रचना होती रही। इसके पश्चात् स्वतंत्र रूप से सूर्य मंदिरों तथा सूर्य विग्रहों का निर्माण होने लगा, जो मध्यकाल के लगभग तक चलता रहा।

सूर्य मंदिरों एवं विग्रहों के सम्बन्ध में एक विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि देश में वैष्णव, शैव, शाक्त, एवं गणपतेय सम्प्रदायों की तुलना में सौर संप्रदाय के मंदिरों का निर्माण अत्यन्त अल्प संख्या में हुआ है।'' वर्ष १९८४ ई० तक देश में मात्र १४० सूर्य मंदिरों की अवस्थिति के प्रमाण उपलब्ध हुए थे।''[२] इस दृष्टि से देश के मध्य में स्थित बुन्देलखण्ड नामक छोट से भू—भाग में सूर्य मंदिरों एवं सूर्य विग्रहों का बाहुल्य निश्चित रूप से शोध का विषय है।

एक पुरातत्वविद् के अनुसार — "The region of Bundelkhand enjoyed a very significant position in the history and culture of India from very early times of history when it formed part of Vasta and Chedi janapadas during the 6th century B.C. and finds description in the Buddhist and Jaina literature. Its vaiour glory and exploits, are still afresh from the classical period of indian history and art when Kalidasa recollects the exploits of Udyana Vatsraja in his Meghaduta.

प्राप्यावन्तीनुदयनकथा कोविदग्रामवृद्धान।
प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जहे।। (१.३२.३५)

Such stories of bravery and exploits of this region were often encountered in later times as well...... Mahoba, Kolinjar, Khajuraho etc become the centres of political struggle as well as those of artistic activity. The SUN-GOD who is the prime source of energy and prowess to lead to victory in the battle field became the chief god of the Rajputs and in fact most of the Rajputs claimed descent from Sun-God (Surya Vamsa), In this situation it was but natural that special dedication was made to SUN-GOD in the region. besides other divinities like Siva and Sakti."[3]

बुन्देलखण्ड के सम्पूर्ण भू—भाग में सूर्य मंदिरों एवं सूर्य विग्रहों की अवस्थिति के प्रमाण संदर्भ ग्रंथों में भरे पड़े हैं। बुन्देलखण्ड का जो भू—भाग मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आता है उसके विभिन्न जिलों में स्थित सूर्य मंदिरों एवं विग्रहों में टीकमगढ़ जिला में स्थित मडखेरा का सूर्य मंदिर पुरातत्वविदों की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अस्तु सर्वप्रथम टीकमगढ़ जिले में स्थित सूर्यमंदिरों सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत है।

जिला टीकमगढ़ (म०प्र०)

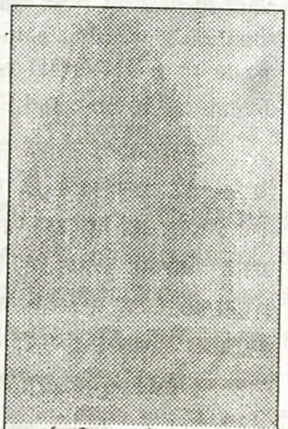
(१) मड़खेरा का सूर्य मंदिर टीकमगढ़—मोहनगढ़ मार्ग पर स्थित ग्राम शिवराजपुर के नाले से बांई ओर २ किलो मीटर की दूरी पर स्थित है जो कच्चे मार्ग से जुड़ा हुआ है। मडखेरा नामकरण इस ग्राम में मद (मठ) स्थित होने के कारण हुआ।

जैसे—जैसे हम मड़खेरा के सूर्यमंदिर के निकट पहुँचते जाते हैं, हमें मंदिर का उतंग शिखर स्पष्ट दिखाई देने लगता है। सामने पहुँचने पर मंदिर का भव्य एवं अलंकृत स्वरूप दर्शक का मन मोह लेता है। श्रेष्ठ स्थापत्य, मूर्तियों की स्वाभाविक

आकृतियों तथा भावव्यंजना, कामात्मकता, अलंकरण आदि गुणों से युक्त गुप्तकाल में निर्मित मठ, मंदिर एवं मूर्तियों को पुरातत्व विदों ने सर्वोत्कृष्ट माना है। मडखेरा के इस सूर्य मंदिर में यह सभी गुणधर्म विद्यमान हैं।

मंदिर का मुख्य शिखर वर्गाकार है जो क्रमश: ऊपर की ओर घटता चला गया है, जिस पर आमलक स्थित है। कलश नहीं है। मुख्य शिखर के आगे एक छोटा मेरु आकार का शिखर और है, जिस का अलंकरण अत्यंत भव्य है। कुछ वर्षो पूर्व इस शिखरके सबसे ऊपरी भाग में एक गज की पीठ में सिंह की मूर्ति आक्रामक मुद्रा में स्थित थी। हाथी को अंधकार एवं सिंह को प्रकाश का प्रतीक मानकर 'अंधकार पर प्रकाश की विजय' के भाव को इसमें प्रदर्शित किया गया था। सिंह की यह मनोहारी मूर्ति, मूर्ति चारों की कुदृष्टि का शिकार हुई। उसे ऊपर से नीचे लाने की क्रिया में ऐसा लगता है कि यह चोरों के हाथों सध नहीं पाई और नीचे आ गिरी। ''खण्डहर बता रहे हैं, इमारत बुलन्द थी'' को चरितार्थ करती हुई यह सिंह मूर्ति मंदिर के पीछे एक मकान के कोनें में पड़ी हुई है। सिंह के पैरों के नीचे दबा हुआ हाथी यथावत् स्थित है।

सूर्य मंदिर के आगे मण्डप उससे लगा हुआ अंतराल एवं उससे सटा हुआ वर्गाकार गर्भगृह है। जलहरीनुमा पादपीठ पर लगभग १.५ मीटर ऊँची तथा पोन मीटर चौड़ी सूर्यप्रतिमा खडगासन में शोभायमान है। मूर्ति के ऊपरी भाग में आभा–मण्डल, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में कंठहार, हाथों में बाजूबंद तथा कटि में धोती धारण किये कंधों पर दुपट्टा पड़ा है। हाथों में सुशोभित कमल पुष्प के बाजू में सूर्य पत्नि उषा और प्रत्यूषा धुनष–वाण धारण किये हैं। नीचे की ओर निक्षुमा एवं राज्ञी खड़ी हैं। पैरों के पास सप्त अश्व युक्त रथ का सारथी अरुण तथा उसके दायें–बायें दण्ड एवं पिंगल की मूर्तियाँ हैं।


सूर्य मंदिर मड़खेरा (टीकमगढ़)

मंदिर की तीन ओर की बाह्य भित्तियों (परिक्रमा पथ) में देव प्रकोष्ठों में अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ हैं। पश्चिम एवं उत्तर के भित्तियों के मध्य निर्मित देवकोष्ठों में हाथों में कमान धारण किये सप्त अश्व युक्त रथ आरुढ़ सूर्य की प्रतिमाएं शोभित हैं। उत्तर के देव कोष्ठ में सूर्य, एक पहिया (जो रथ के मध्य में लगा है) वाले रथ पर आरुढ़ हैं। विस्तारभय से मंदिर का पूर्ण विवरण नहीं दिया जा रहा है। अधिकांश विद्वानों ने इसे प्रतिहार कालीन आठवीं शदी की रचना माना है।

(२) ऊमरी :– टीकमगढ़–ककरवाहा मार्ग के आगे (सोजनामार्ग) पश्चिम दिशा में दो किलोमीटर की दूरी पर ऊमरी ग्राम स्थित है। ग्राम सेवाहर लगभग आधा किलोमीटर की दूरी पर पूर्वाभिमुख सूर्य मंदिर स्थित है। यह मंदिर भी प्रतिहार कालीन तथा मड़खेरा सूर्य मंदिर से पूर्व का निर्मित है। मडखेरा और ऊमरी के मंदिरों में मात्र इतना अंतर है कि ऊमरी की तुलना में मड़खेरा का सूर्य मंदिर अधिक अलंकृत है।


सूर्य मंदिर उमरी (टीकमगढ़)

(३) गौरा :– टीकमगढ़ से नौगांव व्हाया मजना मार्ग पर टीकमगढ़ से लगभग ३० कि.मी. दूर गौरा (गुना) ग्राम में — उन्नाव (बालाजी) के सूर्य मंदिर की भांति ही सूर्य चक्रमंदिर है। यह ईंट–चूना का बना हुआ है। मंदिर के गर्भगृह में चतुर्द्वारी की प्रकोष्ठ में ४ फुट ऊँचे पर सूर्यचक्र आसीन है।''[४]

(४) बनारसी (ग्याजीतपुरा) टीकमगढ़ से मोहनगढ़ पक्का मार्ग, मोहनगढ़ से लगभग ४–५ कि.मी. की दूरी पर कच्चे मार्ग के किनारे पलाश के वृक्ष के नीचे सिरविहीन सूर्य का विग्रह विराजमान हैं। पहले यह क्षेत्र बहुत सम्पन्न रहा है। मोहनगढ़ से कुम्हैडी तक कई किलोमीटर क्षेत्र में प्राचीन मठ मंदिरों के भग्नावशेष एवं मूर्तियों के छोटे–बड़े खण्ड बिखरे पड़े हैं।

(५) नारायणपुर :– टीकमगढ़ से अहार व्हाया नैनवारी मार्ग पर टीकमगढ़ से लगभग ३० कि.मी. की दूरी पर एक प्राचीन नगर जो अब एक छोटा सा ग्राम है, में प्रतिहार कालीन विष्णु एवं शिव के मठ विद्यमान हैं सूर्यनारायण का मंदिर उत्तरी अंचल में स्थित था जिसके भग्नावशेष हैं। मूर्ति विहारी जू के मंदिर में विराजमान हैं।

(६) पठा :– टीकमगढ़ सागर मार्ग पर ८ कि.मी. दूरी पर पठा ग्राम से पहले बाये हाथ पर ध्वस्त सूर्य मंदिर के अवशेषों से निर्मित एक टीले पर सूर्य भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित थी, जो वर्तमान समय में पापट संग्रहालय कुण्डेश्वर में सुरक्षित है।

(७) कुण्डेश्वर :– टीकमगढ़ से ललितपुर मार्ग पर मात्र ७ कि.मी. की दूरी पर कुण्डेश्वर एक प्राचीन शैव तीर्थ स्थल है। मंदिर प्रांगण में देवी जी के मंदिर की बाजू में शिव के विग्रह प्रतिष्ठित हैं। इनमें से एक शिव विग्रह एक आयताकार पाषाण शिला पर, जिस पर सूर्यचक्र बना हुआ है स्थित है।

(८) टीकमगढ़ :– नगर में सिद्ध बाबा श्मसान में स्थित विशाल शिवालय में सूर्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

(९) ओरछा :– टीकमगढ़–झांसी मार्ग पर टीकमगढ़ से ८० कि.मी. दूर स्थित है। यह बुन्देलों का एक प्राचीन नगर है तथा अपने वास्तु वैभव के कारण म०प्र० का एक प्रमुख पर्यटक स्थल है। ओरछा का रामराजा सरकार का मंदिर जन–जन की आस्था का केन्द्र है। रामराजा मंदिर के प्रांगण में एक घेरे में विष्णु, शिव, देवी, हनुमान, गणपति के विग्रहों के साथ–साथ प्राचीन रथारूढ़ सूर्य विग्रह प्रतिष्ठित हैं।

जिला छतरपुर

(१) छतरपुर नगर–यह बस स्टैण्ड के पास बुन्देलखण्ड वालों

के मकान के पीछे बलुआ पत्थर से निर्मित अत्याधिक प्राचीन मंदिर हैं। इस मंदिर के बारे में बताया जाता है कि यह आठवीं शताब्दी का है। यह घनी आबादी के बीच उपेक्षित पड़ा है।[५]


सूर्य मंदिर बंजारी (छतरपुर)

(२) मऊ–सहानिया–जिला मुख्यालय छतरपुर से नौगांव मार्ग पर १६ कि.मी. की दूरी पर स्थित इस छोटे से कस्बे से धुबेला जाने के लिए महज दो कि.मी. चलना पड़ता है। यहाँ प्रदेश के सबसे बड़े संग्रहालय के पीछे जगतसागर तालाब हैं। तालाब के पश्चिम में बस्ती से थोड़ी दूर भगवान सूर्यदेव का मंदिर है। ग्रामीण ही नहीं, शहरी लोग भी शादी–विवाह के मौके पर यहाँ आशीर्वाद प्राप्त करने आते हैं। हालांकि प्रशासन की उदासीनता की वजह से यह मंदिर जीर्ण–शीर्ण होता जा रहा है।[६]

(३) अचट्ठ– नौगाँव से दक्षिण दिशा में लगभग १२–१३ कि. मी. की दूरी पर धसान एवं नुकदेर नदियों के संगम पर स्थित यह एक अत्यन्त प्राचीन स्थान है। यहाँ विभिन्न देवी देवताओं की भव्य कृतियाँ चतुर्भुज मंदिर में संग्रहीत हैं। इनमें सूर्य की मूर्ति भी दृष्टव्य है।'[७]

(४) खजुराहो:– चंदेल कालीन पुरा वैभव से परिपूर्ण खजुराहो का भारत में ही नहीं विश्व के प्रमुख पर्यटक स्थलों में प्रथम स्थान है। यहाँ चित्रगुप्त नाम से प्रसिद्ध सूर्य मंदिर है जिसके गर्भगृह में ५ फुट ८ इंच ऊँची सूर्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह निराधार प्रासाद है, जिसमें गर्भगृह, अन्तराल, महामण्डप तथा अर्द्धमण्डप है। शैली की दृष्टि से इसकी निर्माण तिथि १०००–१०२५ ईसवी के बीच मानी गई है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण मंदिर, चतुर्भुज मंदिर, प्रतापेश्वर मंदिर, इला देव मंदिर, जवारी मंदिर, विश्वनाथ मंदिर तथा खजुराहो संग्रहालय में भी सूर्य प्रतिमाएँ हैं।[८]

(५) छत्र को पत्र मंदिर– यह मंदिर शिवसागर के पश्चिम में स्थित है और 'छत्रको पत्र' नाम से प्रसिद्ध है। यह ८७ फीट लम्बा तथा ५८ फीट चौड़ा है। इसका मूल प्रवेश द्वार गिर गया था, किन्तु मोटे गारे से उसका जीर्णोद्धार किया गया है। इसके महामण्डप की बनावट अन्य मंदिरों से भिन्न है। इसके किनारों को काटकर बीच के चार खम्भों के चारों ओर अष्टकोण बनाए गए हैं। इन खम्भों की सजावट छेनी से की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह सजावट कारीगर की इच्छानुकूल पूर्ण नहीं हो सकी। मंदिर के बाहर नींव के ऊपर मूर्तियों की तीन पंक्तियां हैं।

यह सूर्य मंदिर है। गर्भगृह के मुख्य द्वारा पर सूर्य की तीन मूर्तियां हैं। मंदिर के अन्दर ८ फीट ऊँचा एक विशाल मूर्तिपट है, जिसमें एक पुरुष के रूप में सूर्य मूर्ति है। यह मूर्ति ५ फीट ऊँची है और उसके दोनों हाथों में कमलपुष्प हैं। मूर्ति की पीठिका में उसके रथ के सप्ताश्वों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसके अतिरिक्त उसमें और भी छोटी–छोटी मूर्तियाँ हैं। जिनमें ब्रह्मा और सरस्वती, शिव और पार्वती तथा विष्णु और लक्ष्मी विशेष उल्लेखनीय हैं। राजगीर के चिन्हों तथा कुटिल वर्णों में यात्रियों के नामांकन से प्रतीत होता है कि इस मंदिर का निर्माण १०वीं अथवा ११वीं शताब्दी में हुआ था।[९]

(६) राजकीय संग्रहालय धुबेला एवं पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो में भी सूर्य की अनेक प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं, जो बुन्देलखण्ड के विभिन्न भू–भागों से एकत्र कर यहाँ प्रदर्शित की गई हैं।[१०]

जिला दतिया

(१) उनाव बालाजी– पुण्य सलिला पुष्पावती (पहूज) नदी के तट पर झांसी से १२ कि.मी. उत्तर एवं दतिया से १७ कि. मी. पूर्व में उन्नाव कस्बा स्थित है। यहाँ पर भगवान सूर्य का सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थल बालाजी मंदिर स्थित है। कहते हैं कि एक टीले की खुदाई करने पर ब्राह्मण बालकों को ६ इंच व्यास का सूर्य यंत्र प्राप्त हुआ था, जिसे एक छोटा सा कच्चा चबूतरा बनाकर स्थापित कर दिया गया। सूर्य चक्र का व्यास ६ इंच होगा। चक्र के चारों ओर २१ त्रिभुज हैं जो सूर्य के इक्कीस मुखों के प्रतीक हैं। सूर्य चक्र एक छोटे चबूतरे पर पीतल की प्लेट पर प्रतिष्ठित है।


सूर्य मंदिर उनाव बालाजी (दतिया)

झांसी नरेश नारू शंकर कुष्ट रोग से पीड़ित थे। बालाजी से उन्होंने रोग मुक्त होने की प्रार्थना की। सूर्य भगवान की कृपा से यह रोग मुक्त हो गए। उन्होंने यहाँ मंदिर निर्माण कराना प्रारंभ कर दिया। दतिया नरेश को अपने राज्य में दूसरे राजा का यह कार्य ठीक नहीं लगा। उन्होंने नारूशंकर से निर्माण कार्य बन्द करने का अनुरोध कर स्वयं राज्य की ओर से विशाल मंदिर एवं घाटों का निर्माण कराया। नदी के तट से मंदिर तक ४२ पक्की सीढ़ियां बनी हैं। इस मार्ग में दोनों ओर गणेश जी व हनुमान जी की विशाल मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक रविवार को यहाँ मेला भरता है। आषाढ़ शुक्ल एकादशी को यहाँ रथयात्रा निकलती है। मकर संक्रांति को विशाल मेला लगता है।[११]

(२) छोटी बड़ौनी – गुप्तेश्वर पहाड़ी से प्राप्त पुरा सामग्री के आधार पर इस स्थान को तीसरी शताब्दी ईसवी का माना जाता है। The Gopesvara Siva temple is actually a natural cove having a linga tor worship. Nearby scattered are numerus icons and assignable to the Pratihara and Kacchapaghata periods. Images of Virnu SURYA and Siva Ravanunugraha need notice among them.[12]

(३) कन्हरगढ़ सेवरा : Kinnargadh near Seondha is also

of archaeological interest possessing sceuptures of some brafmanic deities. Before concluding we may note a collection of sculptures accommodated in a room of the P.R.O. office at datia. Among these icons representing Gaja Laksmi, SURYA, Ganesa and Sapta matrkas.[13]

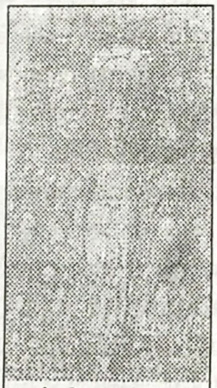
जिला पन्ना

(१) अजयगढ़ : पूर्व अजयगढ़ राज्य का मुख्यालय एवं वर्तमान में पन्ना जिले की अजयगढ़ नामक तहसील का मुख्यालय है। जो पन्ना से ३१ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यहाँ एक प्राचीन दुर्ग है जिसका नाम पूर्व में जयपुर दुर्ग रहा है। वर्तमान में इसे अजयगढ़ दुर्ग के ही नाम से जाना जाता है।

दुर्ग की चढ़ाई चढ़ते समय टेड़े–मेड़े रास्ते के किनारों पर दिवाल बनी है। इसमें हनुमान, सूर्य, दुर्गा, चौबीस तीर्थकर एवं सप्त मातृिका की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं।[१४]

जिला सागर

(१) सागर जिला एवं संभाग का मुख्यालय है। सागर विश्व–विद्यालय (डॉ० हरिसिंह गौर) के संग्रहालय में सूर्य की अनेक प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं। सूची क्र. ७ सूर्यप्रतिमा खण्डित जो पूर्व गुप्त काल की है। क्रमांक १९२ – सूर्य प्रतिमा का धड़ ८वीं–९वीं शताब्दी, क्र. २१३ मस्तकविहीन सूर्यप्रतिमा, सूर्य की दाहिनी ओर पिंगला तथा उषा है १२वीं सदी, क्रमांक २३६– मस्तक विहीन सूर्यप्रतिमा १२वीं शदी, क्रमांक २५१ सूर्यमंदिर का सिरदल जिस पर चतुर्भुज एवं त्रिमुखी सूर्यप्रतिमा बनी है। सूर्य को सात घोड़ों युक्त रथ पर बैठे बताया गया है।[१५]



सूर्य मंदिर रहली (सागर)

(२) रहली – सागर से ३९ कि.मी. की दूरी पर स्थित एक प्राचीन नगर है। यहाँ पूर्व मध्यकालीन एक सूर्य मंदिर स्थित है। यह भग्न स्थिति में है। अस्तु इसके आकार प्रकार के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। यहाँ सूर्य के अतिरिक्त हरिहर, विष्णु, लक्ष्मीनारायण, उमा–महेश्वर, गंगा–यमुना आदि के भी विग्रह हैं।

गर्भगृह वर्गाकार है तथा इसकी दीवारें ईट और पत्थर से निर्मित हैं। उत्तर तथा दक्षिण भाग की दीवारों पर एक एक चौकोर खिड़की बनी है। गर्भ गृह की छत तथा भीतरी दीवार अलंकृत है। छतभाग लकड़ी के शहतीरों पर पत्थर की पट्टियाँ बिछाकर बनायी गई है। पश्चिम दिशा की दीवार से संलग्न प्रतिमा अधिष्ठान दो चौकोर प्रस्तर खंडों पर आधारित है। अधिष्ठान के बीचों–बीच सूर्य अधिस्ठात देवता के रूप में प्रतिस्थापित है।[१६]

(३) इसके अतिरिक्त शिवमंदिर मढ़ोली के प्रवेशद्वार की द्वितीय शाखा में भी सूर्य विग्रह है।

जिला दमोह

(१) नोहटा –यह स्थान दमोह–जबलपुर मार्ग पर दमोह से २० कि.मी. की दूरी पर गुरैया एवं वर्मा नदियों के संगम पर स्थित है। "In every nook and corner of the village we come upon innumerable incons lying under trees or on the mudplate forms or built into house walls. The name a few, Ganga-Yamuna SURYA Skanda, Nawagralas are easily indentifiable.[17]

जिला नरसिंहपुर

(१) बरहटा– नरसिंहपुर जिला मुख्यालय से २२ कि.मी. की दूरी पर २३°४०′ उत्तर तथा ८०°४०′ पूर्व स्थित है। किसी समय बरहटा ग्राम में सूर्य देवता को समर्पित एक दुर्लभ मंदिर विद्यमान था। इस देवता की सुन्दर नक्काशी की हुई मूर्ति इस गाँव में बरहटा आवादी के पूर्व में स्थित विशाल तालाब के निकट प्राप्त हुई है। इस स्थान पर एक पुराने महल के अवशेष भी हैं, जिसके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि यह महल राजा बिराट का था, जिसकी राजधानी वरहटा थी। यहाँ से एकत्र की गई दर्शनीय शिल्प कृतियां नरसिंहपुर के टाउन हाल में संगृहीत हैं।[१८]

जिला गुना

(१) सकर्रा– गुना जिले में स्थित सकर्रा नामक स्थान में लगभग ग्यारहवीं शताब्दी ईसवीं के मंदिर में सूर्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है।[१९]

जिला रायसेन

(१) आशापुरी– यह ग्राम गौहरगंज तहसील मुख्यालय से ७ कि.मी. की दूरी पर कच्चे मार्ग से जुड़ा हुआ है। यहाँ से भोजपुर मात्र ५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। स्थानीय भूतनाथ मंदिर, बिलौटा मंदिर तथा ग्राम पंचायत भवन में कुछ पाषाण प्रतिमाएँ संरक्षित की गयी है। इनमें से भूतनाथ मंदिर का संग्रह सबसे महत्वपूर्ण है। संग्रहालय क्र. ५ की सूर्य मूर्ति, क्र. ४०–सूर्य खड़े, क्र. ४३–सूर्य, क्र. १७२–सूर्य, क्र. ९३ सूर्य क्र. २७१ – सूर्य (खड़े) की मूर्तियाँ हैं। एक ही स्थान पर छह सूर्य प्रतिमाओं का होना निश्चित रूप से शोध का विषय है। यह मूर्तियाँ ११वीं से १३वीं शताब्दी ईसवी की हैं।[२०]

जिला मुरैना

(१) बटेश्वर – दसवीं शताब्दी ईसवी में निर्मित सूर्य की टूटी हुई एक प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जो वर्तमान समय में, ग्वालियर के राजमहल में स्थित, सिंधिया संग्रहालय में (क्र. २) सुरक्षित है।[२१]

जिला भिण्ड

(१) बालाजी – यह स्थान भिण्ड लहर मार्ग पर मिहौना के पूर्व स्थित है। बताते हैं कि यहां सूर्य का एक बहुत प्राचीन मठ था जो ध्वस्त हो गया था। ग्वालियर नरेश जियाजीराव सिंधिया ने नये सिरे से मंदिर का निर्माण कराकर, प्राचीन मठ में प्रतिष्ठित सूर्य चक्र की पुन: इस मंदिर में प्रतिष्ठा कराई थी। यहाँ भी रविवार को दर्शनार्थियों की भारी भीड़ रहती है।[२२]

(२) भरौली – यही एक मध्यकालीन सूर्य मंदिर स्थित है।[२३]

जिला शिवपुरी

(१) शिवपुरी — जिला मुख्यालय में स्थित पुरातत्व संग्रहालय अपने अद्वितीय जैन पाषाण–प्रतिमाओं के कारण प्रसिद्ध है। इस संग्रह की अधिकतर प्रतिमाएँ इसी जिले में स्थित नरवर नामक एक प्राचीन नगर से प्राप्त हुई हैं। इन्हीं प्रतिमाओं में एक सूर्य प्रतिमा भी प्राप्त हुई थी जो इस संग्रहालय में (क्रमांक ३३८) सुरक्षित है।[२४]

(२) टोंगरा — इस ग्राम में लगभग दशमीं–ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी में निर्मित दो सूर्य मंदिर स्थित हैं। अपनी अनोखी बनावट हेतु यह मंदिर जाने जाते हैं। एक ही ग्राम में एक ही समयावधि में दो सूर्य मंदिरों का निर्माण सूर्योपासना का अद्वितीय उदाहरण है।[२५]

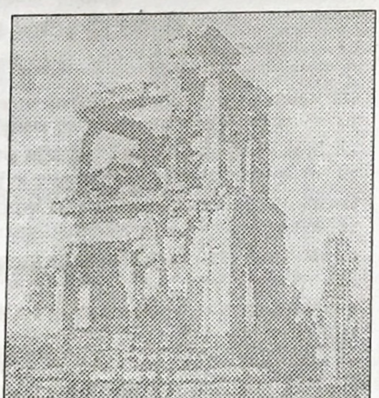
(३) सेसई — इस ग्राम में भी टोंगरा की ही भाँति दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी में निर्मित एक सूर्य मंदिर स्थित है।[२६]

(४) पवाया (पद्मावती) में एक स्तंभ शीर्ष के दोनों ओर सूर्य मूर्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त जबलपुर जिले में कारी तलाई, पनागर, भेंड़ाघाट, चौसठ योगिनी मंदिर, गौरीशंकर मंदिर एवं जबलपुर के जिलाध्यक्ष्यक्ष कार्यालय में स्थित संग्रहालय में भी सूर्यप्रतिमा विद्यमान है।

बुन्देलखण्ड का जो भू–भाग मध्यप्रदेश में स्थित है उसमें विद्यमान सूर्य मंदिरों एवं विग्रहों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड का जो भू–भाग स्थित है उसमें विद्यमान सूर्यमंदिरों एवं सूर्य विग्रहों का विवरण निम्नलिखित है–

जिला–ललितपुर

(१) बुधनी — महरौनी तहसील में महरौनी– नारहट मार्ग पर स्थित ग्राम पठा से मात्र ५–६ किलोमीटर की दूरी पर जामिनी नदी के तट पर स्थित है। यहाँ एक प्राचीन सूर्य मंदिर था जो पूरी तरह से ढह गया है मात्र कुछ स्तंभ खड़े हैं किन्तु सूर्य विग्रह यथावत् प्रतिष्ठित है।२७


सूर्य मंदिर, बुधनी (ललितपुर)

(२) बानपुर — कस्वा तहसील महरौनी मुख्यालय से १५ कि. मी. तथा टीकमगढ़ (म. प्र.) से मात्र १० कि. मी. की दूरी पर स्थित है। Beautiful statues of mahadavi, Ganesa, Bhawani, Vishnu SURYA kali... are seen every where, broken or entire. ज्ञातव्य है कि यहाँ की यह प्राचीन मूर्तियां झांसी के संग्रहालय में सुरक्षित है।[२८]

(३) सिरसी की गढ़ी — लगभग १७वीं श०ई० में निर्मित ऊँचे परकोटे तथा बुर्ज आदि से अवेष्ठित यह गढ़ी, महन्त जी की गढ़ी के नाम से प्रसिद्ध है। गढ़ी के मुख्य प्रवेश द्वार के पार्श्व के द्विभुज सूर्य की प्रतिमा (लगभग १० वीं श०ई०) स्थापित है। दोनों हाथों में उत्फुल्ल कमल धारण किये हुये सूर्य को सभी वस्त्राभूषणों से सज्जित दर्शाया गया है। उनके पैरों के मध्य में भू–देवी तथा दोनों पार्श्वों में राज्ञी–निक्षुमा के अतिरिक्त दण्डपिंगल भी निरूपित हैं।[२९]

(४) नाहरघाटी देवगढ़– देवगढ़ भारत के ऐतिहासिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पटल पर अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। ललितपुर से देवगढ की दूरी मात्र ३३ कि. मी. है। नाहरघाटी में सप्त मातृकाएं, सूर्य मूर्ति– आदि प्रदर्शित है।[३०]

(५) सीरोनखुर्द– ललितपुर से लगभग २० कि.मी. दूर है। यहाँ ललितपुर से राजघाट होते हुए अथवा बांसी होते हुए पहुंचा जा सकता है। सीयडोणी शिलालेख के द्वितीय भाग में वर्णित विष्णु मंदिर के अतिरिक्त सूर्य, उमा, महेश्वर, अग्नि, वामुन आदि देवों का उल्लेख है। यहाँ की प्रतिमाएं राजकीय संग्रहालय झांसी में सुरक्षित हैं।[३१]

(६) दूधई– रेलवे स्टेशन धौर्रा से लगभग ११ कि.मी. दक्षिण–पश्चिम की ओर घने जंगल में स्थित है। ललितपुर से यह २७ कि.मी. दूर है। दूधई के संरक्षित स्मारकों में से मूर्तियों को उठाकर रानीमहल संग्रहालय झांसी में प्रदर्शित किया गया है। सूर्य तथा उनके अनुचरों की कुछ मूर्तियाँ प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।[३२]

(७) चांदपुर– धौर्रा रेलवे स्टेशन से ३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यहाँ लगभग एक किलोमीटर के क्षेत्र में प्राचीन स्मारकों के भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। चांदपुर के चौथे मंदिर समूह में मंदिर के प्रवेश द्वार की शीर्ष पट्टी पर ताण्डव नत्य करती हुई षठभुजी शिव की मूर्ति मध्य में अंकित है। अन्दर एक सहस्त्रलिंग स्थापित है। जिसके चारों किनारों पर गणेश, ब्रह्मा, सूर्य तथा देवी की आकृति उकेरी गयी है। सूर्य और उनके अनुचरों की कुछ मूर्तियाँ असामान्य प्रकार की है। कुछ पट्टों पर द्वादशादित्य, पंच गणेश, शिवलिंग, सप्तसूर्य आदि देवाकृतियों को एक साथ उकेरा गया है।[३३]

जिला–झांसी

(१)राजकीय संग्रहालय एवं रानीमहल संग्रहालय झांसी– यहां ललिपुर एवं झांसी जिले में विभिन्न स्थानों से प्राप्त अनेक सूर्य विग्रह सुरक्षित है। रानीमहल संग्रहालय में मात्र एक अश्व पर आरूढ़ सूर्य प्रतिमा जिसके निर्मित करने का विधान अग्नि पुराण में दिया गया है, उपलब्ध है। रानीमहल संकलन में ही पिंगल की सपत्नीक प्रतिमाएँ उनके आप में अनोखी है। राजकीय संग्रहालय में सूर्य पुत्र रेवन्त की प्रतिमा सूर्य के अनुचर पिंगल के साथ अश्वारूढ अंकित हैं। यहाँ पिंगल

मासिपात्र कंधे से लटकाये हुए लिखने में व्यस्त प्रदर्शित किये गये हैं।[३४]

(२) जरांय का मठ बरुआसागर — यह स्थान बरुआसागर–झांसी मार्ग पर वरुआसागर से मात्र ५–६ कि.मी. की दूरी पर सड़क के किनारे स्थित है। मठ के पृष्ठ भाग में सप्त अश्वों से खचित रथ पर आरूढ़ सूर्य की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है।[३५]

जिला बांदा

(१)कालिंजर — बांदा जिला मुख्यालय से ५६ कि.मी. की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। कोटितीर्थ के किनारों पर दीवालों पर कुछ मूर्तियाँ लगी हैं। इनमें अनेक देवताओं के साथ अंकित सूर्य विशेष रूप से उल्लेखित है। दुर्ग के ऊपर पहुंचने तक सात फाटक पड़ते हैं। कर्नल पागसन का विचार है कि ये सात दरबाजे कालिंजर के सौर्य उपासना स्थल होने की पुष्टि करते हैं। इस पहाड़ी को रविचित्र कहा गया है जिसका अर्थ सूर्य से सम्बन्धि पवित्र स्थल से है।[३६]

जिला — हमीरपुर

(१) रहिलनगर — महोबा से मात्र २ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। The sole surviving early temple here was dedicated to Surya.... on the outskirts of the village in a small temple of recent design, two excellent incons of SURYA and vishnu have been accommodated. Both are accompanied by their respective parivare devotas and attendants. इस का निर्माण राहिल देव वर्मन ने नौवीं शताब्दी में कराया था।[३७]

(२) चित्रकूट झांसी— मानिकपुर रेलवे लाइन का एक प्रमुख स्टेशन है। हिन्दू धर्मावलंबियों का यह प्रमुख तीर्थस्थल है। मुगलसम्राट औरंगजेब ने यहाँ मंदाकिनी नदी के किनारे तीन मंजिले विशालकाय मंदिर का निर्माण अब से ३०० वर्ष पूर्व के लगभग कराया था। मंदिर की सेवा–पूजा हेतु आठ गांव दिये थे। चित्रकूट का यह विशाल सूर्य मंदिर अब जर्जर हो चला है।[३८]

जिला जालौन

(१) कालपी— जिला मुख्यालय उरई से ३५ कि.मी. दूर यमुना नदी के तट पर स्थित है। भविष्य पुराण के अनुसार भगवान श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब ने अपने कुष्ठ निवारण हेतु यहीं कालप्रिय नाथ मंदिर के प्रांगण में सूर्य उपासना की थी। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर ने कालप्रिय नाथ परिसर में ही जगतप्रसिद्ध सूर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। यहाँ हिन्दु तीर्थयात्रियों के दर्शनार्थ सूर्ययतन, सिद्धपातालेश्वर मंदिर आदि विद्यमान है।[३९]

(२) कालपी के ही निकट गुलौली ग्राम के पास पुराणकालीन सूर्य मंदिर के भग्नावशेष है। यहाँ प्रतिवर्ष अगहन मास के अंतिम रविवार को सूर्य मेला लगता है। यहाँ कालापी से नाव द्वारा जलमार्ग से पहुँचाना आसान है।[४०]

(३) बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में एक सूर्य विग्रह लेखन ने स्वयं देखा है।

उपरोक्त सूर्य मंदिरों एवं सूर्य विग्रहों सम्बन्धी जानकारी बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित विभिन्न संदर्भ ग्रंथों के आधार पर संग्रहीत की जाकर प्रस्तुत की गई है। बहुत कुछ संभव है कि अभी भी अनेक सूर्य मंदिर तथा सूर्य विग्रह प्रकाश में न आ पाये हो। सूर्य मंदिरों एवं सूर्य–विग्रहों की इतनी विपुल संख्या, बुन्देलखण्ड नामक एक छोटे से भू–भाग में होना अपने आप में एक कीर्तिमान है जो इस क्षेत्र में सहस्त्रों वर्षों से सूर्योपासना की परम्परा को भी प्रमाणित करती है।

सर्वज्ञः सर्वगश्चैव सर्वकारण देवता।
सर्वेश सर्व हृदयं नाममि सर्व साक्षिणम।।[४१]

सर्वज्ञ, सर्वत्र गमन करने वाले, सबके कारण सबके स्वामी, सर्व हृदयवासी सभी के साक्षी सूर्य देव को नमस्कार करता हूँ।

संदर्भ संकेत :

१. हरिमोहन लाल श्रीवास्तव–श्री बालाजी देवों के देव पृ. ९
२. डॉ. सुरेश तिवारी, टीकमगढ़ जिले के सूर्य मंदिर, रूसिया अभिनंदन ग्रंथ पृ. १–३२–३५
३. Sun Temple to markhera बुन्देलखण्ड दर्पण सप्तम बिंब पृ. १५०
४. डॉ. के.पी. त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक वैभव पृ. ३९
५. डॉ. बहादुर सिंह परमार, छतरपुर जिले के दर्शनीय स्थल सारस्वत पृ. ३८
६. दैनिक भास्कर भोपाल
७. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ. १०४
८. म.प्र. के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ, डॉ. राजकुमार शर्मा पृ. ३५७–५८
९. डॉ. ए०पी० पांडे–चेदेलकालीन बुन्देलखण्ड का इति० पृ. २०३
१०. म.प्र. के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ.
११. डॉ. के.पी. त्रिपाठी — बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत पृ. ३२–३३
१२. K.K. Shah - Ancient Bundelkhand Page 63
१३. क्र ११ अनुसार पृ. ६४
१४. मध्य प्रदेश संदेश १३ जून १९७० पृ. ७५
१५. म.प्र. के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ. ५६९–५८१
१६. पी. राघवन, सागर विरासत और विकास पृ. ४४
१७. Ancient Bundelkhand p. 61
१८. नरसिंहपुर गजेटियर पृ. ४४३
१९. म.प्र. पुरातत्व पृ. ३५९
२०. वही पृ. ५५७–५६५
२१. वही पृ. ५९२
२२. श्री सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, व्यक्तिगत जानकारी
२३. म.प्र. के पुरातत्व का संदर्भ ग्रंथ पृ. ३५८
२४. वही पृ. ५२२
२५. वही पृ. ३५८
२६. वही पृ. ३५९
२७. डॉ. के.पी. त्रिपाठी, बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत पृ. ३९–४०
२८. पी.सी. मुकर्जी, रिपोर्ट आफ दी ऐन्टीकुटीज इन डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर पृ. ३०
२९. डॉ. अम्बिका प्रसाद सिह, बुन्देलखण्ड दर्पण नवम बिंब पृ. १०३–१०४
३०. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ. ७८
३१. वही पृ. ८४–८५
३२. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ. ८७–८८
३३. वही पृ. ८८–८९
३४. वही पृ. ५१
३५. वही पृ. ५१
३६. डॉ. एस.डी. त्रिवेदी, बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ. ८१
३७. K.K. Shah Ancient Bundel Khand Page 66
३८. सारस्वत बुन्देलखण्ड पर्यटन विशेषांक पृ. ११६–११७
३९. वही पृ. ७९–८०
४०. सारस्वत बुन्देलखण्ड पर्यटन विशेषांक पृ. १४१
४१. हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, श्री बालाजी देवों के देव पृ. २२

— अवस्थी चौराहा, किले का मैदान
टीकमगढ़ म०प्र० ४७२००१ □

मातृभूमि के सजग प्रहरी वीर चंपतराय और लाल कुंवरि

— हरगोविन्द तिवारी

बुंदेली इतिहास अनगिनत बलिदानों से भरा पड़ा है। जिसमें खुकुलोत्पन्न गहरवार वंशीय काशीश्वर विंध्यराज हेमकर्ण बुंदेला वंशज ओरछा नरेश रुद्रप्रताप के तृतीय पुत्र उदयादित्य की पीढ़ी के नुना महेबा के जागीरदार परिवार में जन्मे वीर चंपतराय और उनकी पत्नि रानी लालकुंवरि का बलिदान सर्वोपरि एवं अग्रगण्य है। चंपतराय के पिता का नाम भगवंतराय था। इनका जन्म सं. १६३४ में हुआ था। इनका जन्म ऐसे समय हुआ था जबकि देश में मुगलों का आतंक और अत्याचार छाया था। ऐसी भयावह स्थिति में चंपतराय के मन में आर्तक और अत्याचार का भय व्याप्त था। ऐसी भयावह स्थिति में चंपतराय के मन में बाल्यकाल से ही मुगलों से मुक्ति पाने की सोच घर कर रही थी। वे बचपन से ही साहसी, निर्भीक, निडर, स्वाभिमानी एवं एक सच्चे देश भक्त और धर्म रक्षक इत्यादि महान गुणों के धनी थे। वे रामायण, महाभारत इत्यादि धार्मिक ग्रंथों के साथ साथ साहस, वीरता एवं देशभक्तिपूर्ण प्रसंगों को खूब मन लगाकमर पढ़ते और सुनते थे। साथ ही साथ वे तलवारबाजी, घुड़सवारी एवं युद्धबाजी करने के साथ—साथ शिकार खेलने के भारी शौकीन थे। इतना ही नहीं वे तोप गोला बारूद तीर—कमान इत्यादि अस्त्र—शस्त्र चलाने और किलेदारी की जानकारी भी हासिल करते रहते थे। वे राजपुरोहित पं. राधिका प्रसाद चौबे से शिक्षा प्राप्त करते हुए साहसी कामों में संलग्न रहते थे। वीरता उनकी जन्मजात पहचान थी। इतना ही नहीं उनमें एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी तक उड़ान भरने की अद्‌भुत शक्ति भी थी।



लालकुंवरि चंपत लाल महाबली छत्रसाल

सुना है कि बचपन में एक बार वे जंगल में शिकार खेलने गये हुये थे वहां एक सिद्धि प्राप्त साधू से उनकी भेंट हो गई। साधू ने प्रसन्न होकर उन्हें अलौकिक शक्तियां प्रदान कीं। चंपतराय को आशीर्वाद देकर साधू वहां से अदृश्य हो गये। तरुण होने के बाद उनके क्रमशः चार विवाह, प्रथम तरवेना के बलवंत सिंह की पुत्री भगवंतकुंवारी से, द्वितीय पंचमपुर के धंधेरे ठाकुर गोविंद जू की पुत्री हीराकुंवरि से, तृतीय बेरछा के भूपतिसींग की पुत्री झलकन कुंवरि से और चतुर्थ विवाह लालकुंवरि से हुआ।

लाल कुंवरि का जन्म दैलवारा के एक साधारण जमींदार फतेसिंह परमार के यहां सं. १६८३ में हुआ था। इनका उपनाम सारंधा था जो कि साहित्यकारों, इतिहासकारों ने अनेक जगह प्रयुक्त किया है। ये सुंदर, सुशील, निडर, साहसी और स्वाभिमानी थीं। बचपन से ही तीर—कमान, तलवार इत्यादि अस्त्र—शस्त्र चलाना, घुड़सवारी करना और युद्ध करना सीख लिया था। सुना है कि जब जुझार सिंह अपनी नादानी और अकर्मण्यता के फलस्वरूप मुगलों के अधीन होकर मृत्यु को प्राप्त हो गये तब चंपतराय मुगलों के संघर्ष हेतु योजना के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में मुगलों से बचकर जुझार सिंह के पुत्र पृथ्वीराज सिंह को अपने साथ लिए दैलवारा में फते सिंह परमार के यहां ठहरे हुये थे। कुछ मुगल सैनिक चंपतराय को तलाशते हुए दैलवारा फतेसिंह परमार के यहां जा पहुंचे। उस समय लालकुंवरि अपने हम उम्र साथियों की टोली में चोर—सिपाही के खेल में संलग्न थीं। उन्होंनें मुगल सैनिकों को आते देखा तो वे ठिठक गई और उनसे पूछा कि कैसे आना हुआ, क्या काम है, किससे मिलना है? मुगल सैनिक क्रोधित हो गये और लालकुंवरि से बोले कि क्या यहाँ चंपतराय छिपे हैं? लालकुंवरि गुस्से में लाल हो गई और बोली कि यहां हमारे इलाके में बिना अनुमति के तुम लोगों के आने की हिम्मत कैसे हुई? चुपचाप यहां से सीधे निकल जाओ वरना ध्यान रखना यहां तुम्हें चंपतराय की तलाश बहुत महंगी पड़ सकती है। मुगल सैनिक लालकुंवरि को दुत्कारते हुए गढ़ी की ओर प्रवेश हेतु आगे बढ़ने लगे। तब उन्होंने मुगल सैनिकों को ललकारते हुये गढ़ी में प्रवेश करने से रोका। वे नहीं माने तो उन्होंने मुगल सैनिकों पर तीरों की बौछार शुरू कर दी। साथ ही लालकुंवरि के हम उम्र सभी साथियों ने भी मिलकर मुगल सैनिकों पर पत्थरों की मार शुरू कर दी। जिससे मुगल सैनिक घायल हो गये और अपने प्राण बचाकर वहां से भागे। साहसी होने के साथ—साथ लालकुंवरि धार्मिक प्रवृत्ति की थी। चूंकि उस समय चंपतराय की वीरता की सर्वत्र प्रशंसा होती रहती थी। जिससे लालकुंवरि भी प्रभावित थी और लालकुंवरि से चंपतराय भी आकर्षित थे। इसलिये उन्होंने लालकुवरि के भाई के समक्ष अपनी इच्छा को प्रगट किया। तब लालकुंवरि और चंपतराय की इच्छा को जानते हुये वे इसके लिये सहर्ष राजी हो गये। इस तरह बड़ी धूमधाम के साथ लालकुंवरि और वीर चंपतराय का समयानुकूल सानंद विवाह हो गया।

उस समय भारत के दक्षिण में एकमात्र मराठा नायक वीर शिवाजी एवं मध्यभाग में वीर बुन्देला नायक महाराजा वीर

सिंह देव प्रथम मुगलों के विरुद्ध संघर्षरत थे और चंपतराय के पिता भगवंतराय जीवन भर उनका साथ देते रहे। इसलिए चंपतराय ने तरवेना के बलवंत सिंह की पुत्री भगवंतकुंवरि के साथ विवाहोपरांत अपने पिता भगवंतराय के पद चिन्हों पर चलते हुए धर्म एवं देश की रक्षा और स्वतंत्रता के लिए मुगलों को अपनी मातृभूमि से खदेड़ने हेतु वीर सिंह देव की सेना में प्रवेश किया। उस समय भारत की गद्दी पर मुगल बादशाह अकबर आसीन था और पूरे भारत में अकबर बादशाह का मुगलिया जाल बिछा हुआ था। इस दौरान बुंदेलखण्ड में जब अकबर का मंत्री अबुल फजल वीरसिंह देव के हाथों मारा गया तब अकबर ने वीरसिंह देव के समक्ष संधि का प्रस्ताव रखा। वीरसिंह देव ने अपने विश्वसनीय सहयोगी एवं प्रधान सेनापति चंपतराय की सहमति से संधि को स्वीकार कर लिया। किन्तु अकबर के सेनापति राजसिंह ने इस संधि से मुंह मोड़ लिया, जिससे वीरसिंह देव नाराज हो गये और अत्यंत क्रोधित होकर उन्होंने राजसिंह को चूर करने की गरज से अपने चुने हुये सेना नायकों सहित चंपतराय के नेतृत्व में एक विशाल सेना को रवाना किया। जिसमें प्रमुख रूप से वीर वर चंपतराय और उनके भाई भीमराय व सुजानराय तथा चंपतराय का परम सहयोगी व सेवक बिंदा खबास एवं केशवराय, बख्सराय, मुकुटमणिं गौड़ इत्यादि शामिल थे। इन सेनानायकों सहित चंपतराय की बुंदेली सेना ने राजसिंह पर तुरंत हमला बोलकर उसे करारी शिकस्त दी। जिससे राजसिंह अपनी जान बचाकर भागा। इस विजय के साथ ही चंपतराय ने १८ अप्रैल सन् १६४० में महाराजा वीरसिंह देव प्रथम के साथ होकर मातृभूमि की आजादी के लिए लड़ाई का श्रीगणेश किया। इसी दरम्यान उनकी ख्याति और पराक्रम से प्रभावित होकर पंचमपुर के धधेरे ठाकुर गोविंद जू ने अपनी पुत्री हीराकुंवरि का विवाह भी चंपतराय के साथ बड़ी धूमधाम से किया।

चंपतराय देश की आजादी चाहते थे इसलिए उन्होंने इसी बीच महाराजा वीरसिंह देव से आग्रह किया कि ''हमें मुगलों की अधीनता से छुटकारा पाने के लिए उन्हें कर देना बंद कर देना चाहिए।'' जिससे सहमत होकर वीर सिंह देव अवसर की ताक में रहने लगे। जब अकबर एवं उसके पुत्र जहांगीर की मृत्यु के बाद अकबर का पुत्र शाहजहां दिल्ली की गद्दी पर बैठा तो वीर सिंह ने चंपतराय के आग्रह पर शाहजहां को कर देना बंद कर दिया। ओरछा अस्वतंत्र राज्य हो जाना शाहजहां को बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने क्रुद्ध होकर बाकी खां के नेतृत्व में एक बड़ी मुगल सेना ओरछा पर आक्रमण करने के लिये भेजी। चंपतराय इसके लिए पहले से ही सतर्क थे। उन्होंने पूरी ताकत के साथ मुगल सेना का मुकाबला किया गया। दोनों ओर की सेनाओं के मध्य घमाशान युद्ध हुआ जिसमें बाकी खां की मृत्यु हो गई और शेष बचे मुगल सैनिक अपने प्राण बचाकर भागने को विवश हुए। शाहजहां ने बाकी खां की मृत्यु के बाद स्वयं एक भारी सेना के साथ ओरछा पर हमला किया। जिसका चंपतराय के सेनापतित्व में बुंदेली सेना ने डटकर मुकाबला किया। इस भीषण युद्ध में शाहजहां को भी मुंह की खानी पड़ी तथा पराजित होकर शेष बचे सैनिकों को साथ लेकर उसे वापिस जाने को बाध्य होना पड़ा। इस हार से शाहजहां को भारी धक्का लगा और दुखी होकर उसने एक बैठक बुलाई जिसमें शाहबाज खां सहित इलाहाबाद से अब्दुल्ला खां, दक्षिण से खान पठान और आगरा से मोहब्बत खां जैसे दक्ष सेनानायक शामिल हुये। इस बैठक में हुई राय–सलाह से बुन्देलखंड पर कब्जा करने की योजना बनाई गई। शाहजहां की मुगल सेना ने जब बुंदेलखण्ड पर पुन: आक्रमण करने हेतु घेरा डाला और काफी दिनों तक बुंदेली सेना की ओर से कोई जवाबी कार्यवाही नहीं हुई तो धीरे–धीरे मुगल सेना बुंदेलखण्ड से वापिस आने लगी। इस पर चंपतराय ने अपनी कुटनीति की सफलता का अहसास किया और जैसे ही मुगल सेना का आधा भाग यहां से वापिस चला गया, वैसे ही शेष बची मुगल सेना को वीर चंपतराय ने अपने चक्रव्यूह के घेर में ले लिया और तुरंत झपटकर मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। जिससे शाहजहां की मुगल सेना का पांसा पलट गया। इसमें उन्होंने शाहजहां के शक्तिशाली और विश्वसनीय तथा साहसी सेनानायक शहबाज खां को मौत के घाट उतार दिया। शेष बचे फतेह खां, अब्दुल्ला खां, खान पठान और मोहब्बत खां इत्यादि अपनी जान बचाकर भागे। इस तरह चंपतराय के नेतृत्व में बुंदेली सेना को पुन: विजयश्री प्राप्त हुई। उसने पुन: मोहम्मद सुभान, अली बहादुर, अब्दुल्ला खां, नौराज खां, खान पठान और मोहब्बत खां के नेतृत्व में एक विशाल सेना को फिर ओरछा पर आक्रमण के लिये रवाना किया। पर वीरवर चंपतराय के नेतृत्व एवं सूझबूझ के परिणाम स्वरूप मुगलों को फिर यहां पराजय का मुंह देखना पड़ा जिसमें मोहब्बत खां मारा गया। इस तरह शाहजहां ने अल्प समय में ही तीन बार ओरछा पर आक्रमण किये एवं तीनों बार उसे पराजय का सामना करना पड़ा। जल्दी–जल्दी लगातार तीन बार हारने के कारण शाहजहां ने महाराजा वीरसिंह देव के समक्ष संधि का प्रस्ताव रखा। जिसे उन्होंनें विश्वसनीय एवं घनिष्ठ सहयोगी चंपतराय के मत अनुसार स्वीकार कर लिया। संधि की शर्त अनुसार ओरछा राज्य को एक स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिया गया और इसके उत्तराधिकारी वीर सिंह के पुत्रों को ही माना गया। साथ ही चंपतराय के पराक्रम की प्रशंसा की जाकर सम्मान स्वरूप उन्हें कौंच की जागीरदारी प्रदान करते हुये शाही दरबार के मनसबदारों की सूची में शामिल किया गया। जिससे प्रभावित होकर बेरछा के भूपतिसींग ने अपनी पुत्री झलकनकुंवरि का विवाह भी चंपतराय के साथ बड़ी धूमधाम के साथ इसी बीच किया।

संधि के कुछ समय बाद ही वीर सिंह देव प्रथम का सं. १६८४ में स्वर्गवास हो गया। अत: संधि की शर्त के अनुसार उनके पुत्र जुझार सिंह को ओरछा का राजा बनाया गया। किन्तु जुझार सिंह ओरछा का राजकाज अपने छोटे भाई हरदौल को सौंपकर शाहजहां के दरबार में रहने लगे। चंपतराय ने कौंच की जागीरदारी एवं शाही दरबार के मनसबदार होना मुगलों की

अधीनता के अंतर्गत मानकर इस उपलब्धि का त्याग करते हुए हरदौल के सहयोगी बनकर अपने अभियान को जारी रखा। चूंकि जुझारसिंह प्रायः मुगल दरबार में रहा करते थे और ओरछा राज्य का कार्यभार दीवान हरदौर सम्हालते थे। इसलिए हरदौर को राज्य की प्रजा बहुत चाहती थी। इसी दौरान एक बार उन्हें प्रजा की ओर से दिल्ली से आये हुए एक पट्टेबाज के उत्पाद की खबर मिली। यह पट्टेबाज जनता में आतंक फैलाये हुए था। अपनी भाभी जुझारसिंह की पत्नी रानी पार्वती से जुझार सिंह की तलवार ली और चंपतराय को इस संबंध में सचेत करते हुए तुरंत जाकर उस पटेबाज को पराजित किया। इसी के साथ–साथ एरच के निकट बेतवा नदी के किनारे हरदौल और चंपतराय की बुंदेली सेना की आगरा, कन्नौज और मालवा की शाही सेनाओं से मुठभेंड हो गई। जिसमें शही सेना पराजित हुई और बुंदेली सेना की विजयश्री प्राप्त हुई। इस तरह चंपतराय अपने अभियान में सलग्न रहते हुए निरंतर मुगलों को यहां से खदेड़ने और अपनी स्थिति मजबूत करने में लगे थे। उन्होंने धामौनी के गौंड़ राजा को अपने पक्ष में कर लिया तथा हरदौल को देवगढ़ पर हमला करने तथा वहां अपना आधिपत्य करने के लिए तैयार किया। धामौनी के गौड़ राजा को अपनी ओर मिलाकर उन्होंने देवगढ़ को जीतना आसान कर लिया। इस तरह उन्होंने हरदौल को बुंदेली सेना सहित अपने साथ लिया तथा देवगढ़ एवं चौरागढ़ पर हमला कर दिया। तथा योजनाबद्ध तरीके से देवगढ़ पर हमला करके उन्होंने ''देवगढ़'' एवं ''चौरागढ़'' पर अपना अधिकार कर लिया। चंपतराय को यह विजय अभूतपूर्व एवं अलौकिक थी क्योंकि इस विजय ने उस दीवार को तोड़ दिया जो मुगल बादशाह को दो प्रबल विराधी केन्द्रों, बुन्देलखण्ड और महाराष्ट्र को एक–दूसरे से मिलने नहीं देती थी। तब शाहजहां ने हरदौल एवं चंपतराय को समाप्त करने के लिए अपने एक खास सहयोगी व गुप्तचर सरिश्तेदार हिदायत खां के लिए तैयार किया। हिदायत खां बहुत ही चतुर, बदमाश, चुगलखोर और धुरंधर षडयंत्रकारी व्यक्ति था। उसे शाहजहां ने कुछ रहस्यमयी ढंग से हिदायत देकर व समझा बुझाकर ओरछा भेजा। चूंकि शाहजहां का गुप्तचर रिश्तेदार हिदायत खां जुझार सिंह का अति विश्वसनीय बन चुका था। इसलिए उसने हरदौल के खिलाफ जुझार सिंह के कान भरना शुरू कर दिये। जिसके फलस्वरूप जुझार सिंह एवं हरदौल के बीच मनमुटाव हो गया। शंकालु स्वभाव के जुझार सिंह ने अपनी पत्नी रानी पार्वती के हाथों विष देकर हरदौल को मरवा डाला। किन्तु चंपतराय ने तुरंत ही जुझारसिंह को अपने दायरे में लेने का प्रयत्न किया। तथा शाहजहां की कुचालों को भांपते हुए उन्होंने जुझार सिंह को सुझाव दिया कि वे शाहजहां को कर देना बंद करें एवं मुगलों की अधीनता को उखाड़ फेंके। तब जुझार सिंह ने चंपतराय के आग्रह पर शाहजहां को कर देना तो बंद कर दिया मगर शंकालु स्वभाव होने से उन्होंने चंपतराय की अन्य सभी उचित राय–सलाह को मानने में आनाकानी शुरू कर दी। चंपतराय को हरदौल के मारे जाने का भारी दुख था. साथ ही ओरछा की स्थिति बिगड़ने की आशंका भी उन्हें सता रही थी। इसलिए उन्होंने जुझार सिंह को समझाने का प्रयास किया मगर वे नहीं माने। जिससे वे जुझार सिंह से तटस्थ रहने लगे। फलस्वरूप मुगलों ने ओरछा पर आक्रमण कर दिया। जिसमें जुझार सिंह को पराजय का सामना करना पड़ा साथ ही उन्हें दंड स्वरूप शाहजहां के दरबार में चालीस हाथी एवं एक हजार मुहरें बतौर नजराना के और पंद्रह लाख रुपये बतौर जुर्माना के भुगतना पड़े। इतना ही नहीं बल्कि उनके राज्य को भी खानजहाँ लोधी, अब्दुल्ला खां, मुजफ्फर खां, तथा वीरसिंह देव प्रथम के भाई रामशाह के प्रपौत्र देवीसिंह और जुझार सिंह के भाई पहाड़ सिंह के बीच बांट दिया गया। इन्हीं हादसों के साथ ही जुझार सिंह की मृत्यु भी हो गई। शाहजहां की षड़यंत्रकारी गतिविधियों के परिणाम स्वरूप चंपतराय ने जब देखा कि ओरछा का स्वतंत्र राज्य मुगलों के आधिपत्य में हो गया है तब वे बड़े दुखी हुए। किन्तु सतर्कता के साथ ओरछा राज्य की स्वतंत्रता एवं रक्षा हेतु वे सक्रिय हो गये। उन्होंने जुझार सिंह के पुत्र पृथ्वीराज सिंह को अपने साथ लिया और दैलवारा जाकर फते सिंह परमार के यहां ठहर कर अपनी कार्य योजना तैयार करने लगे। उन पर मुगलों को पैनी दृष्टि थी तथा वे उनकी गतिविधियों पर नजर रखते हुये उनकी खोज–खबर लेकर दैलवारा फतेसिंह की गढ़ी जा पहुंचे। उस समय फतेसिंह की किशोरी बेटी लालकुंवरि अपने हम उम्र साथियों के साथ गढ़ी के बाहर मैदान में मौजूद थी और वे अपने साथियों को मुगलशाही के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार कर रही थीं। तभी गढ़ी के सामने कुछ मुगल सैनिकों पर लालकुंवरि की नजर पड़ी तो वे ठिठक गईं। उन्होंने मुगल सैनिकों को आड़े हाथों लेकर अपने साथियों सहित एकत्र होकर भारी मारपीट कर वहां से भागने को विवश कर दिया। चंपतराय लालकुंवरि की वीरता से काफी प्रसन्न हुये तथा उन्हें मुगलों से संघर्ष हेतु प्राणपण से जुटे रहने के लिये कहकर वे पृथ्वीराज सिंह सहित वहां से प्रस्थान कर गये। चंपतराय ने जुझार सिंह के पुत्र पृथ्वी राजसिंह को समझाया–बुझाया और योजनाबद्ध तरीके से ओरछा को स्वतंत्र राज्य घोषित करवा दिया। साथ ही मुगलों के आधिपत्य वाले बुंदेलखण्ड के भू–भाग पर हमले करना शुरू कर दिये। जिससे सतर्क होकर शाहजहां ने चंपतराय से आमने–सामने मुकाबला करने से बचते हुये यहां के छोटे–छोटे जागीरदारों को अपनी ओर मिलाकर ओरछा हथियाने की चाल चली। परिणामस्वरूप देशद्रोहियों ने शाहजहां के षड़यंत्र में संलग्न रहते हुए जाल बिछाकर पृथ्वीराजसिंह को कैद करवा दिया। जिसने चंपतराय बहुत दुखी हुये। मगर उन्होंने धैयपूर्वक अपने देशभक्त सहयोगियों एवं आजादी के वीर दीवानों के आग्रह पर ओरछा राज्य की बागडोर स्वयं अपने हाथों से सम्हाली। उन्होंने अपने इर्द–गिर्द के सभी जागीरदारों, राजाओं और अनेक वीर देशभक्तों को एकत्र करके सभी को एकजुट होकर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष के लिये तैयार किया। ओरछा राज्य की बागड़ोर सम्हालते हुये उन्होंने मराठा नायक वीर शिवाजी की तरह छापामार पद्धति को

जारी किया तथा मुगलों के अधीन रहने वाले कई भूभागों को छीनकर उन्होंने अपने राज्य में शामिल कर लिया। शाहजहां चंपतराय से बहुत डरता था क्योंकि वह अनेकों बार चंपतराय से पराजित हो चुका था। मगर फिर भी उसने अब्दुल्ला खां के सेनापतित्व में एक विशाल सेना ओरछा पर हमला करने हेतु रवाना की। जिसमें सेनापति फतेहखां, खान पठान जैसे शक्तिशाली सेनानायक भी शमिल थे। मुगल सेना एवं बुंदेली सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। फतेह खां मारा गया और चंपतराय की जीत हुई। इस विजय के बाद चंपतराय ने विदिशा, सिरोंज, धार, उज्जैन इत्यादि स्थानों पर भी आक्रमण किये। जिसमें चंपतराय ने धन संपत्ति के साथ–साथ काफी अस्त्र–शस्त्र भी हथिया लिये और फिर धामौनी के अभेध गढ़ पर हमला करके वहां के सूबेदार सरदार खां को पराजित किया। उसे अपनी जान बचाकर व धामौनी छोड़कर भागने को विवश होना पड़ा। इस तरह चंपतराय ने धामौनी के इर्द–गिर्द बिनेका, शाहगढ़, गढ़ाकोटा इत्यादि इलाकों पर भी बड़ा आसानी के साथ अपना अधिकार कर लिया। तत्पश्चात उन्होंने ग्वालियर पर आक्रमण किया और वहां से भी काफी धन–सम्पत्ति एवं अस्त्र–शस्त्र हथिया लिये। इस तरह चंपतराय ने अपने सैन्य बल और राज्य विस्तार को बढ़ाते हुए चंबल से नर्मदा तक के भूभाग पर अपना आधिपत्य जमा लिया। शाहजहां ने ओरछा पर आक्रमण हेतु पुनः एक विशाल मुगल सेना अब्दुल्ला खां एवं अली बहादुर खां के नेतृत्व में भेजी। पुनः भीषण युद्ध हुआ जिसमें चंपतराय के आगे मुगल सेना की एक न चली एवं एक बार फिर मुगल सेना को हारकर भागना पड़ा।

चंपतराय ने अपने राज्य काल में ओरछा राज्य को अस्त्र–शस्त्र तोप–गोला–बारूद इत्यादि हथियारों एवं धन–सम्पत्ति से सम्पन्न करके एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इसी बीच चंपतराय और ललकुंवरि का विवाह भी बड़ी धूमधाम के साथ सानंद सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात उन्होंने लालकुंवरि सहित अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु प्रार्थना करने और आर्शीवाद प्राप्त करने अपने इष्टदेव भगवान श्री कृष्ण के दर्शन किये और गुरु से आवश्यक राय–सलाह लेकर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया और फिर वे वहां से वापिस आ गये।

उनकी उड़नदस्ताउ एवं छापामार देशभक्तिपूर्ण रणनीति एवं कूटनीति से शाहजहां त्रस्त और पस्त पड़ चुका था। इसलिए उसने चंपतराय को शिकस्त देने के लिये एक कूटनैतिक चाल चलकर राजा पहाड़सिंह को चंपतराय के खिलाफ भड़काया राजा पहाड़सिंह शाहजहां की लुभावनी बातों से लालच में आ गये और उन्होने चंपतराय को ओरछा राज्य से तटस्थ होने के लिए बाध्य कर दिया। चंपतराय वीरसिंहदेव एवं उनके पुत्रों सहित ओरछा राज्य के प्रति वफादार थे। इसलिए पहाड़सिंह के कहने पर वे तटस्थ हो गये। जिससे शाहजहां अतिप्रसन्न हुआ और उसने जून १६४२ में पहाड़सिंह के लिए पांच हजार मनसबदारी से सम्मानित करते हुए दो हजार घुड़सवार रखने की स्वीकृति देकर ओरछा का राजा बना दिया। इस तरह शाहजहां ने "फूट डालो और राज करो" की नीति का अनुसरण करके चंपतराय को समाप्त करने की योजना को फलीभूत करने के लिए तरह–तरह के षड़यंत्र जारी रखे। चूंकि चंपतराय शाहजहां की घृणित चालों को अच्छी तरह समझ चुके थे और राजा पहाड़सिंह को मुगलों के अधीनस्थ मानकर सुरक्षा की दृष्टि से वे ओरछा राज्य के प्रति चौकन्ने थे। इसलिए उन्होंने ओरछा से भगवान जुगल किशोर की सुंदरतम् एवं आकर्षक मूर्तियां वहां से सुरक्षित ले जाकर पन्ना के मंदिर में विराजमान करवा दीं। चंपतराय और उनके चौदह वर्षीय पुत्र सारवाहन तथा रानी लालकुंवरि सहित उनकी देशभक्त वीरों की सुसंगठित सेना से मुगल सेनापतियों को टकराना महंगा पड़ रहा था। चंपतराय के साथ मिलकर रानी लालकुंवरि ने गर्भवती होते हुए भी अपने कठोर दृढ़इच्छाशक्ति से सधे सशक्त हाथों से तीव्र तलवार घुमाकर कई मुगलों को मौत से घाट उतारा। तथा चौदह वर्षीय वीर सारवाहन ने अपूर्व साहस एवं वीरता का परिचय देते हुए अपने सशक्त हाथों से तीर–कमान साधकर मुगलों पर तीव्र बाणों की धुंआधार बारिस की, जिसमें खान पठान और नौगज खान सहित अनेक मुगल सैनिकों को मौत के मुंह में जाना पड़ा। शेष बचे अन्य सभी मुगल सेनापतियों को अपने प्राण बचाकर यहां से भागना पड़ा। लेकिन इस दौरान इस नन्हें से वीर बालक सारवहन को भी अभिमन्यु की तरह अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

वीर सारवाहन की हत्या से रानी भगवंतकुंवरि को भारी सदमा होने से उनकी अचानक मृत्यु हो गई। इससे चंपतराय काफी दुखी हो गये और वे आत्मशांति तथा मातृ भूमि की रक्षा हेतु प्रार्थनार्थ मां विंध्यवासिनी के दरबार जा पहुंचे और वहां जाकर उन्होंने देवी मां से मुगलों के आतंक व अत्याचार से मातृभूमि की मुक्ति हेतु प्रार्थना की, तभी वहां एक महात्मा जी ने उनसे कहा कि भक्त तुम निश्चिन्त रहो शीघ्र ही तुम्हें एक ऐसा पुत्र प्राप्त होने वाला है कि जिसका नाम "शत्रुसाल" होगा और वह बहुत शक्तिशाली वीर तथा पराक्रमी होगा। वह अपने बाहुबल से अपनी मातृभूमि को मुगलों के आधिपत्य से छीनकर अपना साम्राज्य स्थापित करेगा। चंपतराय महात्माओं के इन वचनों और आशीर्वाद से संतुष्ट एवं प्रसन्न होकर वहां से वापिस आ गये। चूंकि लालकुंवरि इस समय गर्भवती थी और मुगलों से युद्धरत चंपतराय सपत्नीक नुना महेबा की ओर पहाड़ी पर डेरा डाले हुये थे तथा मुगलों से मुकाबले हेतु योजना बना रहे थे। इसी बीच लालकुंवरि की कोख से "शत्रुसाल" का जन्म हुआ जो कि छत्रसाल के नाम से जाने गये। चंपतराय के नवजात पुत्र छत्रसाल शिशु अवस्था में ही थे कि अचानक मुगलों ने चंपतराय के डेरे पर हमला कर दिया। तब चंपतराय सपत्नीक चंद सैनिकों सहित अपने–अपने घोड़ों पर सवार होकर वहां से एकदम से भागे तो भूल से छत्रसाल वहीं छूट गये। काफी दूर निकल जाने पर लालकुंवरि को अपने बेटे छत्रसाल की याद आई और वे काफी चिंतित एवं आशंकित हो

गई। उन्हें चिंतित देख चंपतराय ने तत्पर एक सैनिक को छत्रसाल की तलाश हेतु भेजा। सैनिक ने तुरंत जाकर उसी स्थान पर देखा तो छत्रसाल वहीं पड़े हुये गहरी नींद में सो रहे थे और एक बड़ा भारी काला नाग उनकी रक्षार्थ उनके समीप ही फन फैलाये बैठा हुआ था। यह दृश्य देख सैनिक चकित हो गया। उसने हतप्रभ होकर प्रभु का स्मरण कर काले नाग को अभिवादन स्वरूप नमन् किया जिसे स्वीकार कर नाग वहां से अदृश्य हो गया। सैनिक ने छत्रसाल को उठाया और उनके माता–पिता के पास ले आया तथा अपनी आंखों देखा हाल उन्हें कह सुनाया। चंपतराय ने ईश्वर का ध्यान किया और भविष्य में इस तरह के खतरे से बचने के लिए उन्होंने छत्रसाल सहित लालकुंवरि को देलवारा भेज दिया। पहाड़सिंह का विश्वसनीय मंत्री नसीमुद्दौला सक्रिय था, व पहाड़ सिंह को अपने प्रभाव में लेकर चंपतराय के खिलाफ उनके कान भर रहा था जिससे पहाड़सिंह उसकी बातों में आकर चंपतराय को समाप्त करने की योजना बनाने लगे। चूंकि चंपतराय को आमने–सामने मुकाबला कर मारना टेढ़ीखीर था। इसलिए छल का सहारा लेकर नसीमुद्दौला ने पहाड़सिंह से चंपतराय को भोजन हेतु आमंत्रित कर उन्हें जहर देकर मारने के लिये कहा। पहाड़सिंह इसके लिए सहर्ष राजी हो गये और उन्होंने चंपतराय को भोजन हेतु ओरछा आमंत्रित किया। चंपतराय ने उनका यह आमंत्रण स्वीकार कर लिया। तथा भोजन हेतु अपने चचेरे भाई भीमराय को साथ लेकर ओरछा पधार गये। पहाड़सिंह ने चंपतराय के भोजन की व्यवस्था एक ऐसे कक्ष में रखी जहां से निकलने का केवल एक ही रास्ता था और इस रास्ते पर भी सुदृढ पहरे की व्यवस्था की। फिर भी भीमराय को गिरजा परिचारिका नें भोजन में विष मिलाने की बात बता दी थी। अत: उन्होंने यह जानकर कि वीर चंपत राय को विषयुक्त भोजन का शिकार बनाकर मारा जा रहा है। इससे बचने की युक्ति निकाली और भोजन के लिए थाली परोसे जाने पर भीमराय ने चंपतराय की थाली से अपनी थाली बदल ली और भोजन कर लिया। जब भोजन के उपरांत वहां से महेबा की ओर रवाना हुए तो रास्ते में भीमराय को जीभ ऐंठने लगी और बेहोशी होने लगी। उनकी यह हालत देखकर चंपतराय बेचैन हो उठे तभी भीमराय ने संक्षेप में उन्हें सारी घटना बता दी और वीरगति को प्राप्त हो गये।

चंपतराय को पहाड़सिंह की इस विश्वासघाती चाल का बहुत धक्का लगा और वे उससे सतर्क हो गये। किन्तु शाहजहां की कुचाल को अंजाम देने वाले राजा पहाड़ सिंह एवं उसकी पत्नि हीरादेवी देशद्रोही गतिविधियों में लिप्त थे। जब उन्हें चंपतराय को विषाक्त भोजन से साबित बचा देखा तो वे बौखला गये और उन्होंने चंपतराय को जान से मारने के लिए काले कपड़े से मुंह ढके हुए कुछ लोगों को भेजा पर वीर चंपतराय ने उन सभी को मार कर देशद्रोही पहाड़सिंह एवं उसकी पत्नि हीरादेवी की इस चाल को भी नाकामयाब कर दिया। पहाड़सिंह और उसकी पत्नि हीरादेवी और उनके सलाहकार नसीमुद्दौला तथा इन सभी के शिरमौर मुगल बादशाह शाहजहां चंपतराय को निरंतर निशाना बना रहे थे। किन्तु इसी बीच मुगल बादशाह शाहजहां के द्वारा बिछाये गये मुगलिया जाल के परिणाम स्वरूप उसकी सेना कंधार में बुरी तरह फंस गई। उसने यह सोचकर कि भंवर में फंसी मेरी सारी सेना को चंपतराय ही उबार सकते हैं। उसने इस हेतु उनकी ओर संधि के लिए अपना हाथ फैलाया। चंपतराय उसकी कुचालों से और प्राणघाती कारगुजारियों से बाल–बाल बचते आ रहे थे और वे उससे बहुत सतर्क थे फिर भी उन्होंने अपनी जान को खतरा मानते हुए भी मातृभूमि की आजादी के लिए अपनी कार्य योजना अनुसार शाहजहां के लिए संधि हेतु सहमति दे दी। शाहजहां ने उन्हें पांच हजारी मनसबदार बनाकर अपने दरबार में उनका भव्य स्वागत किया और फिर दारा शिकोह के साथ एक विशाल सेना देकर उन्हें कंधार भेज दिया। चंपतराय ने वहां योजनाबद्ध तरीके से विजयश्री हासिल की। इस विजय से शाहजहां अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने चंपतराय को पुन: कौंच की जागीर दे दी तथा उनका ओहदा बढ़ाते हुए उन्हें बारह हजारी मनसबदारी दे दी। जिसके परिणामस्वरूप दारा शिकोह को भारी ईर्ष्या हुई। उसने चंपतराय से कौंच की जागीर छीनने के लिए षड़यंत्र शुरू कर दिया। इस कार्य के लिए उसने पहाड़सिंह का सहारा लिया। पहाड़सिंह दारा शिकोह के पहले से ही प्रभावित व नतमस्तक थे। इसलिए वे उसके प्रभाव में आकर चंपतराय से कौंच की जागीर छुड़ाने हेतु सहमत हो गये। दारा शिकोह काफी खुश हो गया। चंपतराय दारा शिकोह की गतिविधियों से काफी सतर्क थे इसी बीच उनकी दूसरी रानी हीराकुंवरि की मृत्यु हो गई जिससे वे काफी दुखी हो गये। जब उन्हें दारा शिकोह एवं पहाड़सिंह को षड़यंत्र का पता लगा तो उन्होंने शाहजहां द्वारा दी गई सभी सनदों का त्याग करते हुए दारा शिकोह पर हमला करने की तैयारी की जिसमें चंपतराय की पत्नि रानी लालकुंवरि भी दैलवारा से आकर उनके साथ मुगलों के विरुद्ध युद्ध के लिए खड़ी हो गई। इस तरह अपने कुछ देशभक्त वीरों को साथ लेकर चंपतराय और लालकुंवरि ने दारा शिकोह पर हमला कर दिया। किंतु वह उनके हमले से बचता हुआ अपनी जान बचाकर भाग निकला। इसी बीच शाहजहां के पुत्रों में गद्दी पाने के लिए आपस में ही गदर मची हुई थी। चूंकि शाहजहां दारा शिकोह को गद्दी पर बिठाना चाहता था मगर औरंगजेब स्वयं गद्दी पर बैठना चाहता था। उसने अपनी इस लालसा के लिए चंपतराय की ओर मैत्री के लिए हाथ फैलाया। चंपतराय भी मौके की तलाश में ही थे वे दारा शिकोह के साथ–साथ सभी षडयंत्रकारी दुश्मनों एवं देशद्रोहियों को मातृभूमि से खदेड़ना चाहते थे। इसलिए इन्होंने अपने लक्ष्य को पाने की गरज से औरंगजेब से तुरंत मैत्री कर ली। इस समय औरंगजेब दारा शिकोह पर हमले की तैयारी कर रहा था और दारा शिकोह शुजा को हराकर औरंगजेब से लड़ने अपनी सेना सहित धौलपुर जा पहुंचा था। वहां उसने चंबल नदी के किनारे औरंगजेब की सेना को घेर लिया था। तभी औरंगजेब

ने चंपतराय को लाने के लिए अब्दुल्ला खां को भेजा जो कि तत्काल ही चंपतराय को लेकर आ गया। इस तरह औरंगजेब की सेना ने चंपतराय के नेतृत्व में नदी के दूसरे घाट से चंबल पार कर ली और आगे निकलकर दारा शिकोह पर हमला बोल दिया। दोनों के बीच सामोगढ़ में घमाशान युद्ध छिड़ गया। जिसमें चंपतराय ने दारा शिकोह का सिर काटकर औरंगजेब को भेंट कर दिया। औरंगजेब ने अपनी विजय के साथ–साथ शाहजहां को बंदी बना लिया और दिल्ली की गद्दी पर आसीन हो गया। औरंगजेब ने चंपतराय को यमुना से ओरछा तक का हिस्सा दे दिया और उन्हें बारह हजार सवारों का मनसबदार भी घोषित कर दिया। किंतु चंपतराय के घोड़ों को लेकर औरंगजेब विवाद हो ही गया तथा उसकी शानी का घोड़ा दिल्ली सल्तनत में अन्य किसी के पास नहीं था चंपतराय के पास यह घोड़ा अली बहादुर का था जो कि इस समय औरंगजेब के प्रमुख सेनापति के रूप में कार्यरत था।

चंपतराय ने यह घोड़ा किसी समय अली बहादुर से युद्ध में विजय प्राप्ति के साथ ही हासिल किया था। अली बहादुर अब इस फिराक में था कि कब यह घोड़ा पुनः हासिल कर लूं। मगर वह चंपतराय से यह घोड़ा वापिस लेने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। चूंकि चंपतराय औरंगजेब के दरवार में बारह हजार सवारों के मनसबदार थे इसलिए अक्सर दरबार में ही रहा करते और छत्रसाल सहित लालकुंवरि भी उनके साथ दरबार में ही रहा करते। इसी दौरान एक बार चंपतराय के पुत्र बाल्यावस्था पार वीर छत्रसाल इसी घोड़े पर सवार होकर सैर के लिए गये। और एक जगह घोड़ा खड़ा करके वे नटों का तमाशा देखने लगे। मौका पाकर अली बहादुर यह घोड़ा लेकर भाग निकला। छत्रसाल ने उसका पीछा करने की कोशिश की किन्तु वह घोड़ा दौड़ाकर भाग गया। तब छत्रसाल ने यह वारदात अपनी मां लालकुंवरि को बताई। चंपतराय इस समय दरबार के शाही कामकाज से बाहर गये हुये थे। इसलिए अविलंब घोड़ा वापिस लेने की गरज से लालकुंवरि तुरंत क्रोधावेश में कुछ सैनिकों सहित शाही दरबार में जा पहुंची। वहां जाकर उन्होंने औरंगजेब के समक्ष भरे दरवार में निडरता पूर्वक क्रोधित होते हुए अली बहादुर को ललकारा और कहा कि एक बालक से घोड़ा छीनने के बजाय उसके पिता चंपतराय से या मुझसे घोड़ा छीनते तो बहादुरी का काम होता। एक बालक से इस तरह घोड़ा छीनकर तुमनें बुंदेली आन पर हाथ डाला है जिससे हमारी मातृभूमि का घोर अपमान हुआ है। तुम्हारा यह दुष्कृत्य तुम्हें ही नहीं बल्कि तुम्हारी सल्तनत को बहुत महंगा पड़ेगा। चुपचाप घोड़ा मेरे हवाले कर दो और याद रखो कि दोबारा ऐसी हरकत नहीं करना। अली बहादुर सहित औरंगजेब लज्जाजनक स्थिति में हो गये। उन्होंने लालकुंवरि से गलती की क्षमायाचना की और घोड़ा उन्हें लौटा दिया। इस तरह औरंगजेब के सामने ही अली बहादुर को जलील करते हुए घोड़ा वापिस लेकर लालकुंवरि वहां से प्रस्थान कर अपने महल लौट आई।

यही घोड़ा नहीं बल्कि चंपतराय के पास इसी तरह का एक घोड़ा और था। जिसे उन्होंने दाराशिकोह से युद्ध में विजय प्राप्ति के साथ हासिल किया था। यह घोड़ा औरंगजेब प्राप्त करना चाहता था। उसने यह घोड़ा चंपतराय से मांगा पर उन्होंने उसे यह घोड़ा देने से साफ इंकार कर दिया। जिससे दोनों में काफी मनमुटाव हो गया और जब औरंगजेब ने चंपतराय को शुंजा से लड़ने हेतु इलाहाबाद जाने को कहा तो चंपतराय ने जाने से साफ इंकार कर दिया। उन्होंनें यह उपयुक्त समय समझते हुए औरंगजेब द्वारा दी गई सनदों का त्याग कर दिया। औरंगजेब की नींद हराम हो गई। इसलिए उसने शाहजहां की भांति कांटे से कांटा निकालने की युक्ति अपनाते हुए दतिया के राजा शुभकरण के नेतृत्व में चंपतराय पर आक्रमण करने हेतु सेना भेजी। किन्तु चंपतराय के सामने शुभकरण ठहर नहीं पाया। वह हारकर अपनी जान बचाकर भाग गया। इससे क्रोधित होकर औरंगजेब ने स्वयं चंपतराय को समाप्त करने की तैयारी की। धार्मिक स्थलों पर लगने वाले मेलों पर पाबंदी लगा दी और मेला लगना पाये जाने पर मूर्तियों को ध्वस्त कर मेला मिटाने की कार्यवाही प्रारंभ कर दी। इसी समय मां विंध्यवासिनी के दरबार में मेला की धूमधाम चल रही थी। इसलिए चंपतराय चंद सैनिकों के साथ मां विंध्यवासिनी के दरबार में मेला की सुरक्षा व्यवस्था हेतु रवाना हो गये। इसी समय छत्रसाल भी अपने बाल साथियों सहित मेला प्रांगण जा पहुंचे। चंपतराय व उनके सैनिक मेले की सुरक्षा व्यवस्था में लग गये। छत्रसाल अपने साथियों सहित थोड़ा दूर स्थिति तक बगिया में फूल तोड़ने लगे। तभी वहां कुछ मुगल सैनिक आ गये। उन मुगल सैनिकों के सेनापति ने छत्रसाल से पूछा कि विंध्यवासिनी का मंदिर कहां है? तब छत्रसाल ने उससे कहा कि क्यों तुम्हें नहीं मालूम, यहां जो भी आता है उसे यह मालूम रहता है कि मां विंध्यवासिनी का मंदिर कहां है। पर यदि तुम्हें नहीं मालूम तो थोड़ी देर रुको हम देवी मां को चढ़ाने फूल तोड़ लें फिर वहीं चलते हैं। आप भी हमारे साथ चलना। हम देवी मां को फूल चढ़ायेंगे और आप लोग भी दर्शन करना। छत्रसाल के ऐसा कहने पर मुगल सेनापति क्रोध में आ गया और छत्रसाल से बोला कि नादान छोकड़े हम यहां दर्शन करने नहीं बल्कि मंदिर गिराने और मेला मिटाने आये हैं। मुगल सेनापति के ऐसा कहते ही छत्रसाल गुस्से में एकदम लाल हो गये छत्रसाल ने म्यान से तलवार निकाली और उसकी गर्दन पर दे मारी जिससे उसका सिर कटकर धड़ से अलग हो गया। मुगल सेनापति का यह हाल देख उसके अन्य सभी साथी सैनिक छत्रसाल पर टूट पड़े। भीषण युद्ध शुरू हो गया और छत्रसाल के सभी बाल साथी तलवारें ले लेकर मुगलों पर बरस पड़े। अपने सभी बालसाथियों सहित छत्रसाल ने इस मुगल सैनिक टुकड़ी को पल भर में ढेर कर दिया। तत्पश्चात् छत्रसाल एक हाथ में रक्तरंजित तलवार और एक हाथ में फूलों के गुच्छे लेकर मां विंध्यवासिनी के दरबार की ओर चल दिये। तभी तेज हवा के झोकों के साथ आसमान से पुष्पवर्षा होने लगी। मानो छत्रसाल के ऊपर देवता

पुष्प बरसा कर रहे हों। जैसे ही चंपतराय ने यह दृश्य देखा तो उन्होंने गर्व से अपना सीना फुलाते हुए छत्रसाल को अपनी बांहों से समेटकर गले से लगा लिया। इस तरह वीर बालक छत्रसाल सहित चंपतराय ने मां विंध्यवासिनी के दरबार में लगने वाले मेले की पूर्ण सुरक्षा बनाई तथा मुगलों को विघटन करने से रोकते हुए उन्हें अच्छा—खासा सबक भी सिखाया। इसी बीच चंपतराय की तीसरी रानी झलकनकुंवरि की अचानक मृत्यु हो गई। लेकिन चंपतराय के सामने मातृभूमि की रक्षा धर्म रक्षा और देश की आजादी का लक्ष्य घूम रहा था। इसलिए उन्होंने पारिवारिक सभी समस्याओं और दुखों को सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाया। मुगल प्रेमी पहाड़ सिंह देशद्रोही गतिविधियों में संलग्न रहते हुए १६५३ में मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनकी मृत्यु के बाद उनका पुत्र सुजानसिंह राजा बना। पर राजकाज में दखल उसकी मां हीरादेवी का ही रहता था हीरादेवी एवं सुजानसिंह, औरंगजेब के इशारों पर ही चलते। उन्हें औरंगजेब ने चंपतराय पर हमला करके उन्हें समाप्त करने हेतु उकसाया। उसके कहने पर सुजानसिंह एवं हीरादेवी ने दलेल दौआ के नेतृत्व में एक विशाल सेना चंपतराय को समूल नष्ट करने हेतु भेजी जिसमें सुजानसिंह का भाई इंद्रमणि भी शामिल था। चंपतराय अपने भाई सुजानराय सहित बैदपुर में मौजूद थे। दमेल दौआ ने विशाल सेना के साथ बैदपुर में चंपतराय पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से भारी घमाशान युद्ध हुआ जिसमें चंपतराय के भाई सुजानराय वीरगति को प्राप्त हो गये। जिससे चंपतराय अत्यंत खिन्न हो गये। उन्हें इस बात का भारी सदमा हुआ और वे बीमार हो गये। जिससे उनके परिवार के लोग भी चिंतित हो गये। उनके परिवार में उनकी पहली रानी से उत्पन्न सारवाहन एवं अंगदराय, दूसरी से गोपालराय तथा तीसरी से रतनशाह व चौथी रानी लालकुंवरि एवं छत्रसाल थे। जिनमें सारवाहन वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। तथा रानी भगवंतकुंवरि, हीराकुंवरि एवं झलकनकुंवरि भी मृत्यु को प्राप्त हो चुकी थीं। शेष सभी परिजन अंगदराय, रतनशाह, गोपाल राय, छत्रसाल व रानी लालकुंवरि इस समय उनके साथ ही थे। उनकी पुत्री मानकुंवरि का विवाह हो चुका था। छत्रसाल को चंपतराय ने मानकुंवर के यहां भेज दिया। फिर अवसर भांपते हुए उन्होंने अपनी अर्जित संपत्ति अपने परम मित्र महाबली तेली और बली पटैल के यहां अपनी संतान के लिए आड़े वक्त पर काम आने की गरज से जमा कर दी।

रतनशाह, गोपालराय, अंगदराय उनके इलाज की व्यवस्था हेतु मोहनगांव की ओर प्रस्थान कर गये मगर लालकुंवरि चंपतराय के साथ थीं। वे भी मोहनगांव की ओर रवाना हुए किंतु लाचार होने से वे सेहरा के साहबसिंह के यहां जा ठहरे। आसन्न संकट को भांपते हुए उन्होंने वहां रुकना उचित नहीं समझा और वे बीमारी की हालत में लालकुंवरि के साथ मोहनगांव की ओर चल पड़े। इस समय साहबसिंह ने कुछ देशभक्त वीर सैनिक भी उनकी रक्षा के लिये साथ में भेज दिया। मोहनगंज की ओर जाते समय सं. १७२१ में चंपतराय लालकुंवरि एवं चंद देशभक्त वीर सैनिकों सहित जब सेहरा के जंगल से गुजर रहे थे तभी औरंगजेब के कहने पर हीरादेवी द्वारा सुजानसिंह एवं इंद्रमणि सहित दलेल दौआ के नेतृत्व में एक विशाल मुगल सेना ने चंपतराय पर पुनः हमला किया। इसी बीच युद्ध के दौरान चंपतराय घायल हो गये। इस भीषण युद्ध में रानी लालकुंवरि ने अपने पति चंपतराय का आशीर्वाद लेकर शत्रु सेना का अदम्य शौर्य एवं धैर्य के साथ वीरतापूर्वक सामना किया। और हजारों सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। देशद्रोही दुश्मनों सहित मुगलों की भारी सेना को पीछे भागने को मजबूर कर दिया। सुजान सिंह, इंद्रमणि तथा दलेल दैआ सहित शेष मुगल सेना को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। किन्तु तत्काल ही औरंगजेब की सेना ने सेनानायक बहादुर खां ने पुनः आक्रमण कर दिया। मोहनगांव कुछ ही दूर रह गया था। चंपतराय बीमार, वृद्ध और लाचार तथा घायलावस्था में थे और एकमात्र लालकुंवरि चंद देशभक्त वीरों सहित बहादुर खां की मुगलशाही फौज के आक्रमण को झेल रहीं थीं। उन्होंने लड़ते—लड़ते सैकड़ों वार झेले पर अंत में वे घायल हो गई। वीर चंपतराय और लाल कुंवरि घायलावस्था में थे और चारों ओर से मुगल सेना में घिरे हुए थे। ऐसी स्थिति में वे अपने प्राणों का बलिदान करने को विवश हो गये। मुगल सेना उन पर हाथ डालती कि इसके पहिले वीर चंपतराय एवं वीरांगना लालकुंवरि ने मातृभूमि की आजादी के लिये मुगलों से संघर्ष रूपी यज्ञ के हवन कुंड में अपने प्राणों की आहूति दे दी।

किन्तु घिनौने कृत्यों को उजागर करने वाला सेहरा का एक देशद्रोही मुगलप्रेमी, बेरहम लोकपाल सिंह मुगलिया वाहवाही लूटने की गरज से मृत चंपतराय का सिर काटकर औरंगजेब को भेंट करके मातृभूमि के आंचल को कलंक साबित हुआ। जिसे बाद में नियति ने समूह नष्ट किया।

अंत में यही कहना चाहूंगा कि धर्म एवं देश की रक्षा करने वाले स्वतंत्रता के उपासक, बुंदेली इतिहास के प्राथमिक अमर बलिदानी : मातृभूमि के सजग प्रहरी वीर चंपतराय और लालकुंवरि के बलिदान का बुंदेलखण्ड ही नहीं वरन संपूर्ण भारत वर्ष सदैव ऋणी रहेगा।

संदर्भित ग्रंथः—

१. बुंदेलखण्ड — श्री मोतीलाल त्रिपाठी 'अशांत'

२. बुंदेली माटी के सपूत — श्री हीरा सिंह ठाकुर

३. ठा. श्री गौरेलाल की कुंज वृन्दावन धाम एवं श्री स्वामी गोविंद देव जी की परम्परा नामक पुस्तक। प्रकाशक — श्री मनमोहनदास, संपादक—श्री अलबेलीशरण।

४. जानकारी के प्रमुख स्रोत :

१. ठा. श्री गोरेलाल की कुंज वृन्दावन धाम के स्वमी श्री बालकदास जी महाराज के शिष्य श्री गोपीदास जी, शाखा—पड़रिया, जिला छतरपुर म.प्र.

२. पं. श्री सुखलाल तिवारी तनय श्री कामता प्रसाद तिवारी, शाहगढ़ (सागर)

३. टीकमगढ़ महाराज के राजपुरोहित पं. श्री रामबगस सिरवैया के सुपुत्र पं. श्री किशोरीशरण सिरवैया, समर्रा, जिला टीकमगढ़ म.प्र.

—शाहगढ़ (जिला सागर) म.प्र. □

बुन्देली लोकरागिनी सैर में राष्ट्रीय भावना

– डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी

बुन्देलखण्ड में सैर साहित्य का प्रचलन लोकरागिनी के रूप में अति प्राचीन है। सैर शीमधर छन्द का अपभ्रंश है जिसमें बाइस मात्राएं होती हैं तथा बारह एवं दस के बाद विराम होता है, इसके चार चरण होते हैं। सैर छन्द काव्य प्रभाकर के राधिका व कुंडल छंदों से साम्य रखता है। इसमें प्रवाह की प्रमुखता होती है, इसलिए इसे प्रवाहिक छन्द की श्रेणी में परिगणित किया जाता है। सैर छन्द में चार चौक तथा बीच में एक लावनी, हरिगीतिका या झूलना रखा जाता है, जो कवि की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए अनिवार्य नियम नहीं है।

सैर साहित्य की परम्परा पर विचार करने पर विदित होता है कि सैर का जन्म ११वीं शताब्दी में सन् १८८० के आसपास हुआ। इस विधा के जन्मदाता पं. रामलाल जी पाण्डे हैं जो गुरु परमानन्द जी के चाचा थे। श्री रामचरणहृयारण मित्र ने अपनी कृति "बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य" में सैर का उद्‌भव काल ईसा की चौथी शताब्दी माना है उनका मानना है कि "सौरिया जाति से उद्‌भूत ये लोकगीत कालान्तर में गांवों और नगरों में प्रसारित हुए और इन्होंने राजदरबारों को भी प्रवाहित किया। मुगलकालीन दरबारी कवियों ने लावनी और ख्याल का गायन इसकी प्रतिस्पर्धा स्वरूप किया। (पृ.सं. १८४) मित्र जी की यह मान्यता सैर की प्राचीनता का संकेत देती है।

सैर साहित्य केवल बुन्देलखण्ड की ही साहित्य सम्पदा है। यद्यपि बुन्देलखण्ड में लोकगायकी के देशी और विदेशी दो रूप प्रचलित हैं। सैर, फाग और सैरा देशी गायकी के अन्तर्गत माने जाते हैं, जबकि लावनी और ख्याल गायकी यहां बाहर से आई है, इसलिये इसे विदेशी गायकी की संज्ञा प्रदान की जाती है।

बुन्देलखण्ड में पूर्व में चार चरण वाली सैरों का प्रचलन था। संवत् १९६० में जन्में झांसी निवासी श्री भग्गी दाउजू ने ने चार चरण वाली सैरें लिखी हैं। ये स्याम या द्विज श्याम के नाम से अपनी रचनायें लिखते थे। झांसी में फड़ साहित्य की "नींव" डालने का श्रेय भग्गीदाउ जू को ही दिया जाता है। श्री नगर निवासी भैरों लाल ने भी सैरों की रचना की है, परन्तु इनके द्वारा लिखित सैरें अति श्रृंगारिक हो जाने के कारण सहित्यिक रूप में लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकी है। इसके अतिरिक्त इटावा निवासी पं. बाबूलाल द्वारा "सैर दिल तरंग" तथा जबलपुर निवासी जगन्नाथ मिश्र कृत "सैर वाटिका" नामक कृतियां प्रकाश में आई हैं।

वस्तुत: बुन्देलखण्ड में सैर साहित्य का जन्मदाता स्व. गंगाधर व्यास छतरपुर (सं. १८९९ वि. संवत १९७२ वि.) को ही माना जाता है क्योंकि व्यास जी के पूर्व लिखित सैर साहित्य को अधिक लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई और जो है भी वह अप्राप्त है। अत: लोकसाहित्य सैर विधा को लोकप्रियता प्रदान करने में पं. व्यास का महत्वपूर्ण योगदान हैं इन्होंने सैर साहित्य को विषय एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से परिमार्जित कर नूतन दिशा प्रदान की। इन्होंने परम्परागत चार चरण की सैरों के स्थान पर तीन चरण एवं एक टेक रखकर सैरें बनाई तथा शीर्ष पर दोहा, सोरठा अनिवार्य एवं वैकल्पिक रूप से किसी एक छन्द लावनी, हरि गीतिका, या झूलना रखकर झूमका बनाने की सर्वथा नवीन प्रणाली का उन्मेष किया, जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई। बुन्देलखण्ड में सैरों के फड़ लगते हैं। फड़ शब्द संस्कृत भाषा के "पर्ण" शब्द का रूपान्तर है जिसका शाब्दिक अर्थ है पक्ष अथवा दल। बुन्देलखण्डी लोकसाहित्य में फड़ शब्द का प्रयोग जमाव होड़ या प्रतिस्पर्धा के रूप में किया जाता है। लोकरागिनी में निबद्ध सैर फड़ साहित्य की अभिव्यंजन शैलियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बुन्देलखण्ड में फड़बाजी की एक सुदृढ़ परम्परा है इसके दो दल व्यास दल एवं पाण्डेय दल आज भी विद्यमान है जिसमें यह साहित्यिक प्रतिस्पर्धा त्यौहारों, विशेष पर्वों एवं उत्सवों पर आज भी आयोजित होती है। सैरों के फड़ जब लगते हैं, तो अनवरत रूप से कई कई घंटों चलते हैं। श्रोतागण भी मंत्रमुग्ध हो लम्बे समय तक बैठे रहते हैं। सैर गायकों की स्मरण शक्ति विलक्षण एवं चमत्कारिक होती है उन्हें सैर इतनी मात्रा में कंठस्थ रहती है कि कई दिनों तक लगातार गाते रहने पर भी उनका अथाह स्मृति भण्डार रिक्त नहीं होता।

सैर के फड़ में गायन करने वाले सदस्य चार–चार के समूह में आमने सामने बैठते हैं। प्रतियोगियों का सैर गायन गम्मत कहलाता है। इसमें ढोलक मंजीरा, घेरा आदि वाद्य यंत्रों को बारी–बारी से बजाया जाता है। दोनों दलों में से किसी भी दल का एक गायक मुग्धभाव से घेरा पर हाथ ठोकता हुआ सैर की एक पंक्ति गाना प्रारम्भ करता है उसके अन्य सहायक वाद्य बजाते हैं। प्रत्येक सैर के प्रारम्भ में दोहा, सोरठा एवं छन्द गाया जाता है तदुपरान्त सैर की एक पंक्ति को प्रथम गायक गाता है जिसे दल के सभी सदस्य दुहराते हैं। शास्त्रीय संगीत की भांति लोक संगीत में दुगन तिगुन दिये जाते हैं।

यह एक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता है। अत: दल के प्रारम्भ में रखी जाने वाली सैर प्रश्नवाचक शैली में रखी जाती है। प्रश्न का विषय नायिका भेद, काव्य लक्षण, ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनैतिक कोई भी हो सकता है। प्रथम दल द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर दूसरे दल के गायकों को देना होता है उत्तर न देने की स्थिति में पराजय स्वीकार करनी होती है। विजयीदल विजयोन्माद में झूमता हुआ गणेश पूजन के

पश्चात् फड़ का विसर्जन करता है।

सैर साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्व है। इसमें जहां लोकरंजन की महत्वपूर्ण सामग्री है वहीं विद्धतजनों के चिंतन मनन के लिये भी प्रचुर सामग्री होती है। सैर साहित्य में सभी विषयों एवं रसों की सुन्दर एवं सफल अभिव्यंजना होती है। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत अनेक सैरों की रचना सैर कारों द्वारा की गई है।

बुन्देलखण्ड की विशिष्ट लोकविधा सैर साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। सैरकार घनश्यामदास पाण्डेय कृत एक उर्दू मिश्रित खड़ी बोली में रचित सैर दृष्टव्य है जिसमें मातृभूमि के, प्रति कवि का अनन्य अनुराग मुखरित हुआ है —

दोहा — *तेरी कुदरत से हुए, हम सब हैं जो हार।*
माँ तेरी इस खाक पर, कई बहिश्त दूं बार।।

सैर — *मादरे हिंद दो जहान से तू बढ़कर।*
तेरे कदम को धाते इंदर के अवसर।
आरती दिन में शक्स करे रात में कमर।
बारूं बहिश्त तेरी एक मुश्त खाक पर।।१।। टेक
गंगा से बढ़कर नहीं है वो जिन्नती नहर।
बागे अरम से लाख गुने हैं तेरे शंजर।
किस काम के फरिश्ते जो यहां बिरादर।।२।। टेक
हर दम ये आरजू है दिल की यही लहर।
जो जिऊं तेरे लिये मरूं तेरी खातिर।
कुरबान करूं तेरे कदमों पै अपना सर।।३।। टेक
जिन्नत न मुझे चाहिए तूही है मेरा घर।
तेरी ही गोद खेलूं मैं लाख बार मर।
घनश्याम यही कहता सच्चा तेरा पिसर।।४।। टेक

भारत वासियों के लिए भारतभूमि की रक्षार्थ अपना सर्वस्त्र समर्पण करने वाले महापुरूष सदा ही वन्दनीय रहे हैं। धनवैभव, राजसुख सभी का मोह छोड़कर निरूपृहभाव से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी भारत मां को मुक्त कराने वाले सत्यानुयायी राष्ट्रपिता बापू हर भारतीय जन के प्रेरणा स्रोत हैं। सैर कार श्री गोविन्द दास सरावगी ने महात्मा गांधी की नातियों उनके सत्यनिष्ठ, तपोनिष्ठ जीवन को चित्रित करते हुये देश कल्याण हेतु किये गये उनके आत्म बलिदान को श्रद्धा सहित स्मरण किया है —

दोहा — *आजादी के सैर तुम, अब गाना दिल खोल।*
लेकिन फिर करना नहीं, पीछे टालमटोल।।

शांति — *मंत्र बापू मृदुल, कीनों मनन हमेश।*
आजादी हमको दई, सिर पर झेल कलेश।।

सोरठा — *सिर पर झेल कलेश, लियो तिरंगा हाथ में।*
कर स्वतंत्र मम देश, अपुन शीघ्र सुरपुर गये।

सैर — *जय शान्ति मंत्र सिद्धी दीनी दिखायकै।*
प्रन पक्का कर निकले झण्डा उठाय कै।
भाषन दिये विचित्र देश देश जाय कें।
बापू स्वतंत्र भारत कर गये आय कें।।१।। टेक
खद्दर की पहर धोती टोपी सिलाय कैं।
कइयक बितायी बरसै गीता को गाय कैं।
जब गवरमेंट बदल गया खबर पाय कैं।।२।। टेक
फौरन हुकुम सुनाओ लेव पकड़ पाय कैं।
आकर पुलिस ने घेरा शक्ति जनाय कैं।
लै गई पकड़ पास मजिस्ट्रेट धायकैं।।३।।
पडवायो जैल आतुर बन्दी बनाय कैं।
दई सजा सख्त जैलर मन में रिसाय कैं।
गुरुबन्द पद हरगोविन्द छन्द कहत गाय कैं।।४।।टेक

खड़ी बोली में लिखित स्व. नरोत्तम पाण्डे मऊरानीपुर की एक रचना प्रस्तुत है जिसमें राष्ट्रपिता गांधी की लंगौटी की प्रशस्ती का बखान है —

सैर — *सिधि सम्पदा सम्हारन सुखमा समाज की।*
छबि साज रही राखन है कृषक लाज की।
आरत से देश भारत के करन काज की।
गांधी की लंगोटी की ध्वजा है स्वराज की।।१।। टेक
खादी की बनी गौरव भारत के ताज की।
लखलख के भीति मानत मन में अराजकी।
चक चूकूती मुचार कठिन बैरी बाज की।।२।। टेक
भारत में हरन क्लेश भरन विभव भ्राज की।
तन नग्न के सुढ़किये की सरन साज की।
सुरसरि सी सन्त जग में छबि छटा छाज की।।३।। टेक
दुख हरन भरन कृषकन के घर अनाज की।
काटन गुलामी पाठन मुनि पंचराज की।
प्रतिमा है नरोत्तम जू तप और त्याग की।।४।। टेक

इतिहास की गौरव झांसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई की शौर्य गाथा जन जन में विख्यात है। सैर कार हल्काई ने उनके स्वदेशानुराग को स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किये गये उनके बलिदान को स्मरण कर लिखा है —

दोहा— *जबै लक्ष्मी ने लखी, शत्रु सेन चहुं ओर।*
क्षत्रानी रानी तबै, ठानी ठान कठोर।।

सोरठा— *ठानी ठान कठोर, टोर लाज बनसीत है।*
भौहें लई मरोर, वीर धरै किम धीर है।

छन्द— *रानी ने है अरिदिल दलनको साज कीन्हों साज है।*
नाही मलेक्षन को झुके मम शीश सही ताज है।
खैंची कृपान म्यान सें रख आज तू अब लाज है।
चढ़ बाज पर पल में परी जिम शत्रु दल पर गाज है।

सैर — *रखने को वीर बाने की करी बान है।*
गौरव को गर्व गारन कीन्हों प्रयान है।
क्षण में दे भेंट दीने अरि के गुमान है।
हो क्रुद्ध युद्ध हेतु लई कर कृपान है।।१।। टेक
रई चमक चारू चपला—सी आन बान है।
तैसई लखातरण में चारऊ दिसान है।
हो विकल शत्रु सेन लगी थरथरान है।।२।।

लावनी— *क्षण में हनत हजार करत असवार बार नहि आनी है।*
लासानी है लिए अरिदिल को काल कृपानी है।

जैसे शुम्भ निशुम्भ काज थी काली रूप भवानी है।
तस फिरंगियन के दल दलती झांसी की महरानी है।

सैर — झुक झपट दपट तुरंग जहां गिरत आन है।
भगजात शत्रु शूर कूर के समान है।
चितवत चकित चहुं दिस न रहो ज्ञान है।।३।। टेक
कर दयो विदेसियन को अति हलाकान है।
बाई की वीरता को जानत जहान है।
हल्काई विन्ध्य भूमि की रही शान है।।४।। टेक

भारतीय इतिहास में एक ओर जहां माहत्मा गांधी, महारानी लक्ष्मीबाई, जैसी आत्मबलिदानी विभूतियों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं वहीं कुछ ऐसे देशद्रोहियों के नाम भी हैं जिन्होंने अपने कुकर्मो से भारत को पराधीनता की असह वेदना सहने के लिए विवश कर दिया। लोककवि ऐसे ही देशद्रोहियों को समूल नष्ट करने की प्रेरणा इस ऐतिहासिक सैर में देते हुए लिखते हैं —

दोहा — अमर करो निज नाम को, मर मर रण के बीच।
जान सिंह बल लै अरे, मानसिंह वह नीच।

सैर— सब मान मानभूपति का मही मिला दो।
बहनोई को उसके आज मजा चखा दो।
बैरिन के वृन्द काट के पहाड़ बना दो।
सुरपुरी तलक वीरों सीढ़ियां बना दो।टेक।।
चुगलों के साथ मुगलों को मार भगा दो।
तलवार नागिनी को अरि प्राण भखा दो।
राजपूति यश वेभव को उच्च उठा दो।।२।। टेक
इस तरह वीर मारते हैं सबकसिखा दो।
प्यासी है मातृभूमि शत्रु रक्त पिला दो।
आ गिरे, आगरापति चरणों में गिरा दो।।३।। टेक
दिल्ली की करके किल्ली ठिल्ली सी बहादौ।
रणचण्डी पर अरि शीष बलिदान चढ़ा दो।
घनश्याम हल्दी घाटी तीरथसी पुजा दो।।४।। टेक

देश की तत्कालीन समस्याओं पर भी लोककवि ने अपनी लेखनी चलाई है भारत की सबसे विकट समस्या जनसंख्या वृद्धि है। निरन्तर बढ़ रही जनसंख्या हमारे लिए अनेक संकटों को पैदा कर रही है। अत: जनसंख्या नियंत्रण हेतु इंदिरा गांधी के कार्यकाल में परिवार नियोजन की नीति निर्धारित की गई थी। इस के साथ ही अनेक सुधारात्मक योजनायें बनाई गई थीं जिसकी ओर संकेत करते हुए लोककवि ने लिखा है —

दोहा— पूर्ण विश्व को हेतु लों, वंश नियोजन कीन।
वनी योजना राष्ट्र की, रहै न एकहू दीन।

सोरठा— रहै न एकहू दीन, सीमित जनसंख्या जभी।
सभी विपत से हीन, होवे जन तन मन सुखी।

सैर — बांधे अनेक बांध सुखी भए नर नारी।
भयो अन्न अधिक पैदा जब बारी बारी।
तब खूब बढ़ी जनता निज राज विचारी।
भारत भूमि भारत माता ने निहारी।।१।। टेक
करवै को सुखी जनता नीति निरधारी।
भेजे अनेक गांव गांव शिक्षा प्रचारी।
लगे सघन वृक्ष सुन्दर सेतु मार्ग मझारी।।२।। टेक
तम तमस दूर करवे को विद्युतधारी।
मिले खेतखेत पानी तब नहर निकारी।
अब भूमि भई क्रमती बहु बड़ी प्रजारी।।३।। टेक
हम दो के दो होवे तभी होय सुखारी।
भारत में रहै एकहू न भ्रष्टाचारी।
जन जन के मन निर्मल कर कुंज बिहारी।।४।। टेक

भारत भूमि के श्रृंगार काश्मीर पर पाकिस्तान की कुदृष्टि भारत के लिए एक विकट समस्या है। काश्मीर प्राप्ति की लालसा में अन्धा पाकिस्तान अपनी आक्रामक गतिविधियों से लगातार निन्दनीय कृत्य कर रहा ह। काश्मीर वासियों का जीवन भय और आतंक से घिरा हुआ है। लगातार निर्दोष और निरीह लोगों की हत्यायें भारत के लिए चुनौती बनती जा रही है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज की जीवंत तस्वीर साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। काश्मीर समस्या से हमारा साहित्यकार अनभिज्ञ नहीं है, निरन्तर साहित्यकार अपनी लेखनी से इसे वाणी दे रहे हैं। लोककवि ने अत्यंत ओजस्वी शब्दावली में पाकिस्तान को चेतावनी देते हुए इस सैर में अपने मनोभाव को प्रकट किया है:—

दोहा— दिल दिमाक से दूर कर, काश्मीर का ख्याल।
हो जावो नो मूढ़ के, मिले न सुन लो हाल।

सैर— सुन लेव हाल छोड़ो जा हठ हमीर है।
दुरदसा भई जैसी, वह बेनजीर है।
दावा के साथ कहते खिच के लकीर है।
मिलने मिया नवाज नहीं काश्मीर है।।१।। टेक
समान जंग जोरो होकर अधीर है।
पाहो न पेसभारत रनधीर वीर है।
मर जाव जूझ रन में वन जाव पीर है।।२।। टेक

सैर रचनाकार श्री नरोत्तम पाण्डेय मऊरानीपुर की एक सैर प्रस्तुत है जिसमें कवि का अपनी कर्मभू बुन्देलखण्ड के प्रति अनन्य अनुराग गुंजित है —

बन्दगी तुझे रुतबा आली बुन्देलखण्ड।
तू तो बहिश्त से भी वाली बुन्देलखण्ड।
क्या लिखे कलम तेरी लाल बुन्देलखण्ड।
बागे अरम शजर की डाली बुन्देलखण्ड।
दुनिया में तेरी शान निराली बुन्देलखण्ड।।१।। टेक
सब कुछ है तुझमें किससे तू खाली बुन्देलखण्ड
चम्पत है लाल तेरा माली बुन्देलखण्ड।
दुनिया में तेरी शान निराली बुन्देलखण्ड।।२।। टेक

निष्कर्षत: यह कहना अत्युक्ति न होगी कि समस्त भारतीय भाषाओं में प्रवाहित राष्ट्रीय काव्य भाव धारा की भांति बुन्देली लोकसाहित्य में भी उदात्त राष्ट्रीयता के स्वर गुंजित हुये हैं। बुन्देलखण्ड की लोकगायकी के रूप में प्रचलित सैर साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ है।

—३०, तमराई मुहल्ला, छतरपुर म.प्र.□

बुन्देली बेटियों की कला साधना

– विंध्य कोकिल पं. भैयालाल व्यास

बुन्देलखण्ड की माटी की अपनी महिमा है। समूचा भारत भावना, ज्ञान, कला और साधना का सजग स्वरूप जहां है वहीं बुन्देली माटी के कोने कोने में बिखरे फैले सिकुड़े सिमटे साधना के कला के सौन्दर्य के कर्म कौशल के विचारों के आचारों के आध्यात्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक तत्व अपनी अनूठी आभा लिये हैं। प्रत्येक क्षेत्र की छत्रप जैसी सामर्थ्य को जन–जन में सुख–सौरभ का संचार करते अघाते नहीं है।

बुन्देलखण्ड की सौंधी सांसें भारतीय जीवन की हर इकाई त्याग का, तप का, साधना का, सुरुचि का, कला का, और समग्रता का सन्देश अपने क्रियाकलापों, उत्सवों समैयों, त्योहारों और मान्यताओं के द्वारा देती आ रही हैं। यहां का प्रत्येक दिन सप्ताह और महीना अपना एक रंग लिये हैं, रूप लिये हैं, सुन्दरता संजोये हैं। वह पूरे वर्ष को वैभव और सांस्कृतिक सोच से सजाता चला आ रहा है।

यहां की नारियों का मातृत्व सेवा–सुश्रुषा–समर्पण का जहां अपना स्वभाव है – वहीं वीरता–कर्मठता–कुशलता और कला साधना पूजन–भजन में सात्विकता का और विभुता में निहित सरलता प्रदर्शित करना उनका सहज और उदार चेतन है। यही कारण है कि यहां की बेटियां लक्ष्मीबाई बनती हैं, जैतपुर की रानी बन सकी हैं और गुलेलों के निशाने से बड़े–बड़े वीरों की तीरन्दाजी को चुनौती देती रही है।

इसी क्रम में आगे सोचें तो बुन्देलखण्ड के अपने जीवन में हर त्यौहार अपनी सामाजिक संस्कृति का इतना शिष्ट सफल और सार्थक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि आज इन पुरातन प्रथाओं में पले–पुसे उदाहरणों पर मुग्ध होकर उनकी और वापस जाने का मन करता है। बुन्देलखण्ड के ये स्वरूप किसी एक के अपने विचार नहीं वे समग्रता के सूचक हैं संस्कृति के संवाहक हैं, पूर्णता के प्रतिनिधि हैं।

चैत में चैती–वैसाख में साखी जेठ के तापस व्रत, असाढ़ से वर्षा के मल्हार, झूला–झांकियां–सावन की राखी – भादों के कन्हैया जू के–जनम के उत्सव, तीजा के – गौरी पूजन के, गणेश के गुणगान – क्वांर के नौरता – शारदीय जीवन, माता के पूजन – कार्तिक के स्नान–गान, कृष्ण की लीलाओं की मधुर महिमामयी लोक गायकी और इसी प्रकार के आगे के क्रम, तीर्थ यात्रायें मेले लमटेरा, बिलवारी के साथ, शिवरात्रि और संक्रान्ति के त्योहारों के तेवरों को संजोये हुरियारी होली की उमंग अपने आप में कलात्मकता के प्रति सहज आकर्षण और व्यक्तिगत जीवन के जाग्रत उदाहरण है। हलछठ के चतेउर (चित्रकला) बाल लीलाओं की झांकियां सांझी देवी जागरण के भजनों जवारों की लहरों में हर जगह लोक कला के कौशल हमें मिलते हैं। सोहर के गीतों–गोबर के सातियों–चतेऊरों, नाग पंचमी के नाग चित्रण, कार्तिक की सुरैती–दीवाली–होली की भैयादूजों के अवसरों पर गोबर के स्थापन मूर्ति अंकन अपने आप में माता बहिनों की कला प्रियता हमें सदा से आकर्षित करती आई है, आज इन लोक जीवन से जुड़े आदर्शों के प्रति उदासीन भावना नन्नै–मुन्नौं के भटके सोचो के सोच हमसे प्रश्न करते हैं कि आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में हम किधर दौड़े जा रहे हैं?

विस्तार भय से उपर्युक्त सर्न्दभों का विस्तृत विवेचन करने से बचते हुए हम यहां अपनी बेटियों के वैभव के एक दो पर्वों पर विस्तृत चर्चा करके संतोष करना उचित समझते हैं।

बुन्देली बेटियों के कलात्मक क्रम के कौशल कहां तक कहे जायें – देवठान के पूजन के अवसर पर गन्ने के मण्डप के तले का विस्तार लिए विभिन्न गीले रंगों विशेष सफेद तथा गेरू रंग की अल्पना चित्रकला की श्रेष्ठ उदाहरण है। इसे एक सॉक में रूइ लपेट के कूची बन के अंकित किया जाता है। पूरे आंगन मे पसरा यह चौक कला चातुरी का नमूना है वहीं विवाह के मण्डप के चारों ओर पौंचा पांचों उगलियों के द्वारा छुहा चौक अर्थात हस्त कला से फैलाते हुए पूरे अंगना को आकर्षित करता है। 'फ्री हेण्ड ड्रायंग' तो किसी आधार पर कागज पर उकेरी जाती है उसे सुधारा भी जा सकता है पर यह छुट्टा–छिड़कते हुए अल्पना को बनाना और एक–एक कोर कंगूरा संतुलित रहना कितना विस्मयकारी है। ये अल्पना आटे–हल्दी और गुलाल के तीन रंगों के तीन पर्तो में उकेरी जाती है कहीं कोई रंग मिलते नहीं छुट्टा फेंकते हुए भी वे अलग अलग रहके तिरंगी छटा प्रस्तुत करते हैं – चित्रकला का यह रूप वास्तव में कुशल चित्रकारों के लिए सीखने समझने और उसे शाश्वत स्वरूप देने की वस्तु है।

बुन्देलखण्ड ब्रज मण्डल से जुड़ी भक्ति भावना की भूमि है। यहां की हर लीला उत्सव समैया में ब्रज की लीला का दर्शन होते हैं। क्वांर वदी एकादशी से शुक्ल प्रतिपदा तक मन्दिरों में सांझी की झांकियाँ सबका मन मोहती है। समूचा बुन्देलखण्ड ब्रजरूप हो जाता है। रातों–दिन एक करके कलाकार विभिन्न रंगों से कृष्ण लीला का प्रकृति के चित्रण यमुना की लहरों, कदम्ब की छैया और बन्दरों की वाचालता, गौओं–बछड़ों के वैभवों को उकेरते हैं। सांझी मन्दिरों में भगवान के अन्तर्गत के आगे दालान में सजती है। मन्दिरों में भी झाड़–फानूस चित्रों के द्वारा सजावट होते हैं कि दर्शक हर दिशा में एक दिव्यता की झांकी देखते नहीं अघाते।

हमारी बेटियां–बहिनें इसी सांझी की कला के रंगों की

विविधता से सबक लेकर—सुअटा खेलने में इस चित्रकला को लोककला के रूप में अधिक व्यापक बनाती हुई अपनी साधना की सामर्थ्य को बतलाती है।

सुअटा जिसका मूल अर्थ समझना आज भी शेष है किसी विशेष शब्द का अपभ्रंश है। व्यवहारिक रूप में अनेकों जगह इसे नौरता भी कहते हैं। सत्य यह है कि सुअटा बेटियों की नवरात्रि साधना के क्रम में प्राप्त सुअटा का पूजन— दिन में मां जगदम्बा की अर्चन वंदना और रात्रि में देवी जागरण की नौरातों का अनुष्ठान ही इसका अभिप्राय है। सुअटा गांव, कस्बा, नगर के मुहल्लों में किसी एक के घर के बाहर बड़े चबूतरे पर बनाया जाता है जिस घर का स्वामी इस सुअटा की पूजा व्यवस्था की जिम्मेदारी ले लेता है वही पर सुअटा का पूजा होती है इसमें किसी बड़ी—छोटी जाति या वर्ग भेद का प्रश्न नहीं होता है। मुहल्ले की सभी कन्यायें इसी चबूतरे पर अपनी चतेउर कला का प्रदर्शन करती है।

सुअटा की छोटी—छोटी सोलह पक्की सीढ़ियां बनती हैं ऊपर चौकोर आसन पर पूजन सामग्री दूध—घी दिया जल रखा जाता है। इसी स्थान पर ऊपर दीवाल पर एक देव मूर्ति बनाई जाती है। जिसके दोनों और चन्दा—सूरज को उकेरा जाता है। कहीं कहीं इस मूर्ति को राक्षस कहा जाता है जो कि कन्याओं का अपहरण करता था तो उसकी शांति के लिये कन्यायें उसका पूजन करती है। अधिकतर इसे देवरूप में पूजा जाता है और मूल रूप से इसी स्थल पर सप्तमी से गौर की पूजा होने लगती है। इस प्रकार क्वांर सुदी पड़वा से नवमी तक गौरादेवी का पूजन ही इस सुअटा के आयोजन को मुख्य उद्देश्य है।

सुअटा पूजन के लिए बहुत पहिले से बेटी अपने घरों में रंग बनाती हैं। उन्हें एकत्रित करती है। खसखस के पत्थर से हलका सफेद—दूधिया पत्थर से झक सफेद पवाँर की पत्तियों को सुखा पीस कर हरा—इमली के चिया पीस कर खैरा रंग तथा खसखस के चूरा में केसरिया रंग डाल के पीला रंग, गुलाल तथा गुलाल में दूधिया सफेद चूरा मिला के गुलाबी अन्यन्य प्रकार के रंग घर में तैयार करती हैं। इस प्रकार एक रंग से कितने रंग बनते हैं आदि इस का विस्तार उनके इस सुअटा के खेल की लगन से अपने आप होता जाता है कालान्तर में उनका यह ज्ञान अपने भावी जीवन में गृह की साज सज्जा के काम आता है।

प्रात: होते कन्यायें एकत्रित होकर उस विशाल चबूतरे को कई चौकों में बदल के संख्या के हिसाब से उन चौकों को बांट लेती है। उदाहरण के लिए यदि इस सुअटा पर केवल सोलह लड़कियां हैं तो वे चार चौका को बांट कर चार लड़कियां अपना चौक सजातीं हैं। पहिले उरैन डालती है अर्थात् ढिक—किनारे सफेदी से बनाके बादमें गोवर से लीपतीं हैं अपनी अगुलियों की कला से कोरे निकालती हैं। जब गोवर—फरहरा हो जाता है तो अपने अपने घरों से लाए रंगों से इस चौक में विभिन्न प्रकार की कलाकृतियां तोरण बन्दनवार स्वास्तिक बनाती हैं। ये पूरी चित्रकारी उनको चिकुटी से होती है। जब चारों चौक पुर जाते हैं तो एक दूसरे के चौक की स्तरीय परीक्षण बुजुर्ग महिलायें करते हुए उन्हें आगे प्रतियोगिता का बल देती हैं।

पूजा के इन प्राथमिक कला संयोग के बाद सभी बेटियां एकत्रित होकर कांय डालती है। अर्थात क्रम से प्रत्येक बेटी—दूब से दूध छिड़क के सुअटा का पूजन करती है। ये क्रम तब तक चलता रहता है जब तक हर बेटी कांय नहीं डाल लेती और उनकी गीतों की श्रृंखला पूरी नहीं हो जाती। उनमें छोटी—बड़ी नीची ऊंची जाति को कोई भेद नहीं होता है न ही ऐसा कोई सोच। सभी बेटियां एकत्व की मूर्तिमन्त झांकियां सी लगतीं हैं कांये डलने का क्रम चलते ही सामूहिक मधुर स्वर ऐसे उभरते हैं कि गली—गली मुहल्ला, गांव संगीत की सुहावनी बेला में समा जाता है प्रारंभ होता है —

हिमांचल की कुंअर लड़ायती, नारे सुअटा
गौराऔ क्वारें नेरा तोरा........।।

हिमांचल की लड़ैती कुँअर गौरी पूजन के साथ हर कन्या के पिता का नाम लेकर गीत तब तक आगे बढ़ता जाता है जब तक सभी बेटियां अपने क्रम में कांये नहीं डाल लेती अर्थात गौरी पूजन नहीं कर लेती, उदाहरण के लिए —

ब्रषभान जू की कुंअर लड़ायंती नारे सुअटा —
राधा क्वारे नेरा तोरा........।।

जब कायें पूरी हो जाती है तो विभिन्न क्रमों से गीतों द्वारा गौरी के दर्शन पूजन होते चलते हैं —

मेरी गौर की झांई देखौ का पैरे देखौ देखौ।।
सीस पै सीस फूल देखौ माथे बिदिया देखौ—देखौ।
कान कनफूलदेखौं—देखौं — नाक में वेसर देखौ देखौ
गारैं लल्लरी देखौ देखौ—गरे में हसुली देखो देखौ।
वायें बाजू बंद देखौ देखौ—हात में कंगना देखौ देखौ।
कमर करधनी देखौ देखौ—पांव पैजना देखो देखौं
हातन पौंची देखौ देखौ उगरिन मुदरी देखौ देखौ।

तात्पर्य गौरा रानी के वस्त्रादि लेकर नखसिख के श्रृंगार का वर्णन बेटियां अपनी—रचना कला से घटाती से बढ़ाती चलती है उन्हें इस प्रकार एक आत्मीय आनन्द तो प्राप्त ही है संगसंग सभी प्रकार के गहनों का ज्ञान इस कलात्मक पूजन अर्चन और खेल में होता चलता है। खेल खेल में ज्ञानार्जन की यह रीति कितने गहरे अर्थ लिये हैं।

गीतों के इसी क्रम में नारी सुलभ ईर्ष्या कौतुहल चुहलबाजी की झलक बीच—बीच में देखने सुनने को मिलती है जब ये कन्यायें दूसरी ओर के सुअटा पूजन करती बेटियों की गौरों को देखने में विपरीत भाव प्रदर्शित करती है। वे कहती हैं और गौर की झांई देखौं का पैरें देखौ देखौ नाक नकटी देखौ—आंखन में भैड़ी देखो आदि इस प्रकार की चुहल में उनका एक मनोरंजन तो होता है विकलांग से इसका भी ज्ञान होता है। जैसे हातन

घूंघी–पावन लंगड़ी देखौ आदि। अपनी गौर की सुन्दरता बखान करने और दूसरे की गौर की हंसी उड़ाने में वे बेटियां अपनी कल्पनाशीलता का परिचय देती है। लगता है ये क्रम भावना वश हमारे संस्कारों के कारण दूसरे को हम देखकर अपने को बड़ा बना लेने की एक स्वाभाविक दुर्बलता है।

इसी प्रकार गीत विभिन्न रीतियों से पूजा के क्रम में बढ़ते हैं — बेटियों के स्वभाव का बखान करते हुए बोल उभरते है–

ऊगई न रे बारे चन्दा मों घर हो वे लिपना पुतना
तातौ होय तो लपलप खैहौं बासौ होय कौर न दैहों।
चकिया कौ डड़ा न छीहौ पानी की खेंप न धर हौ
बाबुल को कहौ न कर हौ भैया कौ कहौ न कर हौ

लाड़ लाड़ में बिगड़ी बेटी के ये बोल उस खेल की परम्परा में कितना अर्थ लिये हैं।

'सास न होय दै दै दरिया ननद व होय कोसैं बरिया।' मायके के इन स्वभावों के रहते भी जब बेटी का विवाह हो जाता है तो वह सास के न होने पर देहरी सूनी और ननद के न होने पर चुहल बाजी के न होने का अभाव प्रकट करती है इस प्रकार नारी जीवन के विभिन्न पहलू इस सुअटा की कला साधना में स्पष्ट होते चलते हैं —

वहीं जब ससुराल जाने की सोचती हैं गीत उभरते हैं तो करुणा के ये बोल—काव्य साहित्य के लोक जीवन के कितने मार्मिक प्रसंग बनते चलते हैं कि कल्पना की इन उड़ानों पर उड़ती बेटियां करुणा का रूप बन जाती हैं। आंसू रुकने का नाम नहीं लेते। साथ ही एकत्व की अनूठी भावना भारतीय भाई और बाहन के लोक व्यापी रूवरूप को समझाते हुए हमें अपनी सभ्यता पर चरित्र पर गर्व करने का अवसर देते हैं। एक बेटी के भाई नहीं है सुअटा पूजन चलते गीत उभरता है

''को बेटी तोय लिवाउन जै है — बुलाउन जैहै?
लै पियरौं यह रावन जैहै?

तो ये ही करुणा के बोल बेटी की उदात्र भावना से भर के एवं आनंद बन जाते हैं वह कहती है, क्या सभी बेटियों गाने लगती है – सभी के आने भाई उनके भाई बन जाते हैं। गीत आरंभ होता है प्रकृति के साहचर्य से मानवीकरण से —

''जे मेरे भैया—चंदामल भैया सूरजमल भैया जे सब मोय लिवाउन जै है.. बुलाउन जैहै — लै पियरों पहराउन जैहै चन्दा–सूरज उसके भाई वे लैने बुलाने और सभी प्रकार वस्त्रों को लेकर पहनाने जायेंगे —

प्रकृति का साहचर्य हमारी संस्कृति है तुलसी को राधा की संगिनि देखना, पीपल में वासुदेव आँवले में इच्छा पूर्ति, बरगद में वट सावित्री से सौभाग्य के संयोग हमारी धरती की उदात्त चेतना है। बुन्देली माटी की सांसों में ये पग—पग पर सुनाई देती है — इसी चन्दा सूरज के क्रम में नगर—गांव, गली–कूचे के सभी भाइयों के नाम उभरते हैं एकत्व के दर्शन करते हैं। गांव के सभी भैया—हर बेटी के भाई है हर बेटी उनकी बहिन है —

''जै मेरे भैया
राम किसन भैया — राव साव भैया, दिमान साब भैया, बहादुर सिंह भैया, हरीसिंह भैया, पटेल जू से भैया जे मेरे भैया–
मां के जाये दूध पियाये गोद खिलाये।

ये सभी मेरे भैया हैं। देवताओं राजाओं सामन्तों से लेकर हर कोटि का, वर्ग का भैया उनका भैया है माँ जाया भाई है, एक दूध का भाई है ये सब उसे लिवाने जायेंगे एक के भाई नहीं तो क्या चिन्ता सबके तो है ये विश्वास —

''ये मेरे भैया— ये सबरे भैया— मांके जाये दूध पियाये
ये सब मोय लिवाउन जै हैं और
लीले से घुरवा कुंदाउत जैहै नचाऊत जैहैं
अंध कुआ उघराउत जैहें, फूटे ताल बँधाउत जैहैं।
वन की चिरैया चुगाऊत जैहै भूखे पेट भराउत जैहै
नागिन उन्ना उड़ाऊत जैहै...।।

मेरे भैया ऐसे वैसे नहीं हैं नीले घोड़ा पर चढ़के मुझे लेने आयेंगे इसी शुभ से अपने भाइयों की राष्ट्रीय, समाज और संस्कृति की सेवा भावना को बहिने अपने बोलों में बखानते हुई बुन्देली वैभव को उजागर करतीं हैं। सुअटा के खेलो में इस कला साधना में संस्कृति के दर्शन कितने प्रभावी है सोचते रह जाना पड़ता है — बड़ी पीड़ा होती है, लिखने में कि आज की पौद उन खेलों को गवांरू कहके इनसे हटती जा रही है और मेरी सामने वाली खिड़की में एक चांद का टुकड़ा रहता है जैसी फिल्मी वासनाओं के गाने और इस सभ्यता संस्कृति पर अपनाने में गर्व का अनुभव करती है। हमें सोचना होगा कि जिस देश का, दूर का व्यक्ति भी एक बेटी का सगा भाई होता है वहीं सामने की लड़की वासना की वस्तु बनने की बात आज हमें प्रसन्नता देती है। हमारी चेतना का यह पतन इन लोकगीतों को सुनके इन खेलों की शिक्षा को ग्रहण करके यदि बच सके तो हमारा कल्याण होगा।

गौरी पूजा के ये क्रम जिसे हम कांय डालना कहते हैं पूरा होते होते या गौरी से सब कुछ याचना करते—करते अन्त में बेटियां कह उठती हैं —

''हमतौ मांगे ना कछू गोरा देवै सब कछू''

तात्पर्य उनकी यह निष्काम भक्ति उन्हें स्वत: सब कुछ दे देगी वे क्यों मांगे? सुअटा के पूजा का ये क्रम छ: दिन गौरी के नाम पर चलता हुआ सातवें दिन गौरा रानी की मूर्ति को खरीदने के लिये बेटियां कुछ मांगने निकल पड़ती है — वे हवेली की ओर बढ़ती है तो पहरेदार बैठे हैं —

''पोरन बैठे पौरिया नारे सुअटा कैसं पौचे द्वार?''

पर उन्हें पहुंचना नहीं पड़ता रानी साहिबा स्वयं बाहर आके इतना देतीं हैं कि बेटियां गौरी रानी को लेने बुलकियार मूर्तिकार से पहुंच कर गौर खरीद के उनका श्रृंगार करके गातीं

हुई — वापस स्थल पर आती है गौरी की स्थापना होती है और नवमी तक फिर इन सजी धजी गौरी की मूर्ति पूजी जाती है पूजन का क्रम वही रहता है।

कहना न होगा कि सुअटा का यह लोकोत्सव नवरात्रि के अवसर पर महलों में नौवद के वादन, शहनाई के गुंजन नवदुर्गा की साधना.... जवारों की स्थापना और घटों के पूजन के साथ रतजगा में भजनों का भाव लिए इतना व्यापक प्रभाव भक्ति का, आराधना शक्ति का, नवयात्रा का, सिद्ध रूप प्रस्तुत करता आ रहा है कि हमारी चेतना आज भी उनकी ऋणी है।

बुन्देलखण्ड में सप्तमी को पवारां का, अष्टमी को धंधेरों का और नवमी को बुन्देलों, राजाओं, जागीरदारों का, सामन्तों का दशहरा होता है शस्त्र पूजन, बलिदानों का शौर्य प्रदर्शन क्रम चलता है इसी बीच सुअटा के पूजन का अष्टमी को रात्रि में भसकूं अर्थात् उबले चनों का भोग लगता है और नवमी को सभी विधिवत् पूजन करती है।

इसी क्रम में जिन बेटियों का उसवर्ष विवाह हो जाता है वे दिन में सभी प्रकार के व्यंजन बनाके जाती हैं और सुअटा के खेल का उजैना करती है अर्थात् अब वे कन्याओं के इस पूजन परम्परा से विलग हो गई है। सुअटा उजाते जब वे गौरी को गले लगाके रोती है विदा लेती है तो कोई ऐसी आंख नहीं होती जो गीली न हो जावे।

नवमी के दिन दिनभर पकवानों का चढ़ना होता है। कन्यायें स्वयं के पकवान बनाती है इस प्रकार के इस खेल के माध्यम से उन्हें सभी प्रकार के व्यंजन बनाने की पाक शिक्षा प्राप्त होती जाती है।

कन्याओं की यह कोमलता समग्रता बनने हेतु कितना तप करती है, साधना करती है, मातृ शक्ति के रूप में मानवता को पोसती है, पलती है, काश! हमारा सोच इन्हें अबला और भोग्या से आगे जाकर पूज्या का बने तो कितना भला हो मनुष्य जाति का।

नवमी की रात्रि को प्रत्येक सुअटा खेलने वाली बेटियों की टोलियां मिट्टी के डबला में छेद बनाके दीप जलाके तालाब पर जातीं हैं चौक पूरतीं पूजन करतीं हैं इसे ढिरिया कहते हैं चूंकि ढिरिया में सभी सुअटों की टोलियां मिलतीं हैं तो स्वाभाविक है कि अच्छे—बुरे ढंगों की चर्चा होते ईर्ष्या सी जगती है और ईर्ष्या का प्रतीक 'शब्द' 'सौत' सामने आकर एक नया रंग प्रस्तुत करता है —

''ढिरियां में ढिरिया मिली, नारे सुअटा

ढिरियाई वारी सौत'' पर कुछ तत्काल खिलखिलाहट से बदलता है। ऊपर चांद तारे नीचे तालाब की लहरों, ढिरिया के दीपों की परछाई आकाश पृथ्वी के ज्योतिर्मय मिलन का दृश्य पैदा करते हैं

ढिरिया गाते—बेटियां लौटती हैं —

''चन्दा रामराम लेव, सूरज राम राम लेव हम घरै चले।।

चन्दा के आस पास मुतियन की पोत बिटियां खेलें सब सब रात।

चन्दा राम राम लेव सूरज राम राम लेव हम घरे चले।

ये बोल चन्दा सूरज से उतरते हर बहिन के भाइयों के नामों का उल्लेख करते बहनों का आशीर्वाद और समापन की करुणा की युगलबन्दी बन जाता है। चलते चलते बीच में अपने भाई के पुरुषार्थ और भाभी के योग्य सौभाग्य इन बहिनों के बोल बनके रिश्तों को रमणीक बनाते हैं —

'सातैलरी कौ झुमका नारे सुअटा
धरौ धरौ बिललाय नारे सुअटा
लेलो चन्दा मल भैया मोल कौ नारे सुअटा
तुमरी दुलैया बड़ी जोग

चन्दा—सूरज तथा बेटियों के सभी भाई समर्थ हैं और ये सात लड़ी के झुमके प्यारी भाभियों के योग्य है, बहिन भाई भाभी के आत्मीय रिश्तों का गान करते हैं। एक ननद का अपनी भाभी के प्रति भाव भरा यह स्वरूप स्वर्गिक सुख देता है। हमारे बुन्देली जीवन के यह स्वर संगीत कला चित्रकारी खेलने में भक्ति साधना और सिद्धि के आयोजन सदा सदा अनुकरणीय है।

आवश्यकता है कि हम इन लोकरंजक खेलों को, आयोजनों को नया रूप देकर अपने पुरातव वैभव और संस्कारों को जीवन्त बनाते हुए एक नयी राष्ट्रीय चेतना विकसित करें कि बुन्देली धरती का यह उदात्त चेतन राष्ट्र की गरिमा बने।

— नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर म.प्र.□

<u>लघु कथा :</u>

छोटौ ठेकेदार

पटैल ने जा बात गाँठ बांद लई ती। कै अपने मौड़ा बिन्दा खौं पढ़ाउने लिखाउने जरूर है। पै अबै हाल पटैल की मजबूरी जा हती कै जां उनकी मजूरी लगत्ती उतै उनै अपने बिन्दा खौं अपने संगै लै जाने परत्तो, काये से बिन्दा हतो अबै बारौ।

पटैल एक जांगा बिन्दा खौं बिठा कैं मजूरी पै लग जात्ते। और बिन्दा उतई माटी—बजरू में घरगूला बना—बना कैं खेलत रात्तो। कभऊँ कुत्ता के पिल्ला मिल गये सो उन्हें और ऊखौं खूबइ मजा आउत्तो। पटैल निश्चन्त हों कें कै मोड़ा खेल रओ उन्हें जा हवा नई लग पाई कै उनको मालिक कबै पचास पइसा एक रुपइया में माटी कूरा अलग करबै जैसे छोटे—छोटे ठेका ऊके मोड़ा बिन्दा कौ देन लगै। धीरे—धीरे कर कैं एक दिना पटैल के सब अरमान धरे के धरे रै गये और बिन्दा पूरौ मजूर बन गओ।

— निहाल अहमद सिद्दीकी, एडवोकेट,
जिला न्यायालय, छतरपुर □

बुन्देली लोककथा :

पतिव्रता-पंवार पुत्री

– डॉ. कृष्णानन्द हुण्डैत

उन दिनन नौनेरी पंवार कुल के ठाकुरन की अच्छी खासी भरी पूरी जागीर हती। उतै के दिमान अभय सिंह जू देव अपनी भलमुंस्यात और वीरता दोउन के लाने बुन्देलखण्ड के राजा महाराजन में जाने माने जाते ते।

दिमान साव की बेटी अनूपकुंअरि जब स्यानी भई तौ ऊके सील, सदाचार, आचार–विचार और रूप गुन की चर्चा सोऊ ठकरास में सवई जागा होन लगी। चन्देरी के राजा महाराज रामचन्द्र जू देव के कानन में सोऊ ऊ के सबई गुनन की बड़वाई पौची, उनके बड़े कुँवर प्रजापाल कौ व्याव नई भऔ तौ, राजा ने अपने पुरेत खों दतिया के महाराजा के ढिगां पौंचाव और जौ संदेसौ पौंचाव कै नौनेरी वारे दिमान साव जू कौ जो विचार अपनी बेटी के व्याव के करवे को होवै, उनकौ पतौ लगावें और जो दिवान साव जू खौं रूचै तो अपने पुरेत खों पौंचाकें राजकुमार प्रजापाल के रूप गुन स्वभाव खों ऐन परख कें बेटी जू की सगाई उनके संगै पक्की कर देवें।

नौनेरी वारन नें जौ संदेसौ पाव तौ उनै खुसी भई। पै समस्या जा हती कै इत्ते बड़े चन्देरी के राजा की बारात कौ सत्कार कैसे सम्हार पांय। उनने अपने जीऊ की खुटक दतिया के महाराजा खौं बताई। उनने समझाव ''दिमान जू, राजा के चार लरका हैं, उनमें से राजा तौ एकई हो सकत, सबई नई हो सकत, पै रकत में फरक कौनउं के नई परत। ठीक है हम होवें चाय चन्देरी बारे रामचन्द्र होवें। राजा हैं पै हैं तो ऊसई बुन्देला जैसो छोटे से गांव कौ कौनऊं अनजानौ बुन्देला। अपुन बारात के सत्कार की बात के संगै सवई बातें श्री गोविन्द जू पै छोड़ दो। प्रजापाल भलौ लरका है दिखनौइ और गुनन कौ अच्छौ है। ठकरास में जैसौ साहस और जैसी वीरता चाहिये, वा ऊ में है उमर इकइस्क के आस पास है बेटी की वैस सोलक साल है सो सगाई कर दो।

दतिया के राजा ने संका कौ समाधान कर दऔ ई पै नौनेरी वारन ने अपने पुरेत, पण्डित, खवास सें बेटी की पक्यात् पान वीर राजकुंवर प्रजापाल खौं चन्देरी पठै दई। जी बेरा पक्यात जान लगी ऊ बेरा बेटी अपनी मताई नो आकें ठांढ़ी हो गई। ऊने कई ''नन्ना जू'' और सरम सें अपनी आंखें नैचीं करकें मौं कोद हेरन लगी।

नन्ना जू ने बड़े लाड़ सें अपनी बेटी खों ओली में बैठार लाओ और पूंछी बेटी बताओ तुम का चाउतीं।

अनूप कुँअरि तौ सरम की बंधी बैठी रई, तबई ऊकी एक गुईयां ने कई कै ''हम सब गुईयन की चाह है कै मगैतया चन्देरी से लौटतन कुँअर साव को एक चित्र लेत आबैं। उनै जौ हुकुम दै दओ जावै। अपुन की बेटी जू की मनसा है कै वे भगवान के ऊ संगै चित्र की पूजा करन लगें।''

नन्ना जू खां हंसी आ गयी। उनने लाड़ सें एक धौल बेटी की पीठ पै दई और बोलीं – अरी पगली! व्याव की भावरें परवे पै जौ सब करो जात सगाई होतनई नईं।

अनूपकुंअरि नन्ना जू की ओली सें उठी और जात जात कहत गई 'बिटियां वोऊ करतीं जो उनकी मताइयें करतीं।।'

जा सुनकें नन्ना जू गंभीर हो गयीं। उननें पुरेत जू खां भीतर बुलवाओ और होवे वारे दामाद कुंवर जू कौ एक चित्र लियावै खौं कह दई। संगै जा कइ दई कै बेटी राजा उनकी पूजा के लाने उनकौ चित्र चाउत।

चन्देरी सगाई पक्की करके पुरेत लौट आये संगई चित्र लै आये चन्देरी वारे जा जानकें कै बेटी जू खौं पूजा के लाने चित्र चाने, बेटी जू के विचार जानके हरस सें भर गये।

सगाई पक्यात होवे के मईना भर पाछें औचकई एक ऐसी बात हो गयी कै चन्देरी के राजा रामचन्द्र जू देव ने अपने अजुध्या वास कौ विचार पक्कौ कर लओ और मंत्री (दीवान) सेनापति, खजानची, दरवारी, जागीरदार, मण्डप के चन्देरी ललितपुर, वानपुर बारे, तालवेहट के सबई भले आदमियन खौं दरवार में बुला के जावात बता दई। जौ हुकुम कर दऔ गऔ कै महाराजा रामचन्द्र महाराजी, सबई राजकुबरन और कछू टहलुअन के संगै कछू दिनन अजुध्या जू में रैहैं। चन्देरी सें हर मईना उन्हें खरचा पौचाव जैंहै। बसकारौ कड़कें राजकुंवर प्रजापाल अपने लौरे भईया के संगै लौट कें चन्देरी आहें तब पैलां उनकौ राजतिलक हुइये, ऊ के पाछें व्याव करो जेंहैं। तब तक राजकाज मन्नी जू की सलाय और फौजदार साव की मुन्तजमी मे ई और राजा के गुमास्त के रूप में काम करें कौनऊ खास बात होवै तौ अजुध्या जू खों खबर पौंचाई जावै और हुकुम मंगवाओ जावे।

महाराजा रामचन्द्र अपने परिवार के संगै अजुध्या जू में रन लगे। उनके दिन भगवान के भजन पूजन कीर्तन दरसन में बीतन लगे। वे चैत की नौ दुर्गन में अजुध्या जू गयेते। चैत, वैसाख और आधे जेठ के गुजरने लौ उनके खरचा हतो चन्देरी सें एक फूटी कौड़ी नई गयी तौ उनकौ माथौ ठनकौ। उनने असलियत खों जानवे के लाने युवराज प्रजापाल खों कछु सेवादाइन के संगै पौंचाव।

राव उमराव सिंह रजवारे वारन खों राज के बन्दोवस्त में नई लये जावे कौ बुरओ लगो। उनके कहवे में आकें पिलरा सर

वारन ने खिलचीपुर वारे चौधरी (फौजदार) सें सलाय करकें सेनापति पहाड़सिंह खों दबका कें चान्देरी की गद्दी पै अपनौ राज तिलक करवा लाऔ।

ई फरेव खों परख कें काऊ ने अपने लरका सें कही ती—

खिलचीपुर कौ बसिया रजवारे कौ राव।
गयी चंदेरी जानिये, सुन बेटा दरयाव।।

मन्त्री (दीवान) और खजानची खों कैद कराके महाराज रामचन्द्र खों अजुध्याजू खरचा पौंचावो रोक दऔ।

झांसी पौंचवे पै कुंवर प्रजापाल खों ई बात की भनक परी। आगे बढ़ कैं वे गुड़र के बगीचा में बैठ गये और एक जनै खों पक्कौ पतौ लगावे उनने चन्देरी पौचावौ।

गूड़र के दिमान जवाहर सिंह खों पतौ चलो कै बगिया में दस बारह मान्स ठैरै। वे अपन खों राजस्थान के राजपूत बताऊत, पै उनकी बोली अपनई जैसी है, सो दिमान साव अपनई आप बगीचा में पौंच गये। उतै पौचवे पै उनने प्रजापाल खों चीन्ह लऔ और पूरी आव भगत करकें प्रजापाल खों गढ़ी में लिवा गये।

उतै चंदेरी में पतौ चलौ कै प्रजापाल गूड़र की गढ़ी में है, उन्हें पकरवे खों सेंना के संगै सेनापति पहाड़सिंह खों पठैव। पहाड़सिंह ने गुड़र पौंच कें युवराज सें मांफी मांगी पिछलौ हाल बताऔ और उनके संगै मिल गये।

सेंना के संगै प्रजापाल ने चन्देरी पौंच के कब्जा कर लओ मन्त्री और खजान्ची खों छुड़वाओ। पिपरासर वारन ने मांफी मांग लई। फौजदार खिलजीपुर और राव उमरावसिंह रजवारे चले गये। अजुध्या खबरें पौंचवे पै महाराजा रामचन्द्र कौ हुकुम आवो कै रजवारे की गढ़ी की पांच ईंटें उनखों पौचाई जावैं।

अजुध्या जी को खर्च पौचा कें, बसकारे भूर प्रजापाल राज कौ काम काज सम्हारें। क्वांर लगतन चन्देरी सें सेंना लैकें वे ललितपुर आ गये। ललितपुर में बने राजा के भवन में ठैर गये। फिर सेना खों नदिया के पार ठैरा कें वे चार छः जनन के संगै रजवाड़े की गढ़ी पै पौंचे। वे चाउत ते कै बुन्देला परिवार में कलह न होवै। राजीराजी सें टण्टौ निपट जावै। संगई महाराजा के हुकुम की तामील हो जावे। उनने गढ़ी के भीतर के लोगन सें फाटक खोलवे की कही, पै बदले में गढ़ी सें गोली चलन लगी, एक गोली प्रजापाल खों लगी, वे गिर परे। खबर पाकैं तुरतई सेना ने गढ़ी घेर लई, हमला में गढ़ी में के सबई लोग मारे गये। गढ़ी की ठकुराइने पैलां सें जढ़रऊ चली गयीं थीं। राव उमरावसिंह हाथी पै सवार होकें भगे, पै सेनापति पहाड़सिंह ने घोड़ा से पीछौ करकें उनको मूड़ काट लओ। घायल प्रजापाल की ललितपुर के वैद्यन ने ओखर दवा दारू की। पै घाव गैरो हतो। पैट खों वरमा ने छलनी कर दओ तो, वैद लोगन ने उनके जीवे की आसा छोड़ दई ती। प्रजापाल के भइया खों बुलवाओ नौनेरी खबर पठैई अजुध्या सें महाराज खों बुलवाओ गऔ।

नोनेरी में प्रजापाल कौ समाचार पौंचे पै कुहराम मच गओ। पै अनूप कुंअरि के मौं पै बुरऔ लगवे कौ कोनऊ चीन चिखावौ नई हतौ। खबर पाकें ऊने निराहार वृत लै लओ। जी दिना प्रजापाल ने देह त्यागी ऊदिना भगवान की पूजा कर कें वे ऊपरी छत पै एक टक सूरज नारायन के दरसन करत करत, ध्यान की दसा में ई देह खों त्याग के निस्प्राण होकें भौं पै गिर परीं।

प्रजापाल खों गोली लगने की खवर पौचतनई अनूप कुंअरि ने कह दई ती कै वे बचे नई। उनके संगई संगै हम सोऊ देह छोड़ दें, हमाई देह खों उनई के संगे दाह संस्कार खों पौच दियो, हमाई देह के पौंचे बिना उनकी अर्थी खों अगिनि देवता नई छियें।

प्रजापाल की महायात्रा में गये मानसन के आंखन में असुआ हते। जब समसान भूमि पै पौचे तबई नौनेरी सें अनूपकुंअर की लास आ गयी। दोइयन खों एकई चिता पै अगिनि देव खों सोंपो गओ। तवई उतै एक कै मौ सें कढ़ गयी—

नौनेरी पंवार कुल, उपजी सुता अनूप।
देह छांड भेंटन चली, प्रजापाल सौ भूप।।

— साहित्य सदन, कृष्णा कॉम्पलेक्स
ललितपुर उ.प्र. □

<u>बुन्देली कविता</u>

ऊरीं तरइंयाँ

— शिवाजी चौहान

कौन दिसा कौन गली गई हैं उरइँया
दिन डूबौ दिया जरे ऊरीं तरइंयाँ
झुलपुट के पैल घरै चल परे बरेदी
ढोरन की नार गैल कोद खों खरेदी
बछअन के लाने रमान लगीं गइँयाँ..........

धूर भरे गैलारे धूर भरी गलियाँ
रैगईं मों ढाँक बीच पत्तन के कलियाँ
घेंसुवान घोंगन में घुस गई चिरइँयाँ..........

हरवा से हार चले हरवारे प्यारे
बैलन के झेलन के झुनन झनन न्यारे
बन्दे कौ बोझ धरे पाँव ना पनइँयाँ..........

भइअन ने गइअन के दूद फिर निकारे
खबा पिबा वारेन खों खटियन पै पारे
चोंपन खों चरन धरौ होन लगी बियाइँयाँ
बिरछन के साथ हवा चिमइया साद गई
चुप्पी ने चुपके से दिसा दिसा दाब लई।
आए सब लोग घरै कोऊ क्याऊँ नइंयाँ
बनी ठनी सजी बजी रात की दुलहनियाँ
मंगल बिंदुलिया जाकी चाँदनी उढ़नियाँ
शिवाजी मिलौ है इयै चन्दा सौ सइंयाँ

— पूर्व उपप्राचार्य, गुरसराय झांसी □

बुन्देलों की आराध्या : विन्ध्यवासिनी देवी

— उदय शंकर दुबे

सकल जगत्द्धात्री माँ विन्ध्यवासिनी देवी वैसे तो जन—जन की आराध्या है किन्तु बुन्देलों की ये विशेष आराध्या के रूप में पूजित प्रतिष्ठित हैं। बुन्देलों की उत्पत्ति, उनके राज्य विस्तार, यश—शौर्य की ख्याति माँ विन्ध्यवासिनी के आशीर्वचन का ही प्रतिफल रहा है। प्रत्येक बुन्देला परिवार आज भी विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन के लिये लालायित रहता है। प्राचीन ग्रंथों, बुन्देल राजाओं की वंशावलियों तथा अभिलेखों से सिद्ध होता है कि समय—समय पर प्राय: सभी बुन्देलराजा माँ कर दर्शन करने हेतु मय लाव—लश्कर के साथ विन्ध्यांचल आते रहे। बुन्देलों का इतिहास विन्ध्याचल से ही शुरू होता है। विन्ध्याचल से थोड़ी दूर पर्व में है — बुन्देला नाला — जहाँ पर वीर पंचम ने युद्ध में विजय प्राप्त किया था। अठारहवीं शताब्दी में बुन्देलखण्ड के कई राजाओं ने विन्ध्याचल के समीप स्थित मिर्जापुर शहर के मध्य विशाल कोठियों का निर्माण कराया। इन कोठियों में बुन्देलखण्ड के ही लोग रहते थे। इसी कारण से इसका नाम बुन्देलखण्डी मुहल्ला पड़ गया। आज भी इस मुहल्ले में अधिकतर लोग बुन्देलखण्ड के ही हैं। विन्ध्याचल बुन्देलों का मूल उत्पत्ति स्थान है। विन्ध्याचल के तीर्थ पुरोहितों (पण्डों) की बहियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हेमकर्ण (वीर पंचम) के बाद होने वाले राजा ने विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शन हेतु विन्ध्यांचल आये। यहाँ आकर उन लोगों ने तीर्थ—पुरोहितों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणों को दान—दक्षिणा दिया। यद्युपि अभी तक विन्ध्याचल के तीर्थ पुरोहितों की बहियों का समग्र अध्ययन नहीं किया जा सका है। इन बहियों के अध्ययन से बुन्देलखण्ड से संबंधित ऐतिहासिक तथ्य सामने आने की पूर्ण संभावना है।

बुन्देलों का इतिहास ही माँ विन्ध्यवासिनी देवी के आशीर्वचन से प्रारंभ होता है। बुन्देला नाला आज भी इस युद्ध का साक्षी है। जहाँ पर बुन्देलों के पूर्वज वीर पंचम ने अपने भाइयों से युद्ध कर विजय प्राप्त किया था। ऐतिहासिक अभिलेखों, काव्योतिहास ग्रंथों, एवं बुन्देलों की वंशावलियों में उल्लेख मिलता है कि काशी के गहरवार राजा दिवोदास (देवदास) की दो रानियां थीं। बड़ी रानी बघेल राजा सजात सिंह की पुत्री सदा कुंवरि तथा छोटी रानी बूंदी के हाड़ा वंश की देवकुंवरि थी। बड़े रानी से चार और छोटी रानी से एक पुत्र हेमकर्ण (हेम करन) था जिसे पांचवां पुत्र होने के कारण पंचम कहा गया। पिता की मृत्यु के बाद हेमकर्ण को उसके भाइयों ने राज्य से निष्कासित कर दिया। वह काशी से भागकर विन्ध्याचल की पहाड़ियों में चला गया। यही पर रहकर हेमकर्ण ने विन्ध्यवासिनी की सावधि आराधना की। देवी की कृपा से उसने पुन: अन्यत्र राजा प्राप्त किया। जिस क्षेत्र विशेष में हेमकर्ण ने राज्य स्थापित किया वहीं बाद में चलकर बुन्देलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हेमकर्ण द्वारा विन्ध्यवासिनी की आराधना का विवरण, हमें बुन्देल राजाओं की वंशावलियों तथा काव्येतिहास ग्रंथों में मिलता है। संवत् १६०१ वि. (सन् १५४४ ई.) की प्राप्त वंशावली में लिखा है कि ''हेमकरन को श्री विन्ध्यवासिनी की दया भई सेवाकरी संवत् १३५८ की साल में राजा ने देवी को पांच बेर माथे चढ़ायौ पांच वेर माथौ रुण्ड में तै कढ़ै तव देवी ने वरदान दयौ, बुन्देला कहे अब संतानु चलौ। (श्री बाबू लाल गोस्वामी पत्रकार, बिहारी जी का मंदिर, बिहारी जी रोड, दतिया म.प्र.) के संग्रह में सुरक्षित) बुन्देल राजाओं के आश्रित कवि—पंडितों ने इस दैवी घटना का अपने—अपने ग्रंथों में सविस्तार वर्णन किया है। कवि हरिकेश ने अपने ग्रंथ—जगत राज दिग्विजय में लिखा है —

दोहा — गहिरदेव के कुल भयौ वीर भद्र सरदार।
ताके सुंदर सुमट अति प्रगटे पांच कुमार।।
जेठे सुमति सुमंत लघु संत और लघु चंद।
तासों लघु पंचम भयौ ताकौ सुयश बलंद।।
चारहु बंधुन पंचमहि दिय निकारि लिय राज।
विन्ध्यवासिनी कौ शरण लिय विचार निज काज।।
व्रत करि पंचम सीस को छेदन चाहौ चित्त।
कर तें लियौ कृपाण गहि जगत मात ता हित।।

हरिगीतिका—जगमाय खड्ग छुड़ाय ताक्षण परसि ग्रीवा पर गयौ।
चल रुधिर कण धरणी परयौ तिह बुंद ते बालक भयौ,
चेडाशु तेज सभी समुझि निज भक्त साहस देखि के,
बुन्देल भूषित नाम किय विन्ध्येश्वरी अवरेखी के।।
—जगतराज दिग्विजय छंद संख्या ३८१—३९१.

कवि हरिकेश ने हेमकर्ण दारा देवी की आराधना करने और वरदान प्राप्त का वर्णन करने के बाद ''बुन्देला नाला'' का इतिहास भी बताया है। महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज ने देवी का अर्चन—पूजन करने के बाद बुन्देला—नाला का दर्शन किया था। यहाँ पर जगतराज ने विप्रों को पर्याप्त दान—दक्षिणा दिया तथा अपने साथियों को खिताब प्रदान किया —

चौपाई—*चलतन मिलौ बुंदेला नारौ उतरि तुरग सों ताति जुहारौ।*
पितर नाम यह ठाम सुहायौ, किहि को दियो नाम्र अति भायौ।।
दोहा —*जगतराज बूझति भये, सबहीं सो तिहि ठाम।*
काहे सैं याकौ परौ, विदित बुंदेला नाम।।
चौपाई — इत बुंदेल शत्रुन कों मारौ, तबते भयौ बुंदेला नारौ।
सुनि जगतेश वंश निपुनाई, पुनि प्रणाम करि शीस नवाई।।
—जगतराज दिग्विजय छंद, संख्या ३८४, ३८५, एवं ३९३

बुन्देला नाला का दर्शन कर जगतराज काशी की तीर्थयात्रा पर गये। इसी नाले पर हेमकर्ण ने युद्ध में अपने शत्रुओं को पराजित कियाथा इसी से यह बुन्देला नाला से ख्यात हुआ। यह नाला विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर से पूर्व लगभग तीन मील की दूरी पर स्थिति है।

पद्माकर भट्ट के पौत्र गदाधर भट्ट ने अपने विजय ब्रज विलास नामक ग्रंथ में हेमकर्ण द्वारा विन्ध्येश्वरी देवी की आराधना का वर्णन इस प्रकार किया है।

छप्पय– *हेमकरण विय नाम प्रगट पंचम जग जानत।*
विंध्यवासिनी देवि तासु उर भक्ति अमानत।
ता प्रसन्न के हेत सीस जब लगे चढ़ावन।
पकर पानि जगदंब लोकहित मोद बढ़ावन।
संतति अखण्ड तुव भूपमाणि सहस वर्ष भुगहि धरनि।
रन खग्ग वीर जगमग्ग जस परम भक्त असरन सरन।।

—विजय ब्रज विलास, सर्ग ५ छंद संख्या १०

पंचम द्वारा विन्ध्येश्वरी की आराधना के विषय में यह भी मान्यता है कि गदाधर नामक पुरोहित ने उनको बिन्दु (दुर्गा) की आराधना का मंत्र दिया था –

बिन्दु पुष्यं तरोमूले प्रकृति ब्रह्म विग्रहा।
बिन्दु पुष्यं स्वयं दुर्गा प्रकृति पुष्यं रूपिणी।''

कहकर गदाधर पंडित ने हेमकर्ण को दुर्गा के निवास स्थान विन्ध्याचल में ''बिन्दुवासिनी'' शक्ति की आराधना की सम्मति दी थी। हेमकर्ण ने पुरोहित की आज्ञा को शिरोधार्य किया और मां की आराधना में लग गया जिसके फलस्वरूप उसे राज्य की प्राप्ति हुई।

लोकमान्यता और अभिलेखों से सिद्ध है कि हेमकर्ण ने विन्ध्यवासिनी देवी की कठिन आराधना की थी। देवी के आशीष से उसे राज्य प्राप्त हुआ, युद्ध में विजयी होने के कारण उसे वीर कहा गया और अपने पिता का पांचवा पुत्र होने से लोक में वह वीर पंचम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सभी बुन्देले वीर पंचम के वंशज हैं। प्रत्येक बुन्देला अपने को वीर पंचम की संतति कहने में गर्व अनुभव करता है। इस वीर पंचम के वंशजों ने वर्तमान मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के जिस संभाग पर लगभग आठ शताब्दी तक राज्य किया उसे बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है। कवियों ने इस खण्ड विशेष का यशगान किया है– खण्डन खण्डन ज्यों लसै खण्ड बुन्देला देस।'' बुन्देलों की अपनी संस्कृति है रीति–रिवाज हैं, अपनी बोली है उनका अपना शान–बान है।

वीर पंचम के वंश में कितने भी राजा हुये चाहे वे छोटे हों या बड़े, सबने समय–समय पर विन्ध्याचल आकर देवी का दर्शन अवश्य किया। महाराजा छत्रसाल के पुत्र जगतराज चरखारी से चलकर विन्ध्याचल आये और माँ विन्ध्यवासिनी देवी का दर्शन किया। जगतराज दिग्विजय ग्रंथ में उनकी इस तीर्थ यात्रा का विवरण मिलता है। दिमान जगतराज ने मां की बड़ी सारगर्भित स्तुति की थी –

प्रमाणिका – *जगतराज दल साजि भल गये विंध्यगिरि पास।*
दरश नंद जाके करे परसे पुण्य प्रकाश।।

दोहा – *दे प्रदक्षिणा दक्षपति पंचम जगत दिमान।*
पग वंदन करिकें करी अस्तुति स्वस्ति महान।।

नाराच – *नमो नंदजा विन्ध्यगिरि वासिनी कों।*
नमो वैष्णवी मात गरुणासनी कों।
नमो मात नारायणी भीम काली।
नमो अंबिका चंडिका भद्र काली।।
हनो चंड मुंडै महा शुंभ नाशौ।
निशुंभादि महिषादि असुरै विनाशौ।
मृगाधीश पै अंशु आरूढ़ होकै।
हनौ शत्रु मम जो कुदृष्टै विलो कैं।।
यथा कोणया रक्त बीजादि भंजौ।
तथा मात मेरे अमित्रै विभंजौ।
नमो पाहिमां पाहिमां त्राहि अंबा।
कृपा कोर देखौ कृपा की कदंबा।
नमो योगमाया दया कै पतीजै।
छता भूप को भूमि सानंद दीजे।
करे आपने थापि बुंदेल भूमें।
निवाही भली भांति सो भक्ति तू में।
सोई भक्ति दे मात श्री जगतराजै।
तिहूँ लोक में कीर्ति तेरी विराजै।।

दोहा – *जगत मात बुंदेल की मात ख्यात हर भांत।*
जगतराज कों भक्ति दे शिर धरि कर जल जात।।

बरवै – *जय जय जय जग जननी कहि हरिकेश।*
जगतराज भय हरणी करणी वेश।।

—जगतराज दिग्विजय, छंद संख्या ३९१–३९८

बुन्देले और बुन्देलखण्ड माँ विन्ध्यवासिनी की देन है। वास्तव में यह क्षेत्र भी बुन्देलखण्ड के अंतर्गत होना चाहिए था क्योंकि बुन्देलों के पूर्वज वीर पंचम की यह साधना स्थली और विजय स्थान है।

— ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया,
मिर्जापुर–२२१३०६

लघु कथा

सरग

— निहाल अहमद सिद्दीकी

लूले खाँ जब मौका मिलत्तो तबई बे मलभरो टोकरा इतै उतै फेंक देत्तो। एक दिना नगर पालिका बारन नें उनकों चालान करकें अदालत में पेश करो और अदालत ने ऊखाँ सात दिनां की सजा सुना दई और लूले जेल में ठूँस दये गये। लूले भौत दुखी मन सें जेल आये ते। लेकिन जब उने जेल में बिना कछु करैं धरैं दोई जोर खाबे दरिया, चाय मिलत्ती। और पैरबे ओढ़बे बिछाबे खाँ उन्ना मिलत्ते सो उनके समझ में आ गओ कि असली सरग तौ जोऊ ओय।

— बेनीगंज मुहल्ला, छतरपुर म.प्र.

बुन्देलखण्ड नाम क्यों और कब से

— स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य

जिस प्रदेश को आज बुन्देलखण्ड संज्ञा दी जाती है, उसकी सीमा के विषय में प्राय: कहा जाता है — इत जमुना उत नर्मदा–इत चम्बल उत टौंस। अर्थात उसके उत्तर में जमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा पूर्व में टौंस तथा पश्चिम में चम्बल बहती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रदेश की रचना इन नदियों के परिवेष्टित होने के कारण अपनी कुछ विशेषता लिये हुए है। उसके मध्य भाग में भी केन, धसान, बेतवा तथा सिंध आदि नदियां भी निरन्तर प्रवाहशील रहकर इसे अपने सुधोपम जल से सिंचित कर सदैव हरा भरा रखती है। नदियों के अतिरिक्त विंध्याचल पर्वत की विविध श्रृंखलायें भी अपने अप्रतिम सौन्दर्य से इसे जैसा मनोरम और दर्शनीय बनाये हुए हैं, कहते नहीं बनता। पर्यटक इसके नैसर्गिक सौन्दर्य से आकर्षित होकर इसे प्राय: प्रकृति का अन्त:पुर कह उठते हैं। इसका नाम बुन्देलखण्ड जब और जैसे पड़ा हो पर है इसके अनुरूप, अपने आप में बहुत सुन्दर। इस शब्द में अपनी एक व्यापक अभिव्यंजना है, जो इसके अपने सम्पूर्ण इतिहास के साथ, इसकी प्राकृतिक छवि छटा की एक अनुपम झांकी प्रस्तुत कर हमें मंत्रमुग्ध कर देती है।

इसके बुन्देलखण्ड नामकरण के विषय में एक जन श्रुति है। कहा है नहय मूला जन श्रुति: अर्थात लोकापवाद बिना किसी आधार के नहीं होता। इससे मानना पड़ता है कि जो जनश्रुति है उसका आधार अवश्य कुछ होगा। प्राय: यह माना जाता है कि इस प्रदेश को बुन्देलखण्ड नाम देने वाले बुन्देले लोग ही थे। परन्तु प्रश्न यह है कि बुन्देलों का नाम भी बुन्देला कैसे पड़ा। बुन्देलों की उत्पत्ति काशी के गहरवार राजघराने से मानी जाती है। गहरवार वंश के राजा करनपाल के तीन पुत्र थे – बीर, हेमकरन तथा अरिब्रह्म। हेम करन यद्यपि छोटा था, परन्तु था बहुत योग्य और प्रतिभाशाली। राजा करनपाल का इस पर विशेष प्रेम था। अत: राजाकरनपाल ने इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया और दूसरे पुत्रों को जागीरें दे दी। परन्तु राजा करनपाल की मृत्यु होते ही उनके पुत्र बीर और अरिब्रह्म ने मिलकर हेमकरन से राज्य छीन लिया। इससे निराश होकर हेमकरन देवी विन्ध्यवासिनी की शरण में पहुंचा। उसकी सेवा से कुछ वरदान भी पाया। परन्तु फिर भी अपने भाइयों से युद्ध में हार गया। इससे उसने फिर भगवती विन्ध्यवासिनी की शरण ली और इस बार अत्यधिक आत्मनिष्ठा से उसकी पूजा आराधना में लगा। कई दिन तक निरन्तर पूजा आराधना करते रहने पर भी जब भगवती विन्ध्यवासिनी वरम्वूह होती न दिखी तो हेमकरन ने निराश होकर आत्मोत्सर्ग कर देने का ही संकल्प किया और अपनी तलवार निकाली। परन्तु ज्यों ही उसने तलवार को अपनी ग्रीवा पर चलाया, एक नैसर्गिक प्रकाश के साथ भगवती विन्ध्यवासिनी अविर्भूत हुई और उन्होंने मनोवांछित वरदान दिया। परन्तु तब भी तलवार की कुछ खरौंच से उसकी ग्रीवा से रक्त की कुछ बूंदे गिर पड़ी थीं। इन बूंदों के कारण ही हेमकरन को बुन्देला कहा जाने लगा। हेमकरण को पंचम बुन्देल भी कहा जाता है। हेमकरन की सन्तान भी बुन्देला कही जाने लगी। इस तरह बुन्देला जाति का अविर्भाव हुआ। बुन्देलों ने खंगारों से छीनकर अपने राज्य की स्थापना की जो शनै:शनै: उस सारे प्रदेश पर फैल गया जिसे आज बुन्देलखण्ड कहा जाता है।

भारत वर्ष के इतिहास में बुन्देलों का अपना एक स्थान है। बुन्देलों में कितने ही प्रतापी राजा हुए जिन्होंने मुगल शासकों से डटकर लोहा लिया और अपना कीर्तिमान स्थापित किया। बुन्देलों के शासन होने के कारण ही इस सारे प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ गया। परन्तु इस तर्क से बहुत से इतिहासकार सहमत नहीं। हेमकरण की कहानी को वे मनगढ़न्त एक दन्त कथा ही मानते हैं। उनके अपने तर्क हैं। उनमें से कुछ का मत है कि बुन्देलशब्द विन्ध्येल शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। विन्ध्याचल पर्वत इस प्रदेश का प्रमुख पर्वत है और इसे हिमाचल से ही अधिक प्राचीन माना जाता है। विन्ध्येल से ध्वनि विकार के नियमानुसार बुन्देल शब्द का बन जाना बहुत तर्क संगत प्रतीत होता है। परन्तु कुछ विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं। उनका कहना है कि विन्ध्येल में उकार की कोई मात्रा नहीं जबकि बुन्देल में उकार की मात्रा प्रधान है। इससे उनका कहना है कि विन्ध्येल से बुन्देल की व्युत्पत्ति कल्पना प्रधान ही है। यदि बुन्देल शब्द को विन्ध्येल शब्द का ही अपभ्रंश मान लिया जाये तो विन्ध्येल शब्द भी तो कहीं प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होना चाहिये। परन्तु वह उपलब्ध नहीं।

प्राचीन साहित्य में बुन्देलखण्ड प्रदेश के जो पूर्व नाम मिलते हैं उनमें विन्ध्येलखंड शब्द कहीं नहीं। वैद्रिक साहित्य में इस प्रदेश का नाम यजुर्होति उपलब्ध है। यही इस प्रदेश का प्राचीनतम नाम माना जाता है। कहा जाता है कि यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का अविर्भाव सब से पहले इसी प्रदेश में हुआ और इसी कारण से इसका नाम ययुर्होति पड़ा। आगे चलकर यही ययुर्दोति शब्द बिगड़कर जीजभुक्ति बन गया।

परन्तु कुछ लोगों का मत इससे भी भिन्न है। उनका कहना है कि जब चन्देल राजाओं का शासन इस प्रदेश पर हुआ तब इसका नाम एक बहुत प्रतापी चन्देल राजा के नाम से पड़ा। इस राजा का नाम था जयशक्ति। यह दसवीं शताब्दी में

हुआ। इसी जयशक्ति के नाम से इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति पड़ा। इसी जेजाकभुक्ति शब्द का अपभ्रंश रूप जुझौती या जुझारखंड हो गया। किसी किसी का मत है कि जुझार शब्द की उत्पत्ति युद्ध शब्द से हुई। युद्ध और जुद्ध से जुझार शब्द बना। यह कहा जाता है कि इस प्रदेश के लोग बहुत युद्ध प्रिय थे। इसीलिये इस प्रदेश को जुझारखंड कहने लगे। राजा लोग भी अपना नाम जुझार सिंह रख लेते थे। ओरछा के महाराज बीरसिंह के पुत्र का नाम जुझार सिंह था। इन्हीं के भाई हरदौल थे जिनकी कथा सुप्रसिद्ध है। जुद्ध शब्द से ही जुझार शब्द की उत्पत्ति हुई जिसका अर्थ लड़ने वाला होता है।

परन्तु महाभारत काल में इस प्रदेश को दशार्ण या चेदि कहा जाता है। दशार्ण, इस प्रदेश में बहने वाली एक नदी का भी नाम है। इसे आज धसान कहते हैं। दशार्ण का शब्दिक अर्थ होता है दस जल। अण शब्द का अर्थ है जल। इससे कुछ लोगों का मत है कि इस प्रदेश में बहने वाली दस नदियों के कारण ही इसका नाम दशार्ण पड़ा। इस प्रदेश की वे दस नदियां हैं — बेतवा, सिंध, पार्वती, धसान, चम्बल, यमुना, नर्मदा, केन, टौंस तथा जामनेर। इन दस नदियों के कारण इस प्रदेश का नाम दशार्ण पड़ जाना बहुत तर्क संगत प्रतीत होता है, जैसा कि पंजाब का है।

फिर प्रश्न उठता है कि इसका नाम चेदि कैसे पड़ा। इसका वर्णन करते महाभारत में लिखा गया है कि यह प्रदेश पशुओं के लिये सुखकारी है। यह सदैव धन धान्य से सम्पन्न रहता है। भोग—विलास की सामग्री इसमें सदैव उपलब्ध रहती है। यह प्रदेश बहुत सुन्दर तथा मनोहारी है। इसकी सभ्यता वर्णनातीत है। यह अगणित धन रत्नों से परिपूर्ण रहता है। यहाँ के निवासी सरल स्वभाव के होते हैं। वे साधुरूप और संतोषी होते हैं उन्हें असत्य वादन प्रिय नहीं। उपहास में भी वे असत्य को स्थान नहीं देते। वे पितृभक्त होते हैं और दुर्बल बैलों को हल में नहीं जोतते। इनमें दया भावना प्रचुर मात्रा में होती है। इसका नाम चेदि चिदि राजा के नाम से पड़ा। राजा चिदि राजा विदर्भ के पोते थे। ये यदुवंशी थे। महाभारत काल में चेदि प्रदेश का राजा शिशुपाल था। शिशुपाल के पिता का नाम दमघोष तथा माता का नाम श्रुतश्रवा था। श्रुतश्रवा वसुदेव की बहिन थी तथा श्रीकृष्ण की बुआ। शिशुपाल का वध श्री कृष्ण ने किया था। महाभारत के पश्चात इस चेदि प्रदेश का कोई क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं। जैन साहित्य में इतना ही उल्लेख मिलता है कि यहां का राजा दशार्ण भद्र था, जिसे भगवान महावीर ने दशार्ण कूट पर दीक्षा दी थी। इसकी राजधानी मृत्तिकावली थी।

कुछ लोगों का अनुमान है कि इस चेदि शब्द से ही चन्देल शब्द की उत्पति हुई। चेदि लोग ही चन्देल कहे जाने लगे। परन्तु चन्देलों की उत्पत्ति के विषय में एक भिन्न ही किम्बदन्ती प्रचलित है। काशी का निवासी एक हेमराज नाम का ब्राह्मण था। उसकी एक कन्या थी जो अत्यन्त रूपवती थी। उसका नाम हेमवती था। एक दिन ग्रीष्मऋतु में वह अपनी खुली छत पर लेटी हुई थी। उसके रूप को देखकर स्वयं तारापति चन्द्रदेव मोहित हो गये। उन्होंने आकाश से उतर कर मनुष्य के रूप को धारण कर उसके साथ सम्भोग किया। इसके फलस्वरूप हेमवती से चन्द्रब्रह्म का जन्म हुआ, जो महान प्रतापी निकला। इस चन्द्रब्रह्म से ही चन्देलवंश का आविर्भाव हुआ। चन्द्रब्रह्म से ही चन्देल शब्द की उत्पत्ति हुई। इस तरह चन्द्रब्रह्म के वंशज चन्देले कहाये। परन्तु इस प्रदेश का नाम चन्देलखण्ड कभी नहीं पड़ा। इस प्रदेश पर, चेदि, मौर्य, शुंग, वाकाटक, गुप्त, हूण, कल्चुरि, चन्देल, अफगान, मुगल, गौड़ इत्यादि कितने ही वंश राज्य कर गये। अन्त में बुन्देले आये और उन्होंने खंगारों से राज्य छीन कर अपना आधिपत्य जमाया। बुन्देलों के नाम से ही इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा, जो आज भी प्रचलित है।

परन्तु एक शोधकर्ता ने इसे सुपुरातन पुलिन्द देश माना है। उनका कहना है कि वैदिक काल से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी तक पुलिन्दों के उत्थान पतन का उल्लेख मिलता है। विश्वामित्र के पचास पुत्र थे। इन पचास पुत्रों ने शुनःशेष को अपना बड़ा भाई न माना। इस कारण से विश्वामित्र ने उन्हें अभिशाप दे दिया। अभिशाप के फलस्वरूप वे लोग अन्ध्र, पुन्ड्र, शबर, पुलिन्द तथा मूतिव नामक दस्यु बन गये। पुलिन्द लोग वेदों के अनुसार अति प्राचीन संस्कारहीन क्षत्री लोग ही थे। शोधकर्ता का कहना है कि इस पुलिन्द शब्द से बोलिन्द शब्द बना और बोलिन्द से बुन्देला हो गया। बोलिन्दी इस प्रदेश की लिपि का भी नाम था, जिससे शोधकर्ता के तर्क को बल मिलता है। तब भी इस तर्क को अन्तिम नहीं माना जा सकता। इस पर और भी शोध की आवश्यकता है।

—सौजन्य : जगदीश किंजल्क, संपादक दिव्यालोक
सिविल लाइन सागर म०प्र० □

बुन्देली कविता

कैसें माने के आओ बसंत

— डॉ.प्रेमलता नीलम

कैंसे माने के आओ बसंत,
सूनो है घर आँगन.....।
लाल—लाल टेसू फूले,
सब लाल भओ है वन.....।
संजा बिरियाँ लाल माँग—सी,
दमकत है दरपन.....।
जाने कैंसी खिंची लकीरें,
मिटै न करें जतन.....।
जो लो देहरी एक बंधे ने,
कैंसें मिटै भटकन.....।
बरैं—जरैं जे महल अटारी,
बरैं जो झूठो धन.....।
तुम परदेस बसे तरफत हैं,
रात दिना जो मन.....।

— एच/२७, लॉ कालेज के पास, दमोह म.प्र. □

मरहठा-बुन्देला सम्बन्ध और छत्रसाल

— राधाकृष्ण बुन्देली

बुन्देलखण्ड की पावन धरती में किसी भी धर्म जाति और क्षेत्र के व्यक्तियों के साथ कोई भेद–भाव नहीं किया गया। यहाँ सामाजिक समरसता के सिद्धान्त को सदैव स्वीकार किया गया है। छत्रसाल का विरोध इस्लाम धर्म से कभी नहीं रहा। बल्कि अनेक मुसलमान उनकी सेना में भी थे, जिनका वे सम्मान करते थे। उनका विरोध केवल मुगल शासक औरंगजेब से था। क्योंकि वह हिन्दुओं के धर्मस्थल नष्ट करता था, मूर्तियों को तोड़ता था और व्यक्तियों को बलात् मुसलमान बनाता था। यह एक ऐसी साजिश थी जिससे भारतीय संस्कृति नष्ट हो रही थी। छत्रसाल ने इसे बचाने के लिए महाराष्ट्र के शक्तिशाली शासक शिवाजी से सम्बन्ध स्थापित किया था तथा इसी के परिणाम स्वरूप शिवाजी एवं छत्रसाल ने औरंगजेब के विरुद्ध संयुक्त अभियान छेड़ा था। इसकी प्रशंसा छत्रसाल ने इस प्रकार की —

"और राव राने ध्यान में न लाऊँ अब,
शाह को सराहों या सराहों छत्रसाल को।"



मस्तानी

छत्रसाल ने सामंजस्य की जो भावना उपस्थित की वह बेमिशाल है। उन्होंने अपने जीवन काल में १९ लड़कियों से विवाह किया था। इससे कुल मिलाकर ६९ संतानें थीं। इनकी एक रानी मुसलमान भी थी, जो हुजूरन रानी के नाम से विख्यात थी। इस रानी से तीन सन्तानें थीं। उनके नाम शमशेर खां, खान जहान और मस्तानी थी। धुबेला (मऊसहानियाँ) में उपलब्ध मस्तानी महल इस बात का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक साक्ष्य है।

जब हृदयशाह जो छत्रसाल का ज्येष्ठ पुत्र था। छत्रसाल से बगावत करके अलग हो गया और उसी समय इलाहाबाद और कड़ा का सूबेदार मुहम्मद बंगश ने समय का लाभ उठाकर छत्रसाल पर आक्रमण कर दिया। मुहम्मद बंगश और छत्रसाल का युद्ध इचौली, मौदहा और जैतपुर में हुआ। इसी समय छत्रसाल ने अपनी मजबूरी का एक पत्र बाजीराव पेशवा को इस प्रकार लिखा —

"जो गति भई गजेन्द्र की, सोई गति पहुँची आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी राय।।

उपरोक्त पत्र पाकर बाजीराव छत्रसाल की सहायता करने के लिए जैतपुर पहुँच गया वहां मुहम्मद बंगश पराशत हुआ तथा वहीं पर बाजीराव पेशवा को छत्रसाल ने अपने तीसरे पुत्र की मान्यता प्रदान की। इस समय बाजीराव छत्रसाल की पुत्री मस्तानी के सौन्दर्य में आकर्षित हुआ। इसे देखकर छत्रसाल ने मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा के साथ कर तथा राज्य का १/३ मस्तानी को दहेज के रूप में दे दिया। राज्य का यह भाग ग्वालियर, झांसी, कालपी, मऊरानीपुर, सागर, बाँदा और कवी से सम्बन्धित था। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् इस क्षेत्र का शासक सागर में रहकर गोविन्द बल्लार खेर देखते थे तथा उन्होंने कालान्तर में अलग–अलग मरहठा शासकों की नियुक्ति बुन्देलखण्ड में की। बाँदा में मरहठों की ओर से कृष्णानन्द तांबे यहां का शासन देखते थे। कालपी और कर्वी का शासन पेशवाओं के हाथ मे था और बाद में बाँदा का शासन मस्तानी के पौत्रों के हाथ में आ गया।

यदि बुन्देलखण्ड में मरहठों के शासन पर ध्यान दिया जाय तो निश्चित ही इसके प्रारम्भकर्ता छत्रसाल थे। इसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। इसकी वजह से ही अपेक महाराष्ट्रीयन तीज–त्योहार जो बुन्देलखण्ड में कभी नहीं मनाए जाते थे, उनका शुभारम्भ बुन्देलखण्ड में हो गया। मुख्य रूप से मऊरानीपुर का जल बिहार मेला और गणेश उपासना का शुभारम्भ छत्रसाल और मरहठों की मित्रता के कारण हुआ।

मरहठों से प्रभावित होकर ही छत्रसाल के हृदय में धर्म सामंजस्य भावना का उदय हुआ और उन्होंने गुरु प्राणनाथ की प्रेरणा से प्रणामी सम्प्रदाय को जन्म दिया। इस सम्प्रदाय के लोग हिन्दू और इस्लाम धर्म दोनों के प्रमुख सिद्धान्तों को मानते थे। इस धर्म का प्रमुख ग्रन्थ 'कुलजम' था। ये लोग भगवान कृष्ण, मुहम्मद साहब, देवचन्द्र, प्राणनाथ और छत्रसाल को महत्वपूर्ण देवपुरुष मानते थे। ईद तथा कृष्ण जन्माष्टमी को बड़े धूमधाम से मनाते थे। इस सम्प्रदाय को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए महाराज छत्रसाल ने गुरु प्राणनाथ का मंदिर अपनी राजधानी पन्ना में निर्मित कराया। यह मंदिर धर्म सामंजस्य का प्रतीक है जिसकी प्रेरणा उन्हें मरहठा नरेश शिवाजी से मिली थी। बुन्देलखण्ड में अनेक इमारतें मरहठों की बनवायी हैं। जहां धर्म सामंजस्य और मेल–जोल की भावना देखी जाती है।

—महेश्वरी देवी रोड, बांदा उ०प्र० □

किला मनियागढ़ एवं राजगढ़

— डॉ० के०पी० त्रिपाठी

किला मनियागढ़ चंदेल राज्य के केन एवं धसान नदियों के मध्य के दक्षिणी भूभाग का महत्वपूर्ण सुदृढ़ सुरक्षित सैन्य दुर्ग था। चंदेल राज्य का यह पूर्वी दक्षिणी पहाड़ी भूभाग जो दाही विषय एवं पनीउली विषय (बिजावर एवं पन्ना) नाम से विख्यात था। जो हीरों जैसे खनिजों के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसी परिक्षेत्र में चंदेल नरेशों की धार्मिक सांस्कृतिक राजधानी खजुराहो की स्थापना हो चुकी थी। खनिज, सम्पदा और सांस्कृतिक सम्पदा से भरपूर होने के कारण प्रतिहार, गौंड़, कलचुरि एवं पठान अफगान आदि सभी सीमावर्ती राजा धन सम्पत्ति की लूट एवं अपने अपने राज्यों के विस्तार हेतु इस क्षेत्र पर आक्रामक बने रहते थे। इस कारण अपने दक्षिणी पूर्वी राज्य की सुचारू सुरक्षा व्यवस्था के निमित्त यशोवर्मा (९२५–४० ई.) चंदेल राजा ने राजगढ़ नगर में केन नदी के बायें तट पर स्थित मनियां पहाड़ पर विशाल किला स्थापित कर किला के पूर्वी भाग की ढाल में अपनी आराध्य मनियां देवी का छोटा सा मंदिर बनवाकर, मनिया देवी के नाम पर किले का नामकरण 'मनियागढ़' कर दिया था। वैसे अनेक लोगों ने इसे राजगढ़ नगर में होने से राजगढ़ किला भी लिखा है। परन्तु राजपूत कालीन चंदेल राज्य युगीन किला मनियागढ़ नाम से ही प्रसिद्ध रहा है। जो चन्देलों के आठ प्रसिद्ध सैन्य दुर्गो में से एक था। यह मनियाँगढ़ किला केन नदी के बायें पार्श्व स्थित मनियां पहाड़ पर (जो पश्चिम से पूर्व को लम्बा केन नदी की धारा तरफ फैला हुआ है) पत्थर के विशाल आयताकार वर्गाकार शिलाखंडों से बना हुआ था। मनियागढ़ किला समुद्र तल से १२०० फीट की ऊँचाई पर २४.४३ उत्तरी अक्षांस एवं ८० पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।

किला मनियागढ़ तक जाने के लिये बसें, जीपें और टैक्सीज हर समय उपलब्ध रहती है। रीवा, सतना, पन्ना से छतरपुर खजुराहो, अथवा भोपाल, सागर, ग्वालियर एवं खजुराहो से सतना–रीवा की ओर जाने वाली सभी बसैं चन्द्रनगर बस स्टाप से गुजरती हैं। चन्द्रनगर बस स्टाप से एक किलोमीटर दक्षिण की ओर पक्का रोड चलने पर राजगढ़–मनियांगढ़ एवं राजगढ़ पैलेस जैसे महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों पर पहुंच जाते हैं। यह स्थल बुनदेलखण्ड का अनूठा वैभवपूर्ण स्थान है। जहां आपको चन्देलों एवं बुन्देलों का दुर्ग वास्तुवैभव तथा महल वास्तुवैभव एक साथ देखने को मिलेगा। यहां सिद्धेश्वर शिव हैं तो चन्देलों की आराध्य रणचंडी (चन्दोरानी) भी बिराजी है। पानी, पहाड़ और पर्यावरणीय सौन्दर्य तो ऐसे एकाकार रूप में प्रकृति ने गढ़े हैं कि यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य प्रत्येक पर्यटक को भाव विभोर कर देता है।

किला मनियागढ़ केन नदी के बायें किनारे स्थित मनिया पहाड़ पर स्थित है। यह किला चन्देल युगीन कालिंजर एवं मड़फा जैसे सामरिक महत्व के बड़े किलों से भी विशाल रहा है। मनिया पहाड़ जो दक्षिण से आता हुआ पूर्व को घूमकर, पश्चिमी बिन्दु पर समकोण बनाता हुआ केन नदी के किनारे तक जा पहुंचा है। किला पश्चिमी पार्श्व के समकोण बिन्दु के अर्थात पश्चिमी भाग से केन के तट तक, लगभग १२ किलोमीटर के घेरे में पहाड़ के शिखर पर निर्मित है। पहाड़ के शिखर भाग को समतल चौरस मैदान बनाकर, चारों ओर चौकोर तरासे हुये वर्गाकार एवं आयताकार पत्थर के विशाल शिलाखण्डों से २० फुट ऊँचा एवं १० फुट चौड़ा सुदृढ़ परकोटा बना हुआ है। मध्य शिखर प्रांगण में परकोटा के अन्दर महल, सरदारों एवं सैनिकों के आवासीय कक्ष, शस्त्र भंडार गृह और अन्य भण्डार गृह निर्मित थे, जो अब गिर चुके हैं तथा भग्नावशेषों के रूप में विद्यमान हैं। किले की पश्चिमी भाग की घूम में परकोटा से संलग्न गुर्जनुमा गोलाई लिये हुये एक ऊँची सुरक्षा चौकी निर्मित है, जो पश्चिमी मैदानी भाग की ओर चौकसी बनाये रखने के लिये थी। उक्त चौकसी गुर्ज अभी भी भग्नावस्था में खड़ी हुयी है।

यशोवर्मा (९२५–४० ई.) चंदेल राजा ने मनिया पहाड़ पर किला बनवा कर, किला के पूर्वी अंचल केन तटीय भाग में अपनी आराध्य रणचंड़ी (कालीदेवी) का मंदिर बनवाकर स्फटिक पत्थर की चंडी देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। चूंकि मनिया पहाड़ पर किला मनियागढ़ तथा किला मनियागढ़ में रणचंडी (काली) का मंदिर एवं मूर्ति स्थापित होने से देवी भी मनिया देवी के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी। इस रणचंडी की आराधना कर ही चंदेली सेना रणक्षेत्र के लिये किले से बाहर प्रस्थान करती थी। इस रणचंडी देवी की प्रतिमा नग्न एवं विकराल है। हाथ में तलवार लिये मानो शत्रुओं पर प्रहार कर रही हों। स्थानीय लोग इस चंडी देवी को अपभ्रंश में चंदोरानी कहते हैं।

किला के उत्तरी पूर्वी भाग में चंदोरानी दरवाजा है जो किले का मुख्य दरवाजा है। यह दरवाजा मनियां देवी (चंडी देवी) मंदिर के पास ही बना हुआ है। चंदोरानी दरवाजा तो ध्वस्त हो चुका है, परन्तु उसके विशाल प्रस्तर शिलाखण्ड अभी भी पड़े हुये हैं। चंदोरानी गेट के पूर्वी भाग की ओर अर्थात् केन नदी की ओर मध्य पहाड़ काट शिद्धेश्वर शिवजी का गुफा मंदिर है। इस शिवलिंग पर जल की बूंदे अनवरत टपकती रहती है। यह जल एक गहरे कुण्ड में समाहित होता रहता है। सिद्धेश्वर गुफा मंदिर के अतिरिक्त मनियागढ़ किला की तलहटी में पूर्व की ओर आम डावर गुफा, बरबसपुरा की ओर चरबा झिरिया गुफा एवं पाटन गेट के पास केर पानी गुफा है, जिनमें हर समय स्वच्छ जल प्राप्त रहता है। मनिया किले में पहाड़ के ऊपर एक सरोवर तो है ही,

जिसके अतिरिक्त पहाड़ एवं किला के नीचे चारों ओर तालाबों का निर्माण करा कर मानो गिरि दुर्ग एवं जलदुर्ग का मिश्रित स्वरूप बना कर, किले तक पहुंचना दुर्गम बना दिया गया था। वैसे भी किला ऊँचाई पर, ऊबड़ खाबड़ काटेदारी झाड़ियों एवं पथरीले दुर्गम पहुंच मार्ग के कारण दुर्ग कहा जाता है। किला तो ऊँचे, दुर्गम स्थल पर बना हुआ ही सामरिक महत्व का माना गया है। मानसार ग्रंथ में भी गिरि दुर्ग श्रेष्ठ कहा गया है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित यह लोकोक्ति भी, किलों को ऊँचाई (पहाड़ों) पर निर्मित करने की प्रेरणा देती रही है –

किला, कोट, मंदिर, महल, द्विज, क्षत्री, गज बाज।
जे नौ ऊँचे चाहिये, बैद, बराई, नाज।।

इस परिपेक्ष्य से मनियागढ़ किला ऊँचे मनियाँ पहाड़ पर तो स्थित है ही, पहाड़ की तलहटी में चारों ओर तालाबों का निर्माण कराकर उसे और अधिक सुरक्षित कर दिया गया था। उक्त तालाबों में दो तालाब राजगढ़ नगर के उत्तरी एवं पूर्वी भाग में, चौथा तालाब पहाड़ की तलहटी में राजगढ़ पैलेस टौरिया के पीछे। पांचवा तालाब किला के उत्तरी पूरबी भाग में राजगढ़ पैलेस टौरिया के दांये। छटवां तालाब मनोहर तालाब किला के पश्चिमी पार्श्व में सातवां तालाब नकटा तालाब एवं आठवां करैगर तालाब किला के दक्षिणी भाग में है। इनके अतिरिक्त पूर्व दिशा में दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित केन नदी मनियागढ़ किले को सुरक्षित किये रही है। किला मनियागढ़ के चार दरवाजे चारों दिशाओं को थे –
प्रथम उत्तर की ओर चन्दोरानी दरबाजा, द्वितीय पश्चिम को पाटन दरवाजा तीसरा पूर्व दिशा को रैपुरा दरबाजा एवं चौथा दक्षिण की ओर बरबसपुरा दरबाजा था।

मनियागढ़ किला चंदेलों का विशाल एवं सामरिक दृष्टि से सुरक्षित सुदृढ़ एवं महत्वपूर्ण किला था। किला के नीचे मनिया पहाड़ के उत्तरी पार्श्व में राजगढ़ नगर बस्ती थी। यह राजगढ़ नगर चंदेला युग का वैभवशाली तथा सम्पन्न नगर था। जो चंदोरानी दरवाजा से पश्चिमी भाग के पाटन दरवाजा तक लगभग २ किलोमीटर लम्बा एवं चन्द्रनगर नाला से किला तक एक किलोमीटर चौड़ाई में बसा हुआ था। नगर के भग्नावेश इस समूचे परिक्षेत्र में आज भी दृष्टव्य हैं। नगर में चूना, पत्थर एवं ईंटों से निर्मित दुमंजिली हवेलियां थी, जिनके भग्नावशेष भी दृष्टव्य हैं। दशवी शताब्दी का स्थापित वैभवशाली राजगढ़ नगर आज वेचिराग सा जंगल में परिवर्तित हो चुका है। राजगढ़ नगर एवं मनियागढ़ किला सघन काटेदार झाड़ियों एवं सागौन का जंगल है। किला मनियागढ़, जो राजगढ़ में होने से किला राजगढ़ भी कहा गया है, आज ध्वस्त है परन्तु पहाड़ के शिखर पर पत्थर के परकोटा की लम्बी चौड़ी बीस फुट ऊँची भित्ति अभी भी किले के वैभव एवं शान की गवाह है। भले ही यह सुदृढ़ प्रस्तर परकोटा भित्ति १०५० वर्ष की बूढ़ी हो जाने से जगह जगह घुटने टेक चुकी है, परन्तु खंडहर देख कर ही सहज कह आता है कि किला मनियागढ़ बुलंद था, बुन्देलखण्ड की शान शौकत एवं सामरिक शक्ति का एक सितारा था। मनिया देवी (चंदोरानी) भी हाथ में तलवार लिये खंडित स्थिति में भी प्रतिष्ठित है तथा जन–जन को जीवन्त बने रहने की प्रेरणा दे रही है। भगवान सिद्धेश्वर शिव भी नगर के राजसी वैभव की चमक दमक, दिन रात भक्तों की अनवरत भाँग एवं घंटों, घड़ियालों एवं नगाड़ों की गुंजार तथा अनाथों निर्धनों की पुकार सुनते सुनते, नेत्र निमीलित अपनी ही रचना वैभव के पराभव पर कुछ गुनते गुनते से अंधेरी गुफा में विराजे हुये हैं। यहां का मानवीय वैभव एवं कृतिमता तो ध्वस्त हो चुकी है। परन्तु प्राकृतिक सुषमा एवं सौन्दर्य यथावत ही नहीं बल्कि अधिवृद्धि पर है, जिसकी प्रशस्ति में केन तरंगणी अनवरत गान गा रही है। जिनके दर्शनों के लिये पर्यटक आते हैं और प्राकृतिक सौन्दर्य निहार कर अभिभूत होते हैं।

चंदेल राजा यशोवर्मन ने चन्देलों की कीर्ति को दूर दूर तक फैला दिया था। चन्देल राज्य का सर्वाधिक प्रसार इसी के समय हुआ था। उसने गुर्जरों, प्रतिहारों एवं गौड़ों की साम्राज्यवादी नीति पर अंकुश लगा दिया था। कलचुरियों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर, उनके हमलों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। यशोवर्मा सुयोग्य सामरिक सैनिक चातुर्य पूर्ण बुद्धि एवं कुशल प्रशासन क्षमता वाला राजा था। उसके स्थापत्यों, निर्माणों एवं सामरिक अभियानों ने, चंदेलों की समृद्धि एवं सम्पन्नता को पास पड़ौस के राज्यों में चर्चित कर दिया था। लोग तो यहां तक कहने लगे थे कि 'चन्देलों के पास पारस बटरिया है' जिसे लोहा से छुआने पर सोना बन जाता है। जिस कारण ऊबड़–खाबड़ पहाड़ी पथरीले चंदेल राज्य के चंदेले सभी समकालीन सीमावर्ती राजाओं से धनी एवं सम्पन्न हैं। यशोवर्मा का राज्य मदनपुर देवगढ़ चन्देरी एवं कुड़ार काल्पीपरिक्षेत्रों में था। पनीउली (पन्ना क्षेत्र) एवं दाही (बिजावर क्षेत्र) की हीरा जैसी बहुमूल्य खनिज सम्पदा बाला क्षेत्र तो मनियागढ़ से ही नियंत्रित होता था। सम्पन्नता के कारण ही कलचुरियों, गौड़ों, प्रतिहारों और अफगानों मुगलों ने उक्त परिक्षेत्र पर आक्रमण किये। छत्रसाल बुन्देला ने, गौड़ों एवं मुगलों की राजसत्ताओं को अस्थिर कर अंततः अपने अधिकार में कर सन् १६७५ ई. में पन्ना को अपनी राजधानी बना लिया था।

छत्रसाल बुन्देला के पूर्व मनियागढ़ के दक्षिणी पूर्वी परिक्षेत्रों बिजावर, देवरा एवं किशुनगढ़, हटा, दमोह, धामौनी एवं खटोला में गौड़ राजसत्ता थी। कलचुरियों एवं गोड़ों ने मनियांगढ़ किले पर बार–बार आक्रमण किये। मुहम्मद गौरी, कुतुबुद्दीन ऐवक, ग्यासुद्दीन तुगलक एवं फीरोज तुगलक ने बटियागढ़ होकर मनियांगढ़ पर ६ गावे किये थे। चंदेल राजसत्ता गौड़ों एवं अफगानी सुल्तानों के घावों से मनियागढ़ की सुरक्षा करने में विफल रहे क्योंकि सन् ११८२ में पृथ्वीराज चौहान ने बुन्देलखण्ड (चन्देलराज्य) पर विनाशकारी आक्रमण कर चंदेली सैनिक व्यवस्था को झकझोर कर विनष्ट कर दिया था। जिस कारण वह (चंदेल) अपने राज्य की सुरक्षा करने में समर्थ न हो सके थे। गौड़ों अफगानों एवं मुगलों ने राजगढ़ नगर को लूटा। ऐसा लूटा कि यह नगर एवं किला पराभव की अंतिम अवस्था में जा पहुँचा और पुनः खड़ा न हो

सका।

राजगढ़ पैलेस

राजगढ़ पैलेस, मनियागढ़ किला एवं पहाड़ की उत्तरी तलहटी में स्थित एक टौरिया पर २४.४२ उत्तरी अक्षांस एवं ८० पूर्वी देशान्तर पर राजगढ़ नगर के दक्षिणी पार्श्व में स्थित है। सघन सागौन के वन के मध्य ऊँची टौरिया पर निर्मित होने से इस पैलेस का सौन्दर्य बड़ा मनोरम, आकर्षक एवं भव्य है। ऐसा लगता है मानो मनिया पहाड़ के अंचल में बैठा, सागौन एवं ढाक के झुरमुटों में पूनम का चंद्रमा बैठा हुआ मधुर मधुर मुस्कान से मुस्करा रहा हो। चन्द्रनगर बस स्टाप से एक सीधा पक्का मार्ग दक्षिण दिशा की ओर इसी राजगढ़ पैलेस को जाता है। वैसे तो यह पैलेस चन्द्रनगर बस स्टाप से ही दिखता है तथा एक भव्य दुर्ग की भांति दृष्टिगोचर होता है।

यह राजगढ़ पैलेस पन्ना के राजा हिन्दूपत (१७५८–७६ ई.) ने बनवाया था जो बुन्देला एवं मुगल स्थापत्य वास्तु शैली में निर्मित बुन्देलखण्ड का अनूठा प्रतीक है। राजगढ़ पैलेस के अतिरिक्त राजा हिन्दूपत ने छतरपुर पैलेस एवं खटोला के पास महाराजगंज किला भी बनवाया था। राजगढ़ पैलेस का दरवाजा उत्तर दिशा की ओर भव्य छैंकन (चबूतरे) पर है, जिस पर आने जाने के लिये पूर्वी पार्श्व की ओर घुमावदार सीढ़ियां बनी हुई है। दूर से देखने पर यह महल, किला प्रतीत होता है। इसके चारों कोणों पर षटपाली मीनारनुमा गुर्जे हैं। मुख्य दरवाजे के दौनों ओर नगार थाने हैं। प्रांगण के चारों ओर सुन्दर कक्ष हैं। प्रांगण के पृष्ठ भाग के कमरे से नीचे तलघर में भव्य दरबार हाल है। महल की दूसरी मंजिल पर दो बड़े भव्य कक्ष हैं तथा चारों कोनों पर ४ अटा (कक्ष) हैं। कमरों पर सुन्दर छतरियां बनी हुयी हैं। दरवाजे की छत पर दस दस छतरियां क्रमशः के उतार चढ़ाव में बनी हुयी है कि देखने वाले वास्तुविद के चमत्कार से गद्‌गद्‌ हो उठते हैं।

समूचा बुन्देलखण्ड विशेषकर पन्ना परिक्षेत्र पहाड़ी पठारी एवं वनाच्छादित है। फिर भी इस परिक्षेत्र को सीमावर्ती राजा, शासक, क्षेत्रीय गैर क्षेत्रीय देशी और विदेशी सभी पड़िहारों, प्रतिहारों, वर्धन, राष्ट्रकूटों गुर्जरों, चंदेलों, बुन्देलों, मराठों, मुगलों एवं अंग्रेजों तक ने इस भूभाग को अपने कब्जे में लेने को इस पर आक्रमण किये रहे। महाराजा छत्रसाल के एक पत्र पर पेशवा प्रथम यहां छत्रसाल की मदद को दौड़ा दौड़ा आया। प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या सभी शासक राजा पहाड़ और पठार लेने को अपनी हजारों सेना को कटवाते रहे हैं? नहीं/तत्व बात तो यह है कि पन्ना के पठार के नीचे हीरों का भंडार छिपा है। जिस पर अधिकार जमाने के लिए गैर क्षेत्रीय अथवा क्षेत्रीय शासक पन्ना परिक्षेत्र पर किसी न किसी बहाने आक्रमण करते रहे, तथा हीरा खादानों पर अधिकार करने की चेष्टा करते रहे। बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की मदद कर पन्ना (बुन्देलखण्ड) का तीसरा भूभाग लेकर गोविन्द वल्लाल खैर को मामलतदार बना कर सागर में रखा था। उसी समय गोविन्द बल्लाल के साथ महाराष्ट्र से गंगादत्त दवे व्यापारी भेजा गया था। जिसने पन्ना की डायमंड माइन्स क्षेत्र में अपना कारोबार चला कर, पन्ना से २७ ऊँट हीरा इकट्ठे कर महाराष्ट्र भेजे थे। (देखिये ग्रंथ बुन्देलखण्ड अंडर दि मराठाज — लास्ट फेज — बी०आर० अंधारे पृ. १६७ नागपुर) इन हीरों के कारोवार में पेशवा और गोविन्द बल्लाल खैर एवं उसके पुत्रों बालाजी गोविन्द एवं गंगाधर गोविन्द का सीधा सहयोग एवं संबंध था। राजा हिन्दुपत एक साहसी और नीति कुशल व्यक्ति थे। जिन्होंने गैर क्षेत्रीय आक्रामकों पर चौकसी बनाये रखने हेतु राजगढ़ पैलेस एवं महाराज गंज किला बनवाया था। इससे पन्ना राज्य में गैर क्षेत्रीय आक्रान्ताओं के प्रवेश पर नियंत्रण भी लगा था।

सन्‌ १७६२ ई. में अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने करामत खाँ के नेतृत्व में पन्ना राज्य पर आक्रमण किया था। राजा हिन्दूपत ने नवाब की सेना को करारी शिकस्त देकर इसी राजगढ़ में करामत खां को मार डाला था। करामत खां की कब्र इसी राजगढ़ में बनी हुयी है। सन्‌ १७६७ ई. में भरतपुर के जाट राजा जवाहर सिंह के संभावित आक्रमण के मद्देनजर त्रयंबक राव पैठे एवं बालाजी गोविन्द बुन्देलखण्ड के मराठी ठिकानों का भ्रमण करते हुऐ, इसी राजगढ़ पैलेस में आ पहुंचे थे। जहां १२–१०–१७६७ को राजा हिन्दूपत के साथ पैलेस के दरबार हाल में दरबार लगा कर हिन्दूपत से मनी और मैन की मदद की मांग की थी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिग्ज ने पन्ना के हीरों का महत्व समझते हुये सन्‌ १७७३ ई. में राजा हिन्दुपत के पास कम्पनी के एक व्यापरी वल्लभ को हीरों के व्यापार की अनुमति प्राप्त करने एवं अंग्रेजों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने भेजा था। राजा हिन्दूपत ने उससे इसी राजगढ़ पैलेस में मुलाकात की थी। बनारस के राजा चेतसिंह वारेन हैस्टिग्ज के अन्याय से सुरक्षा एवं शरण हेतु भाग कर इसी पैलेस में बैनी हुजूरी से मिले थे तथा शरण की मांग की थी। बैनी हुजूरी ने जब शरण न दी तो वह दतिया के पास खांडेरा वन में महादजी सिंधिया से मिले। महादजी शिंदे ने चेतसिंह को चंदेरी क्षेत्र में देवगढ़ एवं मर्तवाद की ५ लाख रुपया की जागीर देकर अपने संरक्षण में शरण दे दी थी। १७७६ ई. हिन्दूपत का निधन हो गया था।

इसी समय वारेन हैस्टिग्ज ने कर्नल लैस्ली के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना महाराष्ट्र भेजी। जिसे मध्य बुन्देलखण्ड होकर पूना जाना था। इस सैनिक अभियान का एक उद्देश्य चेतसिंह की खोजखबर कि कहां है? दूसरा बुन्देलखण्ड में मराठों की शक्ति एवं प्रभाव को परखना था। कर्नल लैस्ली काल्पी से पूना निकलना चाहता था। काल्पी के सूबेदार गंगाधर गोविन्द ने उसे यमुना पार न करने दी। लैस्ली बांदा परिक्षेत्र की ओर गया तथा कालिंजर के किलेदार खेमराज चौबे को लालच देकर केन परिक्षेत्र से पूना निकलने की अनुमति प्राप्त कर ली। राजा सरनेत सिंह राजनगर एवं उनके कामदार सौने जू पवांर ने भी उसकी मदद की। राजगढ़ पैलेस उस समय सरनेतसिंह के अधिकार में था। जो

कहनी करनी करि गयो, एक व्यास इहि काल

— जगदीश प्रसाद रावत

ओरछा साहित्य कला और संस्कृति का संगम स्थल रहा है। बेतवा किनारे बसा प्राचीन नगर ओरछा आज भी अपने आंचल में अतीत की स्मृतियां सँजोये हुए है। ओरछा रियासत की भूमि साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उर्वर रही है। यहाँ शताधिक कवि पैदा हुए या जिन्होंने ओरछा को अपनी कर्म स्थली बनाया। बेवता के पानी का ही प्रताप है जो इस पावन नगरी में संत शिरोमणि पंडित हरिराम व्यास जैसी विभूतियों ने जन्म लेकर न केवल ओरछा वरन् समूची बुन्देली जनपद को ही गौरान्वित किया।

पंडित हरिराम व्यास का जन्म संवत् १५६७ अगहन कृष्ण ५ को ओरछा में हुआ था। इनके पिता का नाम समोखन शुक्ल तथा माता का नाम देविका जी था। पं. हरि राम सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे। इनके शिष्य महाराजा मधुकर शाह इन्हें 'गोस्वामी' संबोधित करते थे। पुरान के प्रकाण्ड पंडित होने के कारण इन्हें व्यास कहा जाता था। व्यास नाम इनकी कविताई के साथ जुड़ गया, अत: ये शुक्ल से व्यास कहलाने लगे, व्यास नाम ही इनका प्रचलित नाम साहित्य—संसार में पड़ गया। आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्र में हरि स्वामी के नाम से भी जाने जाते हैं। एक व्यक्ति इतने नामों यथा शुक्ल, गोस्वामी, व्यास एवं स्वामी उपनामों से जाने गये और पृथक—पृथक क्षेत्र में भी पहचान बनी रही। यह एक सुखद आश्चर्य नहीं तो क्या है?

पं. कृष्ण किशोर द्विवेदी से जब लेखक ने पं. हरिराम व्यास के बारे में जानने की जिज्ञासा व्यक्त की तो उन्होंने बताया कि व्यास की बचपन से ही विद्वता लिए हुए थे। होनहार विरवान के होत चीकने पात, पूत के पांव पालने में ही दिखने वाली कहावत हरि स्वामी ने चरितार्थ की। ये इतने धनाढ्य थे कि अधिक धन के कारण कनक—कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय, जैसी स्थिति हो गई। पैसे की अधिकता के कारण वंश बिगड़ने लगा। अत: लक्ष्मी जी का बाकायदा गधे की सवारी पर समारोह पूर्वक विसर्जन किया गया था, धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का आवाहन एवं शुभ और लाभ की कामना तो हर कोई करता है। लेकिन लक्ष्मी का विसर्जन और वह भी इतनी बेदर्दी से कदाचित विश्व की अपने आप में यह पहली घटना रही होगी। ओरछा शौर्य, वीरता और इस प्रकार की अनेक विचित्रताओं की किसी जमाने में मायानगरी रही होगी। रामराजा के साथ जुड़ी जनश्रुतियाँ, वीर देव हरदौल से जुड़े मिथक यही सब कुछ व्याप्त अपनी जुबानी कहते हैं।

पंडित हरिराम व्यास हित हरिवंश के शिष्य थे, उन्हें अन्यन्य रसिक आचार्य भी कहा जाता है। जितने भी कृष्ण भक्ति के सम्प्रदाय बृज मंडल में प्रचलित हुए उनमें हरि स्वामी का नाम आदर एवं पूर्ण श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इन्हें राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। ध्रुव दास कृत 'भक्त नामावली' में इनका वर्णन इस दोहे दृष्टव्य है —

कहानी करनी करि गयो, एक व्यास एहिकाल,
लोक वेद तजि के भजे, राधावल्लभ लाल।

इतना ही नहीं हिन्दी के युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिचन्द्र ने भी अपने एक छप्पय में हरि स्वामी का जिक्र इस प्रकार किया है—

जगदान चलायो भक्ति को, वृज सरवर जल जलज खिलि,
जान्यो विद्रावन रूप, हरिदास, व्यास, हरिवंश मिलि।

हित हरिवंश, स्वामी हरिदास एवं पंडित हरिराम व्यास विद्रावन में आज भी हरित्रियी के नाम से जाने जाते हैं, वियोगी हरि ने भी इन्हें भक्त शिरोमणि कहा है यथा :—

भक्त शिरोमणि व्यास, ओरछा नगर निवासी,
श्री हरिवंश प्रशंस शिष्य, हित धाम विलासी।

हरि स्वामी की सखियां, नीति के दोहे एवं पद बुन्देली जनपद की अपेक्षा बृज में ज्यादा प्रचलित हैं। बुन्देली माटी के इस भक्त कवि को बृज में बुन्देलखण्ड की अपेक्षा अधिक जाना, पढ़ा और समझा जाता है। विन्द्रावन में व्यासवाड़ा इनका स्मृति स्थल है। ओरछा में व्यासपुरा में इनकी जन्मस्थली को राज्य शासन की तरफ से 'केशव भवन' जैसा ही संरक्षित स्थल घोषित करना चाहिए। अच्छा हो व्यास जयंती इसी स्थल पर मनाई जाये, फिलहाल; यह स्थल अतिक्रमण चपेट में हैं।

'व्यासवाणी' नाम से इनके साहित्य का संग्रह है जिसके पुनर्प्रकाशन की महती आवश्यकता है।

— कमला कॉलोनी, छतरपुर □

(पिछले पृष्ठ का शेष)

सरनेत सिंह की राजनगर जागीर का भाग था। सरनेत सिंह के साथ गुमान सिंह खुमान सिंह ने भी लैस्ली का सहयोग किया। मऊसहानियां में पन्ना के राजा अनुरुद्ध सिंह एवं बाला जी गोविन्द की मराठी सेना ने लैस्ली का मुकाबला किया। बड़ी मार काट के पश्चात् कैधारियन घुड़सेना की मदद से लैस्ली इस राजगढ़ पैलेस में पहुंच गया था। दिनांक ३—१०—१७७८ को लैस्ली इसी राजगढ़ पैलेस में बीमारी से मर गया था। जिसका टौम्ब राजगढ़ में ही बना हुआ है। इसके बाद गौड़ार्ड चौका गुलगंज एवं मालथौन होकर पूना चला गया था। सरनेत सिंह की मृत्योपरान्त जागीर के प्रबंधक सोने जू पवार ने पन्ना राज्य का विग्रह का लाभ उठाकर सरनेत सिंह की जागीर को अपने अधिकार में लेकर स्वतंत्र रूप से छतरपुर राज्य बना लिया था जिससे राजगढ़ पैलेस भी उसी छतरपुर राज्य का भाग हो गया था।

— भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़ म०प्र० □

बुन्देली संस्मरण :

तुम चलौ हम आउतइ

– डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल'

''ओ–राम, ओ राम अब नईं बचत'' तिवारिन कक्को पीरा में कलार रईतीं। ई कलाखे की बोली सैं अचानक मेई आँख खुली सो फिर काय खौं लगतती। मै जबै उमर सै भलैंइ बारौ हतौ तौऊ कूलवे काँखवे की पीरा जानन समझन लगौ तौ। सो परौसिन बूढ़ी बेजार कक्को कौ दुख जानकै मनई मन दुख करन लगौ उर उदासौ हो गव। कछु देरं सन्नाटौ खिंचौ रऔ फिर 'हे राम हे राम' की औरउ जोर की दुख भरी बोली सुनाई परी। जा अबकी बार की बोली पैलां की बोली से दूसरे तराँ की लगी, सो मै संका खा कैं चौंक गव नैंक देर पाछूँ, झेल नई भइ कै ओई तराँ की काँखवे कूलबे की बोली फिरकऊँ सुनाई परी। तब मैं पक्की तराँ सैं जान गव कै कक्कोई नई तिबाई नन्ना सोऊ बेजार डरे उर पीरा सैं कूल काँख रय।

कत कै 'हौनी कभूँ कै कै नई आउतइ' उर कभऊँ कभऊँ तौ भगवान मान्स पै इकठौरेइ आफतन कौ पार पटक देत। सो ऐसई आफत हमाय परौसी तिवाई नन्ना पै आँन परी। उनकौ इकलौतो मौड़ा लच्छमी बीस दिनाँ सैं मोतीझरा में बेजार डरौ तौ ऊकौ अन्न पानूँ छूट गऔ तौ सो इत्तौ दूबरौ हो गवतौ कै खाट सैं लग गवतौ। ओई के सोस में कक्को उर नन्ना सुन्दा नैं अन्न पॉनूं छोड़ दऔ तो। तीसैं वे दोऊ जनैं चिन्ता की ताप में जर भुंज, सूक कैं खाट में मिल गयते। ई तरां ऊ घर में कुल जमां तीन जनौं उर तीनऊँ की खाटें बिछ गईती। सो बिनके घर में कोऊ काऊ की न सेवा खुसामद टैल कर सकततौ और न दबादारू दै सकततै। सइ कयँ तौ उनके घर में पानी दिब्बौआ तक कोऊ न हतौ।

हमाई बऊवा 'छीता' जिनकौ सइ नाँव सीतादेवी हतौ जनम सैं परसुआरथिन हतीं, तइ पै परौसी खौं पीरा सो उन्सै कैसे झेली जा सकतती। सो उनकी तौ आँखन की ऊँग सुन्दाँ भग गईती। सो वे तुरतई घर कौ काम काज, उसार हमाई मताइ के भरौ सैं छोड़ कैं तिबाई नन्ना के घरै पांच गई ती। इतेकई नई हल्के पतरे टऊकन के काजै अपनें सँगै हमाय हल्के कक्का खौं सोऊ लिबा लै गई तीं। काय सै वे जान गईती बे तिबाई के घरे कोऊ काऊ खौं पानी दैवो लाक तक नइँयाँ। उनके घरै पौंच कैं बउआ उर हल्के कक्का, दुआर का तीनऊ की सेवा सुश्रुरवा में लग गय। सबरी रात उनके घर सैं कूलवे काँखवे कौ ऐरौ आउत रऔ। जिये सुन सुन कैं हमाई मताई अपए घरै मछरी सी तलफत रई कै कबै भोर (भुन्सारौ) होय उर उनै देख आएँ। ऊ बेराँ परबस दाईइं बनीं रई और चिन्ता में जैसे तैसें रात कटी। मैऊँ घरै परौ परौ दुखी होत रऔ। काय कै अबै मैं काऊ की सेवा खुशामद लाकइ नईं हतौ। सो मैं सबरी रात, तिबाई नन्ना, कक्को उर भइया लक्ष्मीनाराँन कौ सोस करत रओ उर परौ परौ मड़ा के बाँसन खौं, पटनौर खौं चितैउत रऔ। जैसे तैसें रात काटी और फिर भुन्सारौ हो गओ। भोरई पतौ परौ कै हमाई बऊआ उर कक्का रात भर उन तीनऊं की सेवा टैल में जगत रयते, भौरई खौ देखतते और ऊखौ देखतत।

हमाइ मताई दिन ऊँगवे के पैलाँई घर कौ खास उसार करकैं तिबाई नन्ना के घरै पौंच कैं सेवा टैल में बऊआ खौं सहारौ दैन लगींतीं। मैऊँ चुप्पई मताई के पाछूँ पाछूँ तिवाई नन्ना के घरै पौच गव। उतै जाकै का देखत कै भइय लच्छमीनाराँन तौ ठीक (नौंनें) हो नई पाए, नन्ना उर कक्को उन्सैं जाँदाँ बेजार डरे उर अपनी सुर्त बिसार बैहे ऐई बीचाँ हमाई मताई नौं मसकऊँ उन्के घर सैं बायरै कड़के पुरा परौस में उनन की ताप (बेजारी) उर गैरहोसी की खबर करा दई। सो पुरा परौस सैं जनी मान्सन के आवे कौ ताँतौ लग गव। घरी भर पाछें काऊ के संदेसे पै गाँव के बिस्सू बैद उनन खौं देखबे आए। जो गाँव की पाठसाला में पंडित हते दरजी गिरी उर बैद गारे कौ काम अलग सैं करतते। उन्नैं पैलं लच्छमी भइया खौं देखौ–परखौ उर दबाई दइ, उन्सैं निबट कैं नन्ना, कक्कौ खौं दबाई दई और अनोपॉन झमका कै कछू सोसत दुखी मन जैंची मुड़ी करैं घर सैं बायरै कड़ गए। घरीक पाछूँ घर कौ रोटी पानूँ करबे के काजै हमाई मताई परोसिअँन सैं उतै रुकवे की कै कैं घरै चलीं आईं। पाछूँ पाछूँ हमऊँ चले आए।

रोटी खा पी कैं मताई के संगै दुबारा पौचौ तौ का देखत कै पौर में पुरा परौस के माँन्सन कौ भारी हुजूम जुरौ। सबरे मान्स घबरा रयत्ते। काय कै भारी ताप में नन्ना उर कक्को दोऊ जनैं गड़बड़ हो रयेते, बीच बीच में सुर्त सुन्दा बिसार जाउतते। जौ देख समझ कै हमाई बउआ नैं भइया लच्छमीनाराँन के लिंगा के उसारे में डरी कक्कौ की खाट खौं उतैसैं उठवा कैं पौर में डरबा दई कै लच्छमीनाराँन खौं मताई की भीसन बेजारी उर गडबड हालत कौ पतौ नईं पर पाए। काए कै जबरदस्त बेजारी सैं अबई अबै जैसैं तैसैं उन्की हालत नैंक नैंक नौनी होत जा रईती। मैं पौर में बने चौतरा के एक कौनें में बैठ कै टुकुर टुकुर उतै को हालचाल देखन लगौ। कछू मान्स नन्ना की कुठरिया में पौंच कैं उनकी सेवा टैल में लग गए उर कछु भइया लच्छमीनाराँन नौं पौंच गए। मौका पा कैं हमाय हल्के कक्का हँगवे (टट्टी फड़ाकत) बायरै कड़ गए। नैक देर पाछूं लौट आए।

ऐई बीचाँ हमाय बड़े–दद्दा (बड़े कक्का) पंडित रामनाथ उपाद्‌या पंडिताई के काम सैं गंज बासौदा सें लौट कैं घरै आय। वे घर में घुसअई नई पायते कै उनै तिबाई नन्ना के घर भर की बिथा कौ पतौ परौ सो घरै पँडताई के काँमन की दाँन दच्छिना की पुटरिया पटक कैं तुरतई सुदै तिबाई नन्ना के घरै जा पौचे। उतै सबरन की गड़बड़ हालत देखकैं दुखी हो गए। बिन्नैं नन्ना सैं बात

करबे की सोऊ कछू कौसिस करी पै नन्ना नौंनी तराँ ऊतरई नई है पाए। सो बड़े दद्दा मन्तकऊँ अपई आँखन में उतरा आए अँसुअँन खौ पौंछन लगै बऊआ धौर लच्छमी नौ पौचबें धौर कक्को नौं।

इतै चौतरा पै बैठें मेओ घिआँन काऊ की कई ई बात पै चलौ गऔ कै 'जी घर में रोगिअँन की तीन खाटें बिछ जायँ उतौ ऊ घर की नइआँ तौ ईसुरई पार लगा सकत ऊसैं ऊकी खैर नइयाँ।' ई बात के संगै हमाए संग के एक पढ़ैया की कइ जा बात सोऊ मन मे उभर आई कै 'तिवाई नन्ना के घर में कुल जमा तीन जनैं आएँ तो जिय तिजाई आउत होय ऐंतबार, बुधबार की रातै चुप्पई इनके घर के ऊपर एक ककौरिया फैंक दये सैं तिजाई चली जात' जा कै कैं संग के ऊ पढ़ैया नै अक्क न धक्क एक पथरिया उनके घर पै फैकी उर हमें अकेलौ छोड़ पदर करकैं अपने घर ताँई भग गवतौ। आज ऊ संग के पढ़ैयाँ के कारन कौ धिआँन करकैं हम मनई मन बाय लाखन गारीं दैन लगै कै हो न हो बइ टौटका सै आए तिवाई नन्ना के घर के तीनऊँ जनै ताप में डरै बेहाल हो रय और उनके घर में बेजारी पसर गई।

जब मोओ धिआँन भंग भऔ। कुठरिया में परे नन्ना गड्डबड्ड हो रयते उर पौर में डरी कक्को कल्थ रईती। इतेकइ में का देखत कै नन्ना कौ बखौरा पकर कैं हमाए हल्के कक्का उर एक परौसी उनै मुतास कराबे के काजै पौर में होर बायरै लै गए। बड़े दद्दा नैं नन्ना खौं भौत हटकौ तौ कै बायरै जिन जाओ इतई कुठरिया में कै आँगन में मूंत लेओ। हवा लगै हालत जादाँ बिगर सकत पै वे कायखौं मानतते। खैर मुतास करकैं जैसई वे बायरे से पौर में घुसे कक्कौ की खाट ताई घर कैं बोले 'तुम चलौ हम आउतई।' जा कै कैं वे पौर सैं भीतर खौं कड़ गए। पतौ नई उनके इन शब्दन पै काऊतइ नैं धिऑन नई दऔ। हां, मेओ पूरौ धिऑन गऔ पै जबै मैं हल्कौ उर कम अकल कौ हतौ सो जे शब्द नन्ना नैं कीसैं कय और इन सब्दन कौ अरथ नई जान पाये। तौऊ धरीक जा बात मन में धरी धरी घुरत रई। जब मेओ मन ई उरझी गुथी निरबार वे में लगौतौ कै का देखत कै — पीरा सैं कल्थत कक्कौ खौं एक जोर की हिचकी सी आई और फिर सब साँत। बइ हिचकी कक्कौ के पिरॉन पखेरू लै गई। छिन भर में घर भर में कुहराम मच गव। कोऊ कोऊ जनीं मान्स जोर जोर सैं डिड़यॉन लगै। सो हमाई बऊवा उर बड़े दद्दा नैं उन सब खौं डॉट कै चुप्प करा दऔ। वे बोले—हल्ला जिन करौ तुम सबकै रुआँएटे के सोर सैं लच्छमी की हालत फिरकऊ जादां बिगर जैहै जौंन दो चार दिनाँ से जैंक नैंक नौनी होत जा रई। जा डॉट सुनकै पौर में जुरे सबरे जनीं मॉन्स इकदम चुप्पी साद गए उर अपएँ दुख के अँसुआ भन्तकऊँ कछू दरकाउत कछू पी कैं रै गए।

बड़े दद्दा के कयं हमारा हल्के कक्का उर कछू परौसिऑन नैं कक्कौ की किरिया करम कौ पूरौ बँदोबस्त करौ। कक्कौ खौं सुहागिन लगाई की तराँ सजा सिंगार कैं, माँग में सिन्दूर पाँऔ में माहुर रचा कैं, चुरियां, बिछिया पैरा कै, नौनी ठठरी सजा कैं बुबकरी के मरघटा पै बारवे लै गए। जब कक्कौ की ठठरी जान लगीती मैं सोऊ मान्सन के सँगै जान लगौतौ ऊ बखत एक बुजरक नैं हमें डाँट कैं भगा दऔ तो (हटक दऔ तौ) कै हल्के मौड़ा मुरदा की ठठरी के संगै मरघटा नईं जाउत। काय कै मुरदा खौं बरतन देखकैं वे दैसत खा सकत। सो मैं अपएँ घरै लौटयाबौ।

इतै कक्कौ की माटी ठिकॉनैं लगाकैं पूरे मॉन्स लौटई नई आ पाएते कै नन्ना तिवाई जिनकौ पूरौ नॉव सिवचरन तिवाई हतौ उर जो गाँव के सबसै जादाँ पइसा वारे रद्धे खत्री (खत्तरी) के मुनीम हते, कक्कौ के परलोक सिधारवे के दोई घरी पाछैं ई सँसार खौं छोड़ कै सरगै सिधार गए। उनके मरवे की खबर लगतनई पुरा परौस में हाय हाय हौंन लगी। हरैं हरैं पूरे गाँव में खबर फैल गई और पूरे गाँव में मौत कैसौ सन्नाटौ खिंच गव। सबसै पैलां हमाई बऊआ नै जा बात बड़े दद्दा खौं बताईती जो नन्ना नौ खुशामद खौं ऊ बेरा हतीं। बड़े दद्दा सैं जात बात कऊती बेराँ उनकी आँखन सैं अँसुआ बऊत जा रयते उर बोल नई कड़ पा रयते। खैर बड़े दद्दा नैं जल्दी पल्दी उनऊ कौ किरिया करम करवाऔ और बेई आदमी जौन कक्कौ खौं ठठरी पै धर कै मरघटा लै गयते दूसरी ठठरा सजा कै नन्ना खौं बारबे मरघटा लै गए। उतै पौंच कैं कक्कौ की चिता के ढ़िगईं दूसरी चिता सजा कैं नन्ना खौं सरगै पौचा आए।

ई तराँ कक्कौ नन्ना दोऊ जनै संगै सरग नसैनी चढ़ गए उर हमऊँ खौं नई दुनिया खौं 'तुम चलौ हम आउतई' कौ सइ अरथ समझा गए। हाँ ई घटना सै हमाई समझ में एक बात और आई कै अटूट प्रेम (पिरेम) के कारनई, कक्कौ, नन्ना अग्गा पिच्छू सरगै सिधारे। इते कइ नई सइ कय तौ नन्ना नैं दिल भर खौं कक्कौ खौं बिधवा कुआवे कौ कलंक नई लगन दऔ उर अपने पुन्न धरम के बल पै वे घरी दो घरी अपनो पिरॉन टाँगै रय। काय कै वे जान गयते कै कक्कौ की ई संसार सैं छुट्टी होवे बारी आय। भइया हौ ई संसार में पति पतनी कौ ऐसौ नेव भौत कम देखवे खौं मिल्तई।

— सरल साहित्य संगम, ९७/१७—ए,
सिविल लाइन्स, झांसी उ.प्र. ☐

बुन्देली लोककथा

— निहाल अहमद सिद्दीकी

स्यारन की हुआ—हुआ की आवाजें सुनकें गाँव की सैर पे निकरे राजा ने अपने मंत्री सें पूछौ 'जे आवाजें कैसीं?' मंत्री बोलो — 'हजूर लड़ैआ ठंड के मारैं हुआ—हुआ चिल्ला रये'। राजा ने हुकुम दओ — 'इन्हें कम्बल दै दये जायें'।

एक दिनां फिर राजा सैर पै निकरे। सो उनें फिर हुआ—हुआ की आवाजें सुनाई दईं। राजा ने फिर मंत्री से पूछी — 'अब जे आवाजें कैसीं?' मंत्री ने जवाब दओ — 'महाराज लड़ैया कै रये हैं कै महाराज की जै होय—महाराज की जै होय'।

कालीदासकालीन बिंध्यखंड

– डॉ. कन्हैयालाल 'कलश'

कवि कुल गुरु महाकवि श्री कालीदास का अस्तित्व डॉ. पटवर्द्धन ने ज्योतिष के आधार पर ईसा पूर्व ५६ वर्ष प्रमाणित किया है। इस मान्यता पर उनका अस्तित्व आज से दो सहस्त्रोपरि अंठावन वर्ष पूर्व ठहरता है। उनके काव्य की लघुत्रयी में 'मेघदूत' महाकाव्य आकार में तो लघु है, परन्तु अनेक कारणों से विषय की दृष्टि से वह अति विशाल है। ऐतिहासिक, सामाजिक–संस्कृति और काव्य की रस–रीतियों की विशेषता के अतिरिक्त भारत की भौगोलिकता का उसमें सर्वोत्तम वर्णन है। ऐसा लगता है कि कालिदास ने सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण किया है। दक्षिण से कैलास–अलकापुरी मानसरोवर पर्यन्त का वर्णन तत्कालीन स्थिति का मेघदूत में प्रामाणिक खुलासा है। उनका विरही यक्ष अलका से निष्कासित होकर आम्रकूट या चित्रकूट पर वास करता है और अपना संदेशा मेघ से अपनी प्रियतमा के पास भिजवाता है। इस प्रकार उसके पथ में पड़ने वाले बिन्ध्यखण्ड के स्थानों का बहुत अच्छा वर्णन है। इस वर्णन में कालिदास ने विन्ध्यखण्ड की समृद्धि का अनुपम वर्णन प्रस्तुत किया है।

वैसे तो भगवान पाणिनि और महाभाष्यकार पतंजलि ने 'विन्मतोलुक्' सूत्रद्वारा विन्ध्य शब्द का अर्थ अति समृद्धि को धारण करने वाला बताया है। सचमुच, विन्ध्याद्रि का उत्तरी पार्श्व भारतीय आदिवासी–वनचरों और बन–सम्पदा द्वारा पूर्ण बित्तवन्त था। कविकुल गुरु कालिदास अपने प्रवास काल में 'नर्मदा–वेत्रवती' युक्त चर्मण्यवती क्षेत्र से अत्यन्त मुग्ध थे। सर्व प्रथम तो वे यहाँ की प्राकृतिक छटा का अत्युकृष्ट उल्लेख करते हैं–

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूमुक्त कुंजेमुहूर्तं,
तोयोत्सर्ग द्रुत तरंगतिस्तत्परं वर्त्मतीर्णः।
रेवां द्रक्ष्स्युपल विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा,
भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमंगे गजस्य।।

अर्थात : जलद अब आगे चलो विचार, करो नहीं ढ़िंगसार।
आम्रकूट की कुंज लतन में, करती जहाँ बिहार।
बनचारिनि की वधुएं रहतीं, अपनी कुटी सँवार।
बहती हुई नर्मदा लइयो, नैनन आप निहार।
ऊबड़–खाबड़ विन्ध्य सिलन में, बहवै जाकी धार।
दर्सनीय सोभा सरिता अस, छोड़त सलिल फुहार।
लगै भभूत अँग ओलत है, गज रेखा आकार।

आज भी नर्मदा के भ्यौंराघाट पर इस प्रकार की प्राकृतिक छटा देखने को मिलती है, जो विन्ध्यखण्ड की प्राकृतिक सौन्दर्य और अति समृद्धि को प्रकट करती है।

महाकवि ने बिन्ध्यखण्ड के 'दशार्ण' देश की संस्कृति, चैत्यों की कागौर बलियाँ, केतकी सुगन्धित क्यारियों और अमृत स्वाद भरे जम्बूफलों का इस प्रकार उल्लेख किया है, मानो वह स्वयं किसी विशाल राजकीय उद्यान में बैठा हुआ जामुओं का आस्वादन कह रहा है –

''पाण्डुच्छायो पवन वृतयः कैतकैः सूचिभिन्नैः
नीडारंभै गृहबलि भुजामाकुला ग्राम चैत्याः।
त्वयासन्ने परिणत फल श्याम जम्बू वनान्ताः,
सम्पत्स्यन्ते कतिपए दिनस्थायि हंसा 'दशार्णाः'।।

अर्थातः ऐंगर देखो देस दसारन, भरौ केतकी क्यारिन
काँटों जुक्त पाँडरी छवि के, बाग उतै मनहारन।
उतै घेंचुआ धरै काग कुल, बोध बिरछ की डारन,
अति आकुल खावे खौ दिख हैं, पीपर की कागौरन।
पके स्याम जाँमू फल लखहौ, तुम उन बनँन मझारन
हे घन, हंस इतै आउत हैं, कछुइक दिवस गुजारन।।

दशार्ण देश की समृद्धि में विदिशा का असाधारण सौंदर्य दर्शनीय है –

''तेषां दिक्षु प्रथित विदिशा लक्षणां राजधानी,
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुयस्मा–
त्संभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।।

अर्थातः 'ऐसो है बो देस धसानी, बिदिसा है रजधानी,
देस–विदेसन नाम नगर की, तहँ करियो निगरानी।
बाकौ जैसो नाँव सुलच्छन, पइहौ तुम लासानी,
लास–बिलासन की सामग्री, सबरीं उतै समानी।
मिलहै बहत बेतवा तुमखौं, भौंहें तान कमानी,
मानो तिरछी भरत तरंगै, चपला कोउ सुहानी।
लगत कि तरुनि कटाच्छ मार रई, धार चाल मस्तानी,
लहरँन मिस नाँचत सी सोंहै, छवि वारी गुनखानी।
जलधुनि ऊकी गौरव ऊकौ, तीरन करत बखानी,
करियो सुफल कामियन कैसी, तुम अपनी जिन्दगानी।
जैसे पियत अधर रस रसिया, रमनी कौ मनमानी,
हे घन, तैसई पिइयो ऊकौ, बड़ौ मिठौवा पानी।।

विदिशा की लास–विलासनी सामग्रियों और महाकवि का वेतवा का स्वादिष्ट गुणवर्द्धक पानी का वर्णन गंगाजल से भी अति महत्वपूर्ण बताकर विंध्यखण्ड को एक अत्यन्त महिमा मंडित क्षेत्र कहा गया है। कवि विदिशा का तत्कालीन वैभव निम्न शब्दों से इस विन्ध्यखण्ड को' स्वर्ण भूमि की भांति घोषित करता है –

'य: पण्यस्त्री रति परिमलोद्गारिभिर्नागराणा–
मुद्दामानि प्रथयति, शिलावेश्मनिं यौंवनानि।।

अर्थात: विदिसा ढिंग है नीच पहारौ, पाकै तहाँ सहारौ,
उतै नागरन संग गनिकायें, करती रति व्यापारौ।
गुफाघरन से तिनकौ परिमल बहत सुगंधन वारौ
सो बौ प्रगटत है विदिसा कौ, मदन मस्त तरुनारौ।।

यहां विदिशा के मदन–मस्त तारुण्य का उल्लेख कर बिन्ध्यखण्ड की समृद्धि में चार–चाँद लगा दिये हैं। इस प्रकार कहीं सरिताओं के तटों के चमेली के उद्यानों और मालिनियों के कर्ण पर धरे कर्णफूलों का वर्णन बिन्ध्यखण्ड की तत्कालीन संस्कृति का कवि ने स्वयं दृष्टा अथवा भोक्ता होकर वास्तविक वर्णन किया है। वह अपने महाकाव्य में उज्जयिनी का वर्णन अतिसमृद्धि–द्योतक शब्दों में करता है – कवि का एक पद्य दर्शनीय है –

''हारांस्तारांस्तरल गुटिकान्कोटिश: शंखशुक्ति:,
शष्पश्यामान्मरकतमगीनुन्मयूख प्ररोहान्।
दृष्टवा यस्यां विपणि रचिता न्विद्रुमाणां च भंगान्,
संलक्ष्यन्ते सलिल निधय स्त्रोय मात्रावशेषा:।।

अर्थात : सोहत कोटि–कोटि हटवारे, पुरी विसालावारे,
हार बनें तारँन में दमकत, मुक्ता प्रभा पसारे।
कोमल हरी घास सी दिपती, मरकत मनीं पँजारे,
रतनाकर सागर ता साँमू, लागत है जल धारे।
परबालन के टूटे किनका, बिखरे छबी सँवारे।।

उपरिउक्त हाटों के वर्णन से समझा जा सकता है कि विंध्यखण्ड में स्थित उज्जयिनी हीरा मोती, मरकत मणियों से भरी पूरी थी। एक स्थल पर तो महाकवि ने विन्ध्यखण्ड की वीरता और युद्ध–कौशल का सुन्दर उल्लेख किया है –

'पत्रश्यामा दिनकर हयस्पर्द्धि नो यत्र वाहा:,
शैलोदग्रामस्त्वमिव कारिणो वृष्टि मन्त: प्रमादात्।
योधागण्य: प्रति दशमुखे संयुगे तस्थिवांस:,
प्रत्यादिष्टाभरण रुचयश्चन्द्रहास व्रणांके।।'

अर्थात : कहँ तक उजैनी यशगावै, जह हय गय मनभावै,
श्यामकरन सूरजरथ घोरा, होड दोर दरसावै।
पर्वत कैसे गज तुम जैसे, मद अपनौ बरसावै;
उतै मल्ल योधा रावन संग, रन करवे मन चावै।
चन्द्रहास के घाव तिननतन, भूषन तुल्य सुहावै।

अर्थ स्पष्ट है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत की युद्ध सामर्थ्य विन्ध्यखण्ड में ही समाहित थी। भोग–विलास के अतिरिक्त सैनिक–सामर्थ्य कवि के इस कथन में ओतप्रोत है। कवि कुलगुरु कालिदास के महाकाव्य 'मेघदूत' का पूरा 'पूर्वार्द्ध' विन्ध्यखण्ड की संस्कृति और नागरिक समृद्धि का यशोगान करता है। नर्मदा के आम्रकूट क्षेत्र से लेकर चित्रकूट विदिशा उज्जेयिनी की श्रृंखला में इस विंध्य यशोगान के महाकवि ने अपनी सुखरतरु शाखा निर्मित दिव्य लेखनी को चम्बल तक अबाधकति से चलाकर आज की और आगे आने वाली भविष्य की पीढ़ियों को कृतार्थ कर दिया है। कवि वर्णित चम्बल का एक दृश्य सुनिये –

त्वयूयाहदातुं जलमवनते शार्गीणो वर्ण चौरे,
तस्या: सिन्धो: पृथुमपि तनुंदूर भावात् प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगन गतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी:
एकं मुक्तागुण मिव भुव: स्थूलमध्येन्द्रनीलं।।

अर्थात् : कि सोहै ऐसी चम्बल धार, मानो मुक्ता हार।
जब तुम ताके जल लैवे खौं, झुक हौ ता तट पार।
चोरी कर घनश्याम–श्यामतन, दिपत है अपरंपार।
धौरी धार दूर से पतरी, लगै हारु ज्यों तार।
गगन पथी तुमरी बा छवि कौ, ऐसे रहें निहार।
मुक्त–माल में इन्द्रनीलमनि, धरी धरा आधार।।

बिन्ध्यखण्ड की सम्पूर्ण नागरिकता, सामाजिक सांस्कृतिकता और भौगोलिकता का ज्ञान करने के लिये विद्वानों को एक जुट होकर अन्वेषण करने आवश्यक है।

– बुन्देली वार्ता शोध संस्थान, गुरसरांय, झांसी □

बुन्देली गीत

राम–गीत

– श्रीमती विजया केलकर

भइया, बड़े अचरज की बात
कि रामचरित सुनत रघुनाथ।
चरित सुनाबै कुस–लव भैया,
बालमीक के हते सिखैया,
अवध में पौंचे उनके साथ।१।। रामचरित....
नौने सुर में गान, सुनावैं,
सुनबे वाले सीस डुलावैं,
रूप निहारत नहीं अघात।।२।। रामचरित....
रामचन्द खुद समझ न पावैं,
कि लरका कैसे जानत हैवें,
का ऽ सुनाउत, गात बजात ।।३।। रागचरित....
सुनत सुनत वे सुध–बुध खौवें,
आँखे भर के गरे लगावैं,
प्रेम के अँसुआ ढड़कत जात।।४।। रामचरित....
बाप न बेटा कोउ न जानै,
एक दूसरे को ना पहिचाने,
सब कोउ देख आँसू ढड़कात।।५।। रामचरित....
बड़ी बात जा रामचरित की,
कुसलव कात कथा रघुकूल की
जानत नइ कछु बात पते की,
कि उनके बाप अजुद्धानाथ।।६।। रामचरित....

– फौलादी कलम के पास, छतरपुर म.प्र.

महाराजा छत्रसाल और मराठे

– कुँ. सुरेन्द्र सिंह बुन्देला
– डॉ. आर.के. अग्रवाल

वीर सिंह देव (प्रथम) के साथी तथा प्रचण्ड योद्धा चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल ने अपने कार्य का प्रारम्भ सैनिक सेवा के रूप में किया। १६६५ ई. में राजा जयसिंह की अधीनता में मुगलों ने शिवाजी के पुरन्दर दुर्ग को घेर लिया, इसमें छत्रसाल मुगलों की ओर से बड़ी वीरता से लड़े। इसके परिणामस्वरूप छत्रसाल को मुगल मनसबदार का पद प्राप्त हो गया।[१] १६६५ ई. में ही दिलेर खाँ के साथ बीजापुर पर आक्रमण करने के लिये भेजे गये। मुगल सेना में सम्मानजनक स्थान न मिल पाने के कारण उन्होंने मुगलों की सैनिक सेवा छोड़ दी।[२] १६७१ ई. में उन्होंने शिवाजी से भेंट की। शिवाजी के कहने पर वह बुन्देलखण्ड को मुगलों से मुक्त कराने के लिये अपने क्षेत्र लौट आये।[३] शिवाजी का विचार था कि बुन्देलखण्ड में मुगलों के विरुद्ध संघर्ष होने से मुगलों का ध्यान शिवाजी से हटकर बुन्देलखण्ड की ओर हो जाएगा और महाराष्ट्र पर सैनिक दबाव कम हो जाएगा।[४]

बुन्देलखण्ड में छत्रसाल को स्वाधीनता आंदोलन में सफलता प्राप्त हुई, उन्होंने लुटेरों, डाकुओं, सैनिकों और अराजक तत्वों को प्रोत्साहन देकर संगठन तैयार किया। आक्रमण और लूट के द्वारा मालथौन, सागर, राहतगढ़, महोबा, राठ, पनवाड़ी, मुस्करा, कालपी आदि क्षेत्रों पर अपना प्रभाव अधिकार स्थापित कर लिया। १६७५ ई. में पन्ना अपनी राजधानी बनाई लेकिन उन्होंने अपना सैनिक ठिकाना मऊ महेबा ही बनाये रखा।[५]

१७०४ ई. में औरंगजेब ने छत्रसाल को ४००० का मनसब देकर बुन्देलखण्ड का स्वतंत्र सरदार मान लिया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद छत्रसाल पन्ना के स्वतंत्र राजा बन गये।

छत्रसाल द्वारा मुगल सत्ता का विरोध, मुहम्मद बंगश से युद्ध

मुगल दरबार की गुट बन्दियों से उत्पन्न अराजकता तथा मुगल शासकों की क्षीण होती शक्ति का लाभ उठाकर छत्रसाल ने मुगल विरोधी रुख अपना लिया।[६] इनमें कुछ मुगल अमीरों, मुख्य रूप से सवाई जयसिंह का प्रोत्साहन छत्रसाल को प्राप्त था। छत्रसाल का राज्य और बुन्देलखण्ड, मुगल सामग्राज्य के इलाहाबाद सूबे में आता था। छत्रसाल ने आगरा व इलाहाबाद से लगे प्रदेशों को लूटना प्रारम्भ कर दिया, उन्होंने जालौन, कालपी, हमीरपुर, मौहदा आदि क्षेत्रों को लूटा। १७२० ई. में मुगल सम्राट ने मुहम्मद बंगश नाम एक योग्य पठान सरदार को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया।

बुन्देलखण्ड में शांति व्यवस्था स्थापित करने का उत्तरदायित्व मुहम्मद बंगश का ही था। अतः मुहम्मद बंगश ने इन क्षेत्रों की सुरक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिया। उसने एरच, भांडेर, कालपी, कौंच, मौदहा, सिपारी और जालौन जैसे क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के थे, जैसे ही इन पर मुहम्मद बंगश ने अपना नियंत्रण स्थापित किया, छत्रसाल और मुहम्मद बंगश के बीच कटुता उत्पन्न हो गयी। मुहम्मद बंगश, बुन्देलखण्ड की स्थिति व महत्व से परिचित था, इस कारण वह इन पर स्थायी नियंत्रण रखना चाहता था।[७]

१७२० में छत्रसाल ने कालपी पर आक्रमण कर लूटा और वहाँ के अधिकारी पीर अली खाँ को मार डाला, इससे असंतुष्ट होकर मुहम्मद बंगश ने मौदहा के दिलेर खां को छत्रसाल के विरुद्ध अभियान करने का आदेश दिया, छत्रसाल ३०,००० सैनिकों के साथ दिलेर खां के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये चल पड़े। ८ मई १७२१ ई. को दिलेर खां मौदहा से सोहरापुर जा पहुंचा, इसकी सहायता के लिये मुहम्मद बंगश ने अपने ज्येष्ठ पुत्र कयूम खां को भेजा। १५ मई १७२१ ई. को दिलेर खां ने छत्रसाल के पुत्र जगतराज पर आक्रमण किया परन्तु जगतराज ने दिलेर खाँ पर पीछे से आक्रमण कर दिया और उसे मार डाला।[८]

इसके बाद जगतराज और छत्रसाल निरंतर मुगल सूबे को लूटते रहे। इस कारण मुहम्मद बंगश ने छत्रसाल के दमन के लिए १५००० घुड़सवार सैनिक एकत्र किये और भोगिनीपुर के समीप अपना सैन्य शिविर स्थापित किया, परन्तु वर्षा ऋतु के कारण यमुना नदी में बाढ थी, इस कारण मुहम्मद बंगश बुन्देलखण्ड में प्रविष्ट नहीं हो सका। इसी समय यमुना नदी के दूसरे तट पर छत्रसाल और जगतराज डेरा डाले हुए थे। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर जैसे ही बंगश ने यमुना नदी पार कर छत्रसाल पर आक्रमण किया तो छत्रसाल ने मुहम्मद बंगश के साथ एक समझौता कर लिया, इस समझौते में यह तय किया गया कि, छत्रसाल भविष्य में मुगल सूबों में लूटमार नहीं करेंगे।[९] परन्तु छत्रसाल अपने वचन पर कायम नहीं रह सके और उन्होंने यथावत् मुगल क्षेत्रों में लूटमार करनी प्रारम्भ कर दी।

छत्रसाल द्वारा जप्त की गई मुगल जागीरों को वापिस लाने, मुगलों को पेशकश की धनराशि वसूल करने तथा छत्रसाल की मुगल विरोधी गतिविधियों का अंत करने के उद्देश्य से छत्रसाल के विरुद्ध बंगश ने अपने पुत्रों और सेना के साथ व्यापक अभियान प्रारम्भ किया।[१०] उसने पूर्वी बुन्देलखण्ड में प्रवेश करके मैड़ पैलनी, अगवसी, मोड़, सिमरी परगनों को

अपने अधिकार में कर लिया।

बंगश के इस सैनिक अभियान के कारण छत्रसाल के बारीगढ़, लौड़ी, महोबा तथा कुलपहाड़ क्षेत्र बंगश की अधीनता में चले गये। इसके बाद बंगश ने जैतपुर पर आक्रमण की योजना बनाई पर १७२७ ई. में पुनः वर्षा प्रारंभ हो जाने के कारण वह आगे नहीं बढ़ सका। उसकी सेना को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पर कि भी वह जैतपुर का घेरा डालने में सफल हो गया। लगभग ४ माह तक वह जैतपुर को घेरे रहा।

१२ दिसम्बर १७२७ ई. को बंगश का पुत्र कयूम खाँ अपने पिता की सहायता के लिये तिरोहा से चला। छत्रसाल जैतपुर के घेरे में इतने अधिक तंग आ गये थे कि उन्होंने लड़ते हुए किले से निकल जाने का प्रयास किया।[११] स्वयं को घिरा हुआ पाकर छत्रसाल ने जैतपुर से दुर्गादास नामक व्यक्ति को संदेशवाहक के रूप में पेशवा बाजीराव प्रथम के पास भेजा। इस पत्र में बड़े आग्रहपूर्ण संदेश व मर्मस्पर्शी आव्हान भेजें कि, बाजीराव तुरंत पूर्ण बेग से वहाँ पहुंचकर छत्रसाल के प्राणों और सम्पत्ति की रक्षा करें, पत्र में का गया था –

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखौ बाजी लाज।।

बाजीराव इस समय बुन्देलखण्ड के समीप देवगढ़ में था। छत्रसाल का संदेश प्राप्त होते ही वह तीव्र गति से बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा उसके बुन्देलखण्ड में रुचि लेने के अनेक कारण थे।

मराठों के बुन्देलखण्ड में रुचि लेने के कारण –

१. मालवा खानदेश और गुजरात में सफल मराठा अभियानों के लिये सेना और उसके संचालन के लिये धन की आवश्यकता थी। धन की पूर्ति के लिये पेशवा नवीन प्रदेश प्राप्त करना चाहता था। बुन्देलखण्ड मराठों के लिये नवीन क्षेत्र था।[१२]

२. पेशवा का सैन्य व्यय और व्यक्तिगत व्यय, दोनों बहुत अधिक बढ़ गये थे, इस कारण पेशवा पर कर्ज भी बहुत अधिक हो गयाथा। इसकी पूर्ति के लिये पेशवा नवीन प्रदेश प्राप्त करने का इच्छुक था।[१३]

३. यह समय मराठों के लिये आशा और संकट दोनों से परिपूर्ण था, भारतीय राजनीति में नवयुग का उदय हो रहा था। उत्तर भारत के राजपूत मुगल बादशाह से पूर्ण असंतुष्ट थे, बुन्देलों और मराठों का प्राचीन मैत्री संबंध था। वे स्वाधीनता युद्ध में मराठों का अनुकरण कर रहे थे, इस कारण बाजीराव ने मुहम्मद बंगश के विरुद्ध छत्रसाल का साथ दिया।[१४]

४. बुन्देलखण्ड, भौगोलिक व सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था, यह उत्तर भारत का 'प्रवेश द्वार' था। बुन्देलखण्ड पर अधिकार हो जाने से दोआब, दिल्ली व राजपूताने पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था, इस कारण बुन्देलखण्ड में पेशवा की रुचि थी।

५. पेशवा बाजीराव प्रथम को जब छत्रसाल ने सहायता के लिये पत्र लिखा तब बाजीराव को बुन्देलखण्ड में हस्तक्षेप करने का अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया।

पेशवा बाजीराव की सहायता

उपरोक्त कारणों से पेशवा छत्रसाल का पत्र पाकर विन्ध्येलखण्ड की ओर बढ़ा। १० मार्च १७२९ ई. में राजगढ़ में छत्रसाल के पुत्र भारतीचन्द्र ने पेशवा बाजीराव का स्वागत किया। भारतीचन्द्र से पूरी स्थिति को समझ कर, पेशवा बसारी[१५] होकर महोबा की ओर बढ़े। १७ मार्च को छत्रसाल और पेशवा की मुलाकात हुई, दोनों में गुप्त मंत्रता हुई। छत्रसाल ने पेशवा के सम्मान में ८० मोहरें भेट स्वरूप प्रदान कीं।[१६]

जब मुहम्मद बंगश को मराठों के आने के कारण अपनी संकटनापन्न स्थिति का ज्ञान हुआ, तो उसने १०००० पैदल और १०००० सवारों की सेना को संगठित कर दृढ मोर्चाबंदी की, परन्तु मुहम्मद बंगश को स्थानीय शासकों और जमीदारों की मदद प्राप्त नहीं हो सकी। ओरछा शासक के भाई लक्ष्मण सिंह ४ हजार सैनिकों के साथ मुहम्मद बंगश की सहायता के लिये गया, पर शीघ्र ही वह वापिस ओरछा आ गया।[१७]

मुहम्मद बंगश ने १९ मार्च को जैतपुर की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया। इधर बाजीराव को स्थानीय सहयोग भी प्राप्त हुआ, उनकी सैनिक संख्या बढ़कर १७००० हो गयी। इस सेना ने मुहम्मद बंगश की छावनी को घेर लिया। बंगश के पुत्र कयूम खाँ को जब अपने पिता की संकटमय स्थिति के समाचार ज्ञात हुये, तो वह रसद और सैनिक लेकर जैतपुर की ओर बढ़ा, पर मराठा सेनाओं ने सूपा के समीप उसे पराजित कर दिया और ३००० घोड़े तथा १३ हाथी लूट लिये। बंगश को जैतपुर के किले में शरण लेनी पड़ी।[१८]

मुहम्मद बंगश ने मुगल सम्राट से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। अगस्त १७२७ ई. में बंगश ने जैतपुर किला खाली कर दिया और भविष्य में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण न करने का वायदा किया।[१९]

पेशवा ने मुहम्मद बंगश के विरुद्ध छत्रसाल की जो समसामयिक सहायता की थी, उससे कृतज्ञ होकर छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को अपना पुत्र माना और अपने राज्य का तीसरा भाग देने का वचन दिया तथा बुन्देलखण्डी अनुश्रुतियों के अनुसार मस्तानी नामक एक नर्तकी भी भेंट की।[२०] यह नर्तकी बाजीराव की विशेष कृपा पात्र बन गई तथा इसे 'बाजीरावमस्तानी' का नाम दिया गया।

छत्रसाल द्वारा अपने बुन्देलखण्ड राज्य का तृतीयांश पेशवा बाजीराव प्रथम को देने का समाचार मुगल सरदारों को मिला तो वे बेचैन हो उठे, क्योंकि अब बुन्देलखण्ड होकर मुगल राज्य पर आक्रमण करना मराठों के लिये सरल हो गया

था, परन्तु अपनी निर्बलता के कारण मुगल, मराठों के विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर सके।

यद्यपि छत्रसाल ने पेशवा को राज्य का तृतीयांश देने का वायदा किया था, परन्तु उनके पत्रों से विदित होता है कि उनकी इच्छा जहाँ तक हो सके टालते रहने की थी, उन्होंने पत्र द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र को सलाह दी थी, कि उनकी मृत्यु के बाद वह राज्य का तृतीयांश मराठों को देने के बचता रहे।[२१] इसके अतिरिक्त छत्रसाल ने पेशवा को अपने राज्य की वास्तविक आय डेड़ करोड़ से छुपाकर केवल एक करोड़ रुपया बतलाई थी।[२२] इस समय छत्रसाल का राज्य जालौन, बांदा, हमीरपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, शाहगढ़, छतरपुर, सागर जैतपुर, सिरोंज व सरीला तक फैला हुआ था। ४ दिसम्बर १७३१ ई. को छत्रसाल की मृत्यु हो गयी।

महाराजा छत्रसाल अत्यंत दूरदर्शी एवं कूटनीतिज्ञ एवं समयानुकूल शासक थे। उन्होंने अपने राज्य को मुगलों से बचाने के लिये मराठों की मदद प्राप्त की, पर अपने जीवनकाल के मराठों को उन्होंने राज्य का अंश प्रदान नहीं किया। उनकी नीति बुन्देलखण्ड को पूर्ण स्वतंत्र बनाये रखने की रही, साथ ही मराठों से अच्छे सम्बन्ध भी कायम रखे, इसी कारण जब महाराजा छत्रसाल की मृत्यु हुई तो पेशवा ने उनके स्मारक (छतरी) को बनाने के लिये तृतीय पुत्र की हैसियत से व्यय का अपना हिस्सा प्रदान किया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. हफत अंजुमन (नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ) पृष्ठ ३२१
२. लाल कवि छत्रप्रकाश पृ. ७२–७९
३. लाल कवि छत्रप्रकाश – पृ. ७९–८०
४. सरकार जदुनाथ–औरंगजेब, भाग–५, पृ. ३९३
५. त्रिपाठी के.पी. – बुन्देलखण्ड का वृहत् इतिहास (राजतंत्र से जनतंत्र तक) पृ. ११२
६. लुनिया बी.एन. – मराठा, प्रभुत्व, भाग २, पृ. १८१
गुप्ता बी.डी. – सवाई जयसिंह एण्ड बंगश बुन्देलावार
7. Andhare B.R. - Bundelkhand under the Marathas, p. 27
8. Andhare B.R. - Bundelkhand under the Marathas, p. 28
9. Andhare B.R. - Bundelkhand under the Marathas, p. 29
१०. लुनिया बी.एन. – मराठा प्रभुत्व, भाग २, पृ. १८१
११. देसाई, गोविन्द सखाराम – 'मराठों का नवीन इतिहास' भाग २ पृ. ९२–९३
१२. देसाई जी.एस. – मराठों का नवीन इतिहास भाग पृ. ९२
१३. Selection from Peshva dafter, Vol 14, P. 92-93
१४. देसाई जी.एस. – मराठों का नवीन इतिहास भा.२पृ. ९२
१५. छतरपुर जिले से १२ कि.मी. पूर्व में छतरपुर पन्ना मार्ग पर स्थित
१६. गुप्त भगवान दास – महाराजा छत्रसाल बुन्देला पृ. ७४
१७. गुप्त भगवान दास – महाराजा छत्रसाल बुन्देला पृ. ७४
१८. गुप्त भगवान दास – महाराजा छत्रसाल बुन्देला पृ. ७७
१९. देसाई जी.एस. – मराठों का नवीन इतिहास भाग–२ पृ. ९४,
वर्मा एस.आर. 'मराठों का इतिहास' पृ. १५७
२०. मिश्रा एस.सी. प्रताप सिंह – मराठों का इतिहास पृ. २००
२१. पन्ना पत्र संग्रह २०, २९
२२. पन्ना पत्र ३९

– चेतगिर कॉलोनी,
छतरपुर म.प्र. ☐

बुन्देली गीत

राष्ट्रीय गीत

– जगन्नाथ प्रसाद 'सुमन'

ऐसो नोनौ देस हमाऔ, प्रानन सें हम खों प्यारौ,
मिल–जुर आऔ समारें ईखों, दुनियाँ भरसें जौ न्यारौ।
भारत मैया की ओली में, पले–पुसे जो सेनानी,
सो जुगन–जुगन सें संस्मरण सी, याद है उनकी कुर्बानी।
वीर प्रसूता ई माटी में वीरन ने अचरज कर दऔ,
गान्धी, नेहरू और सुभाष ने, अपनों त्याग अमर कर दऔ।
बलिदानी झाँसी कौ पानी, बैरी खाँ है हत्यारौ।
ऐसो नोनौ देस हमाऔ, प्रानन सें हम खों प्यारौ,
मिल–जुर आऔ समारें ईखों, दुनियाँ भरसें जौ न्यारौ।
गंगा, जमुना, सरस्वती की बहै जितै पावन धारा,
अडिग–हिमालय–प्रहरी बनकें, दमकै जैसें ध्रुब तारा।
जितै दुश्मन सें लोहा लैबे, हर जवान है मतवारौ।
ऐसो नोनौ देस हमाऔ, प्रानन सें हम खों प्यारौ,
मिल–जुर आऔ समारें ईखों, दुनियाँ भरसें जौ न्यारौ।
हर बाला जितै, लक्ष्मीबाई, हरनारी झलकारी है,
आन, बान औ ज्ञान के काजें, बीरन की बलिहारी है।
आसमान में जौलौ चंदा, सूरज कौ है उजयारौ।
तौलौ 'सुमन' प्रगति के पथ पै देस बड़तरै–मनयारौ।
ऐसो नोनौ देस हमाऔ, प्रानन सें हम ख्वों प्यारौ,
मिल–जुर आऔ समारें ईखों, दुनियाँ भरसें जौ न्यारौ।

– ४९१/ए., शिवाजी नगर,
झांसी उ.प्र. ☐

बुन्देली गीत

गाँव के तारे

– पूजा ठाकुर

गाँव के हैं तारे।
धरती माँ के प्यारे।।
भरी दुफरिया में खेतन कौ, जाकै रूप समारै
कौनऊ समओ होय जाकै, मैड़न के पाँव पखारै
सबई बूड़े बारे....
लज्जा कौ गानौ पैरें हैं, इनके घर की रानी
गंगाजल सै मिलत जुलत, इनकी आँखन कौ पानी
रूप इनके न्यारे....
इनके लरका बारे हैं, फूलन–कलियन सैं नीके
इनकी मुस्कानन पै परतयी चन्दा तारे फीके
हैं, घर के उजियारे....
जे, जीवन जगती पै वारत, इनपै हम तुम वारैं
'पूजा' सबई जनै हिलमिल, इनकी आरती उतारैं
जगत पालन हारे, धरती माँ के प्यारे।।

– थाने के पास, गुरसराँय,
जिला झांसी उ.प्र. २८४२०२

कलगी सम्प्रदायी ख्यालकार भोगीलाल

— डॉ. श्रीनारायण पाठक

ख्याल लावनी बुन्देलखण्डी फड़—साहित्य का प्रधान अंग है। इसकी परम्परा पुरानी है। देशी राज्यों के विलय के पूर्व बुन्देलखण्ड में अनेक छोटी—छोटी रियासतें थीं, जिनमें ख्यालों का प्रचार अधिक था। इन रियासतों में सुप्रसिद्ध ख्यालकारों और ख्यालबाजों को राज्याश्रम प्राप्त था। छतरपुर, चरखारी, ओरछा, बिजावर और अजयगढ़ रियासतों में ख्याल लावनी की प्रतिस्पर्धाएं अवश्य हुआ करती थी, जिनमें राजाओं, दरबारियों और जन—साधारण का मनोरंजन हुआ करता था।

बुन्देलखण्ड में जैसे तुर्रा सम्प्रदाय की जड़ें अंकुरित हुयी, उसी तरह यहाँ कलगी सम्प्रदाय भी किसी तरह से कम नहीं रहा। कलगी सम्प्रदाय के ख्यालकारों में गुरसरांय के स्व. श्री भोगीलाल गुप्त उच्चकोटि के ख्यालकार थे, जिन्होंनें कक्षा चार पास करके भी उच्चकोटि के साहित्यिक ख्यालों की रचना की। श्री भोगीलाल सेठ बुन्देलखण्ड में ''कलगी सम्प्रदाय'' के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। इनके दल में श्री भाऊनारायण पं. रामकृष्ण, रामचरनलाल कायस्थ, दंगली प्रसाद जैन और मोतीलाल हिंगवासिया प्रमुख कालगी ख्यालकार थे। सच पूँछा जाय तो बुन्देलखण्ड में 'कलगी सम्प्रदाय' के उत्कर्ष का श्रेय सेठ भोगीलाल को ही जाता है।

फड़ साहित्य की ख्याल विधा के वयोवृद्ध तथा प्रसिद्ध ख्यालबाज सेठ भोगीलाल का जन्म गुरसरांय जिला झांसी में सं. १९४१ वि. कार्तिक कृष्ण सप्तमी को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री बिलासीराम गुप्त था। आपकी शिक्षा केवल कक्षा चौथी तक हुई। आपके गुरु भाऊ नारायण महाराष्ट्रियनथे। आपको ख्यालबाजी का शौक १७ वर्ष की आयु से लगा। आप कलगी सम्प्रदाय के ख्यालबाज थे। आप आश्चर्यजनक प्रतिभा के धनी दंगली ख्यालबाज थे। इतनी कम शिक्षा होते हुए भी विशुद्ध हिन्दी में ऊँचे—ऊँचे भावपूर्ण साहित्यिक ख्याल लिखना सचमुच में कमाल की बात है। आपने लगभग दो हजार उच्चकोटि के ख्यालों की रचना बुन्देली और उर्दू में की है। आपके ख्याल हस्तलिखित है जो कि तीन जिल्दों में संग्रहीत है, उनमें से एक उनके पुत्र श्री राघव जी गुप्त जो स्वयं एक ख्यालकार है से गुम हो गया है जो अप्रकाशित हैं। सेठ जी का लगभग ७७ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। बुन्देलखण्ड का बुन्देली ख्याल साहित्य का अनोखा, बेजोड़ कलाकार हमेशा के लिये खो गया किन्तु उनके ख्याल आज भी बुन्देली साहित्याकाश में छाये हुये हैं।

सेठ भोगीलाल गुप्त ने ख्यालों के कई फड़ों में भाग लिया था। समथर में नन्हें पाटिया तुर्रे वाले से, महोबा में सदासुखलाल, हरबंशराय खुर्जा और नेक्शा से, गनेशीलाल अलीगढ़, सफदरअली तुर्रे वाले चरखारी, तथा मुन्नालाल तुर्रे वाले मऊरानीपुर से उनके फड़ जमा करते थे। कालपी में सेठ जी की पार्टी में कलगी सम्प्रदाय की ओर से मुहम्मद गुल कानपुर, बुनियादअली खुर्जा थे।

गुरसरांय तथा उसके आस—पास उनके कई शिष्य हैं। अभी भी उनके नाम की पार्टी चल रही है। इस पार्टी में उनके सुपुत्र राघवदास हैं। उनके शिष्य स्व. शिवराम, स्व. रामसेवक, नत्थू हज्जाम और बाबूलाल ब्राह्मण गुरसरांय हैं। सेठ जी के ख्यालों के अच्छे गायक थे। वे चंग बहुत बढ़िया बजाते थे। बुन्देली लोक साहित्य में वे सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने ख्यालों के अतिरिक्त फागें, कवित्त, सवैया, सैरें, और मंजे आदि भी विपुलता में लिखी हैं। वे बुन्देली तथा उर्दू दोनों में ख्याल समान भाव से लिखते थे, उन्हें ख्यालबाजी की रागिनियों का अच्छा ज्ञान था। उनकी भाषा परिष्कृत और प्रसादिक है। यहां ख्याल पावस—कजरी का उदाहरण दृष्टव्य है—

''सज के निकली गृह से बाला मन मोद दर्साउती हैं।
डलिया में धरी पियरी व हरी खौंटन के लिए हरसाउती हैं।।
पहरे पट रंग अनेकन केतन अंगू अनंग उगाउती हैं।
सिर पै कजरी, दृग में कजरा, मुख से कजरी धुन गाउती है।।
खड़ी आय तला पै झला के झला दोऊ भुजान हिलाउती हैं।
दुनियाँ को डुबोय वो हाथन सौं दुनियाँ को मनो दिखराउती हैं।।
लेकर के कर में कजरी मिस आपस में बतराउती हैं।।
सज के निकसी गृह से बाला........।।''

इसके अतिरिक्त भोगीलाल जी कृत रूपख्याल नायिका रूपगर्विता नायिका का एक छन्द देखते ही बनता है —

''सब आब गुलाबन त्याग दई समता तज कोमल गाल सखी।
तिल को नहिं पावत नीलमणी लख ठोड़िहिं मात रसाल सखी।।
सब सान बिसार रही अपनी बहियाँ लख कंचनबाल सखी।
नहिं कंठ समान कपोत डटे लहरे शुठि मोहन माल सखी।।
बतलाव जरा हमसे बढ़के कहिं और लखी बृजबाल सखी।
हमरौ यह रूप अनूपम है सब सौतिन को हिय साल सखी।।

सेठ भोगीलाल ने पूर्वाचार्यो की भांति नायिका भेद कथन कर अनेक ख्याल रचे हैं। जाति के अनुसार इनके चार भेद हैं, पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी तथा प्रकृति के अनुसार तीन उत्तमा, मध्यमा और अधमा। स्वभावानुसार भी नायिकाओं के तीन वर्ग हैं — अन्यसुरतदुखिता, मानवती और वक्रोक्तिगर्विता। भोगीलाल सेठ ने रीतिकालीन परकीयामध्या

नायिका का वर्णन इस प्रकार किया है, वो इस ख्यालांश में वर्णित है –

''प्रिय प्रीतम केलि कुतूहल के रस रंग उछाह उदायन में।
झुक झोकन के झकझोरन से कसकें जुग पांयल पॉयन में।।
हिय हीरन हार की टूटी लरी वाहें सोच नहीं टूटी कस री।
कुच कंचुकि मसकन कसकन में बन्द छूट गई पिय के बसरी।।
घर लोग कुटुंब की आन करूँ सब ठौर लगे जिय में रिसरी।
मुरही बोय टोर मरोर धरूं रसपान में घात करे निस री।।
रति रंग अनंग उमंगन में मूद बाकी रसीली रसायन में।।
झुकझोकन के झकझोरन से कसके जुग पायल पांयन में।।''

सेठ जी ने परकीया नायिका की भाँति, विदग्धा नायिका का भी सफल वर्णन किया है जिसमें मिस (बहाने) की सफलता देखत बनती है,–

''किहिं काज गई कर क्या पलटी जिहि हेत गई रह कुंजन में।
परघात करी हमरे संग मे, कहिये कस बात जची मन में।।
यह वस्त्र फटे किहि कारन से, उरझे सुर झेवहु वृक्षन में।
गई फैल सुभालहि की विंदगी, धर शीश परी पद कंजन में।।
द्रग दोउन में अरुनाई दई, भय के वश नींद उचारन में।
जमुहात न बात बतात भली, अलसात रही निश जागन में।छंद।।
कसपीक तमोल कपोलन पै, लग दागगयो मुख पोंछन में।।

उक्त ख्याल में श्री भोगीलाल ने विदग्या नायिका की वाक्यपटुता का सटीक व मार्मिक वर्णन किया है।

बुन्देली ख्याल साहित्य में श्री गुप्त ने अनेक उच्चकोटि के ख्याल रचे जिनमें अधर कल्पना, भावप्रबलता और शिल्प का अनूठा संयोग है। लोकप्रिय पौराणिक आख्यानों, नायिका भेद, नखशिख, पोडया श्रृंगार, बारहमासा, अलंकार शास्त्र, पिंगलशास्त्र, नवरस, भक्ति तथा दर्शन पर रचे गये उनके ख्याल दंगलों में विशेष रूप से गाये जाते हैं। निम्नांकित ख्याल देखकर हम यह भी कह सकते हैं कि श्री गुप्त को ज्योतिष शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था – यथा,

जिस महिना अरू जौन ऋतु में जन्म लेयगा जो प्राणी।
इस प्रकार से है फल इसका ये ज्योतिष मत की वानी।।
जन्में शिशिर स्वरूप बढ़प्पन पर न लाभ कुछ भी पावे।
वसंत ऋतु का सुजान सुंदर साधू सेवा मन लावे।।
ग्रीषम की कटि ग्रीवा मोटी चतुर क्रोध अति डर लावे।
वर्षा का राजमान कवि हो शरद विज्ञ बुध दरसावे।।
हिमंत का हो पति ग्राम का धनी कही छैरित छानी।।
०० ०० ००
भोगीलाल ज्योतिष का कर्थ छंद सुमरि सरस्वती महारानी।।

उक्त ख्याल में गुप्त जी ने हिन्दुओं के बारह मासों में पैदा होन वाले मनुष्य के ऊपर पड़ने वाले स्वभाव का चित्र खींचा है जिसमें शिशिर ऋतु बाला सुन्दर व साधू सेवक, ग्रीष्म में जन्मा मोटी गरदन वाला व क्रोधी स्वभाव से भरपूर वर्षा ऋतु का कवि हृदय वाला, हेमंत ऋतु का धनी व्यक्ति होता है। इसी तरह फागुन वाला लंबा कद, चैतमासी चतुर दृढ़ प्रतिज्ञ, वैशाखी मात–पिता सेवी, जेठ मास का संतोषी व बलधारी, आषाढ़ का चंचल, श्रावन का शिल्पी एवं शास्त्र ज्ञाता, भादों का दृढ़ प्रतिज्ञ प्रेमी तथा कला प्रवीन, क्वारमासी कुल पालक, कार्तिक का रोजगार चतुर, अगहन मास का स्वजन कुटुंवहि सनमानी, पूष का धन भोगी एवं माघ मास का तीव्र बलवानी बतलाया है।

मासफली ज्योतिष की तरह गुप्तजी ने तिथिवार पैदा होने वाले व्यक्तियों के फलाफल पर भी ख्याल रचे हैं जैसे –

''ज्ञाता चतुर शुक्ल का सुन्दर कृष्ण का अति अभिमानी हो।
जुगल पक्ष की तिथियों का फल सम जोतिष की बानी है।टेक।।
परमा को जन्में तो ज्वारी चोर हटी होवे धन हीन।
चंचल भृष्ठ अधर्मी कामी जन्म दोज का लीजे चीन।।
आमद खर्च समान तीज का व्याकुल रहे उद्यम बिन दीन।।
मित्र पुत्र मन हर्ष वस्त्र सुच रखे चौथ को जनमन लीन।।
पाँचे को उद्यमी मातु पितु सेवी उदार दानी है।
०० ००० ००
जन्म अमावश को होवे तो भेद छिपाने वाला हो।
मूरख होय बलवान होय कृत चोरी में मुंह काला हो।।
सखुन दंगली के समसे कोई गुनी जो गुन में आता हो।
गनेश जू शिवराम कालका छंद में सांचे ढाला हो।।
''भोगीलाल'' हरि भजो चंदा पै हरी ध्वजा फहरानी है।
जुगल पक्ष की तिथियों का फल सम जोतिष की बानी है।।

ज्योतिष शास्त्र के साथ ही भोगीलाल जी ने कोकशास्त्र पर भी अपनी ज्ञान गंगा बरसाई है जिसमें तिथिवार रति क्रीड़ा का दिनमान सुनिश्चित किया है जो यहाँ दृष्टव्य है –

''काम कला का ज्ञान बिना जाने रस ग्रंथन आता है।
कोकशास्त्र पढ़ने वाला संभोग समय सुख पाता है।।
कृष्ण पक्ष की परमा को रहता है मांग नख दान करे।
द्वितीय द्रगन चुम्बन करके रति कर पतनी से मान करे।।
त्रतीय अधर उर चौथ कपोलन खंडन चुम्बन आन करे।
पांचे ग्रीवा छटे काँख नख दान विचार सुजान करें।
सातें आठें को उरोज उर मलतन रस बरसाता है।
०० ०० ००
रहे अमावश को अंगुष्ट मर्दन ताड़न दरशाता है।
कोकशास्त्र पढ़ने वाला संभोग समय सुख पाता है।।

आर्थिकता की महत्ता को प्रदिपादित करते हुये गुप्त जी ने रुपये का वर्णन इस प्रकार से किया है जो इस ख्यालांश में उधृत है –

''सब सरदारों से बढ़कर है सरदार रुपैया कागज का।
क्या सुन्दर सिक्का चला दिया सरकार रुपैया कागज का।
हर इक को बस करने वाला विस्तार रुपैया कागज का।
इक पल में अच्छा कर देता बीमार रुपैया कागज का।
कैदी का कैद से करा सके निस्तार रुपैया कागज का।
बस दिल को खुश कर देता है दिलदार रुपैया कागज का।।

इसके अतिरिक्त सेठ भोगीलाल जी ने त्रिविध विषयों पर हजारों बुन्देली ख्यालों की रचनाएँ की। इस हेतु उन्होंने अठारह पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों से पर्याप्त सामग्री ग्रहण की है। उनके ख्यालों में नवरसों की सफल अभिव्यंजना हुई है। नायिका भेद और काव्य लक्षण जैसे शास्त्रीय विषय उन्होंने संस्कृत आचार्यों तथा हिन्दी के रीति कवियों से ग्रहण किये हैं। बुन्देलखण्ड की सुरम्भ्य प्रकृति का मनोरंजक चित्र और लोकसंस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति इनके ख्यालों में विद्यमान है।

ख्यालकार भोगीलाल ने पौराणिक आख्यानों को बुन्देली में प्रस्तुत कर बुन्देलखण्ड के उन लोगों का हित किया जो संस्कृत के ज्ञान के अभाव में पौराणिक कथाओं से पूर्ण परिचित नहीं हो सकते थे। अतः उन्होंने बुन्देली ख्याल के माध्यम से पुराणों के द्रोपदी चीर हरण आख्यान से एक ख्याल प्रस्तुत है–

''द्रोपदी सभा में जब हो दीन पुकारी।
मैं त्राहि–त्राहि शरणागति नाथ तिहारी।।
दुरमते दुशासन ने मन षदी विचारी।
करनौं चाहै खल मोकूँ नग्न उधारी।।

इसके अतिरिक्त राम व कृष्ण कथा सम्बन्धी अनेक संदर्भों पर इन के द्वारा ख्याल रचे गये हैं जो आज भी जनमन के कण्ठहार हैं। इन के ख्यालों में शिल्प की दृष्टि से दोहा, सोरठा, छन्द और झोलना का प्रयोग हुआ है यहाँ अंगद–रावण संवाद का एक ख्यालांश देख सकते हैं।

टेक – सहयुक्त सभा में हंस–हंस के जो प्रश्न दशानन करते हैं।
प्रति उत्तर में अंगद सारे प्रश्नों का खण्डन करते हैं।।
छन्द – रावण कह दुख रूपी नरतन क्या ईश्वर धारण करते हैं।
कहें अंगद ले अवतार प्रेम भक्ति संचालन करते हैं।
कह रावण राम जगतपत हो कस विचरन कानन करते हैं।
कह अंगद भूमि भार हरन हित खलदल नाशन करते हैं।

श्री कृष्ण की प्रेम लीलाओं में लोक जीवन प्रतिबिम्बित् हो उठा है। श्याम के रंग में रंगी एक गोपी श्री कृष्ण से गो–दोहन के लिए आग्रह कर रही है –

''दुहाई जो कुछ कहोगे दूँगी दुहाई खाकर कहूँ कन्हैया।
दुहाई देती हूँ आप चलके लगा दो गैया न घर दुहैया।।

पुराणों में वर्णित भगवान शिव, विष्णु अवतार श्री कृष्ण के मध्य हुए भयंकर युद्ध का सजीव चित्रण इन के ख्यालों में मिलता है यथा –

''वाणासुर से समर करन हित इत से कृपा निधान चले।
अपने भक्त की रक्षा करने उत शंकर भगवान चले।।
इधर गरुड़ पर हो सवार सज कृष्ण चन्द्र अवतार चले।
उधर सवारी कर नंदी पर हो भोला तैयार चले।।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल पीताम्बर पट डार चले।
उधर शेर का चर्म जटा मुकटान गंग सिर धार चले।।''

उक्त ख्याल में दास बनकर भगवान भी रणक्षेत्र में अपने भक्त की ओर से युद्ध करने को किस प्रकार से उतरे हैं, यह देखते ही बनता है। वहीं, जब किसी भी पक्ष पर किसी अन्य पक्ष की विजय असंभव प्रतीत होती है तब श्रान्त–क्लान्त पक्ष अन्त में मां भवानी की शरण में जाकर उनकी इस प्रकार से प्रार्थना कर उठता है।

''जै–जै–जै–श्री जगदम्बा खल हनन सुख–दुख दानी हैं।
आदि भवानी आपकी महिमा वेदन बीच बखानी है।।''

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि गुप्त जी हिन्दी ख्यालों के साथ ही उर्दू में भी सिद्धहस्त थे। सेठ जी का एक उर्दू ख्याल भी देखिये –

टेक – दीवाना बना इश्क का उसे क्या फर्क गदा औ शाह में है।
पर वो न निकल सकता है कहीं जो डूबा तेरी चाह में है।।
कोई खोज रहा जंगल में तुझे कोई अन्दर शहर पनाह में है।
कोई कहता तूँ मंदिर में है कोई कहता तू दरगाह में है।।
जिसने भी आगे बढ़ाया कदम बस नहीं हुआ गुमराह में है।
जो चला थाह लेने को लगाया गोता आब अथाह में है।।''

सेठ जी की कलम संस्कृत में भी कमजोर नहीं थी उनका एक संस्कृत में ख्याल दृष्टव्य है –

''अजः अच्युतः अनादि निधनोअहः अमोघः अर्ध सतक्षर।
अमृता शूद्ध वो अग्रनी अद्रश्यो अव्यक्ति आदि ईश्वर।टेक।।
काम प्रदः काम कांतकर्त्ता कारणम् च कुमुदः कृष्ण कुंदर।
अनिर्देश वफः अयेयात्मा अशोकं अनुकूलः स्थावर।।
प्रथितः प्राणः पवन पावनो पुरु जित्युरु सतमः पुरन्दर।
पुरुषः परिमेष्ठी परिग्रहः पुष्पहोंस प्राणदः अजागर।।
अनन्त रूपो आचार विलयो ओजस्ते जो असीम द्युतिधर।।।।

भाषा की पकड़ के साथ ही सेठ जी के ख्यालों में चमत्कार–प्रदर्शन की भावना उन्हें अलंकारों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट करती रही है और वे तरह–तरह के प्रयोग करते रहे हैं। भोगीलाल के ख्यालों में उनका अपना अलंकार विधान चलता है साथ ही हिन्दी पिंगल में वर्णित अलंकारों की छटा भी इनके ख्यालों में यत्र–तत्र बिखरी मिल जाती है। दंगल में गायन तथा मंच पर प्रदेर्शन के लिए सेठ जी ने जो ख्याल रचे हैं। उनमें भी बारहमासा, ऋतुवर्णन, नखशिख तथा अलंकारों की मनोरम छटा मिलती है। बारहमासा का अलंकृत उदाहरण देखिये –

टेक : रै गई न अब गरमी की खरी दुपरिया।
आ गई सौत बरसा में लगै लुगरिया।।
छन्दः आओ असाड़ रई घर को घेर बदरिया।
कऊँ झींगुर बोले कऊँ टर्राय मिदरिया।।
सूनी खटिया डर लगै न रयै सबरिया।
ना आये ना पठवाई कछू खबरिया।।
लौटः मंतुर के बल से बस में करे कुबरिया।
आ गई सौत बरसा में लगै लुगरिया।।

इसी प्रकार भोगीलाल जी के ख्यालों में लगभग सभी

प्रकार के विप्रलम्भ श्रृंगार मिल जाते हैं, उनमें से एक उदाहरण दृष्टव्य है :—

''नहिं आय सके मन भावन जू नहीं भेज सके सुख की पतियाँ।
किहि से कहिए दुख ये सजनी किस भाँत करें विरही रतियाँ।
अब आन चहै रित पास की चहुँ ओरन बादर छाय रहे।
कहिं पै बरसे ननहिं बुदियाँ कहिं जोर झला झहराय रहे।।
कहिं झिल्लिन की झनकार सुनौ कहिं दादुर सोर मचाय रहे।
कहिं मोर उमंग भरे मन में वन में निज नाच दिखाय रहे।

सेठ जी ने यहाँ पावस ऋतु के पपिहा, मोर, दादुर, रैन, बयार, जुगनू, बादल आदि को उद्दीपन बतलाते हुए बिरहिणी के बिरह को और अधिक बढ़ाने का काम किया है। वही छत्रपति शिवाजी के यशोगान का वर्णन करके वीर रस में लेखनी की वीरता दिखलायी है —

''दुश्मन के दल के दल दलती जब दस्त खानी में।
ये बीर तेरी शमसीर बुझी इस तौर विषैले पानी में।।''

अन्ततः हम कह सकते हैं कि भोगीलाल सेठ मूलतः बुन्देली ख्यालकार रहे हैं किन्तु अन्य ख्यालकारों की भांति बहुभाषाविद् जताने की प्रवृत्ति के चलते उनके ख्यालों में भी हिन्दी के साथ उर्दू, ब्रजभाषा एवं अरबी—फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं। इसलिए उन्होंने कहीं—कहीं एक ही ख्याल में कई भाषाओं का पुट भी दिया है। एक ओर बहुत से ख्यालों में जहाँ बुन्देली की शुद्धता का ध्यान रखा गया है, वहीं अधिकांश ख्यालों में मिश्रित भाषा का रूप भी मिलता है।

लोकोक्तियों, कहावतों और मुहावरों से सम्पन्न भाषा सौष्ठव भी बुन्देली ख्यालों की लोकप्रियता के विस्तार में सहायक हुई है। अतः कह सकते हैं कि बुन्देलखण्ड के ख्याल साहित्य में सेठ जी ने शिल्पगत प्रधानता प्रदान की है।

लोक काव्य के बारे में विद्धानों की यह मान्यता है कि उसमें भावों की या अनुभूति की प्रधानता रहती है। अभिव्यक्ति पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। एक सीमा तक यह मान्यता सही हो सकती है, किन्तु डॉ. राधावल्लभ शर्मा के मतानुसार 'बुन्देली काव्य में न केवल भाव और शिल्प का अद्भुत समन्वय स्थापित हुआ है अपितु शैल्पिक चमत्कार की भी उत्कृष्ट योजना हुई है।'

भोगीलाल सेठ के एक ख्याल के माध्यम से हम बुन्देली ख्याल साहित्य के शिल्पगत सौष्ठव का सरलता से अनुमान लगा सकते हैं —

टेक : कर—कर के नृत्य कुछ गाना नहीं, वैश्या समभाव बताना नहीं।
मस्ताना मर्द का बाना है, ये ख्याल का राग जनाना नहीं।।
छन्द : है काव्य कला का दिग्दर्शन, विधि तनया का भण्डार है ये।
उपमाओं उप उपमेय सहित, उपमानों का विस्तार है ये।
भावों व अलंकारों से भरा, परिपूरन पारावार है ये।
है थांह का पाना बहुत कठिन, गंभीर भी गैर शुमार है ये।।
लौटः जिसने ग्रंथों को छाना सही, उसने इसको पहचाना सही।
मस्ताना मर्द का बाना है, ये ख्याल का राग जमाना नहीं।।
छन्द : षटरस कुल विध की सृष्टि में है, इसमें नवरस का खजाना सही।
मन भय जरसत शुभ और अशुभ है, आठोंगन का ठिकाना सही।।
लघु दीरध स्वर व्यंजन से, वरन जचके श्रृंगार सजाना सही।
अनुप्रास से भूषन भूषित हों, जमको की चमक दरसाना सही।।
लौट : पिंगल जो पढ़े समझे इसको, आसान है छंद बनाना नहीं।
मस्ताना मर्द का बाना है, ये ख्याल का राग जनाना नहीं।।
छन्दः आठों ही दग्ध अक्षर त्यागे, पुन आठहु दोष से दूर रहे।
गन नायक का रह ध्यान बना, बुद्धि से मन भरपूर रहे।।
भगवत के भजन में भरी हुई, भक्ति की भावना भूर रहे।
रचना का मजा सनदों को सजा, रब ही की रजा में चूर रहें।।
लौट : गाये—नाचे जो उदर के लिये, उनको तो हमें अजमाना नहीं।
मस्ताना मर्द का बाना है, ये ख्याल का राग जनाना नहीं।।
छन्द : नित प्रेम से सीधे शब्दों में नारायन के गुन गाना हमें।
प्रति एक समझ पायें सज्जन उतना ही भाव दिखाना हमें।
कवि से है विनय सुनलो—समझो, समतोल के ख्याल सुनाना हमें।।
लौटः रंगत हो, सनद हो, रस लालन इक कोरी रफीद बताना नहीं।।
मस्ताना मर्द का बाना है, ये ख्याल का राग जनाना नहीं।।

सेठ भोगीलाल गुप्त का उक्त ख्याल स्वमेव ही उनकी लेखनी व कला सौष्ठव का परिचायक है जिसमें ख्याल रचना साधारण काम नहीं कहने के लिये उन्होंने 'ख्याल का राग जनाना नहीं' कहकर ख्याल की महत्वता प्रतिपादित की है।

इस प्रकार ख्यालकार स्व. श्री भोगीलाल गुप्त की उपलब्ध रचनाओं के आधार पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि वे अपने समय के बुन्देली ख्याल साहित्य के पुरोधा रचनाकार थे। यदि इनके समग्र ख्याल सहित्य का संकलन कर मूल्यांकन किया जाए तो वे निश्चय ही गंगाधर व्यास, घासीराम व्यास, शफदर अली और कन्है पण्डा की भांति बुन्देली ख्यालों के समर्थ रचनाकार सिद्ध होंगे।

साहित्य प्रेमियों के लिए यह सोचनीय विषय है कि धीरे—धीरे समय की गति के साथ अब ख्याल गायकी का महत्व घटता जा रहा है। सिनेमा व टी.व्ही. ने हमारी जिन जनप्रिय कलाओं को झकझोरा है, उनमें ख्याल सहित्य का नाम भी है, किन्तु मृत्युप्राय बुन्देली ख्याल परम्परा को पुनर्जीवित करनेमें अभी भी यदाकदा नवोदित लोकगीतकार ख्याल परम्परा का निर्वाह करते रहते हैं।

वर्तमान में तुर्रा—कलगी सम्प्रदाय ही प्रमुखहै। शेष सम्प्रदायों का अस्तित्व क्षेत्रीयता लिये होने के कारण प्रायः समाप्ति की ओर हैं। अतः इनका कोई स्थायी रूप नहीं बन सका है।

— म.प्र. विद्युत मण्डल, छतरपुर

वे केवल उपदेश देवौ
अपनौ 'करम' मानत हैं।
स्यात् कल्युगी सन्तन कौ 'मरम' जानत हैं।
— किशोरी लाल गुप्त, पचोर वार्ड, शाहगढ़, सागर

फड़ काव्य परम्परा के कवि : रामसहाय कारीगर

– डॉ. दयाराम वर्मा 'वेचैन'

बुन्देली साहित्य के विभिन्न आयामों में फड़–साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है। गांवों के सुदूर अंचलों में रहनेवाले अल्प शिक्षित कवि और गायक इस फड़ विधा के सृजनहार, पोषक व संवर्द्धनकर्ता रहे हैं। फड़ साहित्य के अंतर्गत शैर, ख्याल, लावनी, भजन, कीर्तन, दिवारी तथा फाग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फागों में छंदयाऊ फागें तथा चौकड़िया (नरेन्द्र) छंदों का अधिक प्रचलन रहा है। कार्तिक मास में कृष्ण स्वरूप ग्वाल तथा राधा स्वरूपा गोपियों के रूप में नारियां होती हैं। उनके दान लीला के प्रसंग जवाब सवाल फड़काव्य के ही रूप हैं। अस्तु फड़ शब्द का भावार्थ–स्पर्धा, मुकाबला, जोड़, होड़ आदि से है। एक पार्टी जब कोई छंद गाती है तो फड़ में दूसरे पक्ष को उसी की टक्कर का राग गाना पड़ता है। इसी प्रकार एक से दूसरा पक्ष और अधिक श्रेष्ठ राग गाता है, और अंत में जोड़ न दे पाने वाला पक्ष हारा हुआ माना जाता है। फड़ साहित्य का रूप रीतिकाल से लेकर अद्यतन चला आ रहा है। बुन्देलखण्ड में फाग व ख्याल तथा शैर के रूपों में फड़ के रूप देखने को मिलते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में फड़ साहित्य के अखाड़े कई जगह स्थापित हो गये थे। फड़ गायकी के अखाड़ेबाज कवि व गायक इन मंडकिलयों में थे झांसी के कवीन्द्र माहौर मंडल तथा रंगो मंडल, मऊरानीपुर में विप्र घनस्याम दास का मंडल तथा छतरपुर व टोड़ी फतेहपुर में फड़ गायकी के प्रसिद्ध कलाकार रहे हैं। वर्तमान समय में फड़ काव्य की नाव डूबती सी लग रही है। फड़ साहित्य में बुदेलखंडी संस्कृति के सजीव दर्शन होते हैं। आजकल यत्र–तत्र, फड़–फाग के सम्मेलन सुनने को मिलते हैं। रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र, बी.डी.ओ. फिल्म आदि वैज्ञानिक साधनों के समाज में आ जाने से इस विधा पर करारी चोट लगी है। लोगों की रुचि रुझान फड़ साहित्य की ओर कम सी गयी है। फड़ काव्य में उच्च कोटि का समग्र ज्ञान परिलक्षित होता है जो सरलतम शैली में जनमानस तक पहुंचाया गया है।

बुन्देलखण्ड में फाग–फड़ काव्य की एक विशेष विधा है जनपद हमीरपुर के अंतर्गत राठ निवासी पं. गनेशी लाल बुधौलिया ने फड़ काव्य पर शोध प्रबंध प्रस्तुत कर डाक्ट्रेट उपाधि प्राप्त की है। उनके शोध प्रबंध में फड़ काव्य की काट छांट, जोड़ तोड़ व ऐसी कलात्मकता भी पूर्णरूपेण नहीं संजोयी गयी। फाग में फड़ ही प्रमुख है। झांझ व ढोलक की ताल पर नर्तकी (बेड़नी) थिरकती है। नगड़िया की कड़कड़ाहट में फड़ गायक अपने अपने सुरीले कंठ से स्वर मिलाकर गायन करते हैं। फड़ गायकी में भाव पक्ष की सबल प्रस्तुति के साथ छंदों में निहित कलात्मकता का महत्व अधिक होता है।

फड़ काव्य विधा के आशु कवि स्व० श्री राम सहाय कारीगर का नाम अग्रणी है। इनके पिता हीरालाल व दादा खुमान भी श्रेष्ठ लोककवि थे। श्री रामसहाय कारीगर ने फड़ काव्य की विधा को आजीवन जीवंत रखा तथा जीवन भर अखाड़ों में जाकर फड़ लगाया व सैकड़ों दंगल जीते। उनके समकालीन बुजुर्ग व गायक आज भी मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा करते हैं। ग्राम स्यावरी में जन्में श्री कारीगर भवन निर्माण में कन्नी के साथ साथ फड़ की रचना गढ़ते जाते हैं। सौभाग्य से स्व० श्री रामसहाय कारीगर लेखक के पूज्य पिता श्री थे। फागों में लेखक को जन्मजात रुचि होने के कारण उनकी फड़ की समस्त रचनाओं का नाम *'नई टकसार'* रखा है। श्री रामसहाय कारीगर की रचनाओं में फड़ जीतने का स्वाभाविक गुण है। क्यांकि उनकी प्रत्येक रचना की मूल भावना भी फड़ जीतने की रही। नि:संदेह रूप से यह कहा जा सकता है कि श्री कारीगर फड़ काव्य के बेजोड़ कवि थे। उनकी रचनाओं की वानगी यहां दी जा रही है। कोई सिंहावलोकन रचना, कोई अधरोष्ठ रचना कोई कूट पदावली से युक्त तो कोई गतागत तो कोई छेड़ तथागत। दो अंग, चौ अंग, अठंग, वारामासी, बहुपक्षीय, एकाक्षरी रचना उलटगतागत बड़ी बेजोड़ है। अलंकारों की कमी नहीं है। उनका समस्त फड़ काव्य ललित तथा श्रुति माधुर्य गुण सम्पन्न है। फड़ काव्य को दृष्टिगत रखते हुये उन्होंने समस्त रामचरित को 'प' वर्ग निकालकर (अधरोष्ठ) रूप में रच डाला है। पूरा आल्हखंड भी अधरोष्ठ लिखा है। सम्प्रति स्वरूप अधरोष्ठ रचना की वानगी देखिये –

श्री शारदा आनके, कर कंठन स्थान।
ये जननी हरि के चरित, करन चहत कछु गान।।
अज्ञान जान जननी दै जन को ज्ञाना।
दै जोर कड़ी छंद, शैर सुनें सुजाना।।
राजा टैक धनुष की ठानें सीता जी के लानें।
○○ ○○ ○○

उलट गतागत का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

दोउ रूखन पटियां परीं, बिंदिया दमकै बीच।
चबी विरी मुख पान की दोउ अधर रईं सींच।।
चसी बांय में ऐसी–सींये कोउ न जैसी।
सीजै यार देख कें कइयक सीने घाव करेसी।।
सीरे बोल बोलतीं हंसकें, लगन लगत जे देसी।
सीदे सादे 'राम सहाये'; लगतीं रजऊ गरेसी।

(बीच का उल्टा–चबी अंत का प्रत्येक शब्द उल्टा कर दूसरा चरणारंभ है।)

फड़ काव्य में काट छांट व कलात्मकता के साथ भाव सामर्थ्य भी उत्तम होना चाहिए। यही श्रेष्ठ रचना की कसौटी है। रामसहाय कारीगर की रचनाओं में भाव कुचल नहीं पाया है।

आल्हखंड की एक सिंहाविलोकन रचना की बानगी देखिये।

जागन जोधा बांकुरौ, मरो समर में आज।
आज करन रन को चला, आला सुत इंदै राज।।
जे दल इंदैराज के चाले चाले लैके भाले।
भाले लै जोधा मजबूत, जिनके बल कौ नइयां कूत,
संगै हते साठ रजपूत — रन में गरजे।
गरजत चला सूर बजरंग,
सेना सुभट सूरमा संग,
मानों झूमत जात मतंग—कहना लरजे।।

इस प्रकार भाव प्रबलता, आलंकारिकता तथा सिंहाविलोकनी रचना में चरणों की पूर्ति साधारण रचना से श्रेष्ठता सिद्ध करती है। विपक्ष द्वारा इसी प्रकार की रचना प्रस्तुत न कर सकने पर हार मानना पड़ती थी। एक कूट पदावली की फड़ काव्य की रचना देखिये—

खगपत पत के दरस बिन, तलफत हूँ दिन रैन।
रैन नहीं काटे कटे, बिरहा मारै बैन।।
बैना खगपत पत ना आये आये रितपत छाये।
छाये दसऊ दिसन में आली, हमखां छोड़ गये बनमाली
रग रग रैन बसंती साली—कैसो करिये
कैसो करिये मोरी गुइयां, आये सत्त वृषन में नइयां,
दीनें दुःख धनुष्टन मइयां — धीरज धरिये।
उड़ान—धीरज धरिये कहां लौ मदन भाव लिपटाये।
आये फागुन ये सखी। विरहा जोर जनाये।।

इस प्रकार कूट पदावली में सिंहावलोकन छंद का मार्मिक विरह वर्णन प्रशंसनीय है।

हिन्दी साहित्य में आचार्य केशव दास को कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है। उनका एक सवैया उलट गतागत का अनौखा उदाहरण है जिसे उल्टे प्रकार से पढ़ने पर उच्चारण वही निकलता है जो सीधे पढ़ने पर —

''मा सम सोम सजै बन बीन, नवीन बजै सम सोम समा।
मार लता निवना बनहार, रहा न बना वनि ताल रमा।।
माल बनी बलि केशवदास सदा बस केलिबनी बलमा।''

लोककवि राम सहाय के फड़ काव्य में भी उक्त प्रकार की रचनायें देखने को मिलती हैं। यथा —

'नैना कारे करे काना नें' तथा
'नेकी कान आन का कीनै नेही सर रस हीनें।'

इसी प्रकार की एक अन्य रचना देखिये — अंगद को रावण के पास दूत बनाकर समझाने का प्रसंग है —

कै आ सिख खिसआकें जा जा कैं ना मना मना कें।।

एक रचना में सुन्दर यमक अलंकार व सुंदर भाव बोध है—

''अंसुवा ऊदल बिन ढड़कावें, ऊदल विकल कहावै।
ऊ दल में भरटि पर जें, जब ऊदल आ जावें।।''

इस प्रकार फड़ों को जीतकर ही आना उनकी भीष्म प्रतिज्ञा रहती है। उनकी वेदान्त पर प्रश्नों की झड़ी देखिये —

सायर से अरजी करूं, फाग इतै दो छेड़।
तनक बात निनवार दो, बीज बड़ो कै पेड़।।
तत्त पांच जब नई हते, नहीं चंद्रमा भान।
कौन ठौर किस जगां पै रात हते भगवान।।
आदि नहीं उर अंत नई जे सुनने में आय।
सुनतन अचरज होत है, जइयो ज्ञान लखाय।।
धरन और आकाश नहीं था कासे दये बनाकें।
न्याई पै धरकें सकल पीटत लोव लुहार।
न्याई पीटी काय पै, जाकौ करौ विचार।।
संसी जेठी है कै न्याई, कै घन देव बताकें।

उनकी अनेक रचनायें दो अंग, चौ अंग व अउंग भी हैं। एक अठंग रचना देखिये जिसमें आठ 'क' एक चरण में हैं —
टेक : कर कें करत जनक जी टीका कनक थार हर दीका।।
एक रचना एकाक्षरी का उद्धरण —

नानी नान नुन्नौ नन्नी ना, नन्नी नान नुनी ना।
नन्नू ना नों नन्ने नै नै नें नें नुनै ननी ना।।

विषय विस्तार की दृष्टि से इस लघु लेख में राम सहाय कारीगर की 'नई टकसार' को स्पष्ट करना असंभव है। फड़ काव्य की बुझतीज्योति को पुनः प्रज्वलित करने हेतु फड़ों का आयोजन करना नितांत आवश्यक है। उनके समस्त काव्य ग्रंथ माला को लेखक प्रानों से लगाये हुये है। ब्रिटिश काल में सन १९३१ में जमीदारों व कुशासन के खिलाफ कवि ने रचना प्रकाशित कराई जिसके परिणाम स्वरूप डेड़ सौ बीघा जमीन से हाथ धोना पड़ा।

उनकी फाग मन मोहन भाग १ अंग्रेजी राज में १९३१ ई. में श्री राम प्रेस स्यावरी से प्रकाशित हुई तथा मनमोहन भाग—२ सन् १९५८ में प्रकाशित हुई। शेष लगभग ३०० रचनायें उनकी पाण्डुलिपि में सुरक्षित हैं। अनेक शोधार्थी उन्हें देखकर लाभ उठाते हैं। उन्होंने अपना सारा जीवन फड़ काव्य के सृजन व गायकी में लगा दिया। डॉ. सियाराम शरण शर्मा ने उन्हें — ''फड़ काव्य में सर्वाधिक रूचि थी। इन्होंने सैकड़ों दंगलों में विजय प्राप्त की।।''(दैनिक जागरण मार्च १२ सन ७९ ई.)

अंग्रेजी राज में आनरेरी मजिस्ट्रेट रहे श्री गुरुदयाल जी श्रीवास्तव ने उनके विषय में कहा है — 'यद्यपि वे अधिक शिक्षित नहीं थे पर जिनको उनकी रचनाओं को सुनने का मौका मिला करता था वे उनकी सूझबूझ और बुन्देलखंडी भाषा के शब्द आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थें। लेखक उनके इस अलौकिक गुण का प्रसंशक रहा है।'

बुन्देलखण्ड के बुन्देली साहित्य के मनीषों कन्हैया लाल शर्मा कलश तथा मोतीलाल त्रिपाठी अशांत नेभी अपने ग्रंथों में उनके कृतित्व की भूरि भूरि प्रशंसा की है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि फड़ काव्य के सृजन का हास हो रहा है और फड़ों के आयोजन नगण्य हैं। इस विधा को सजीव रखने की महती आवश्यकता है। □

— प्रवक्ता, स्यावरी, झांसी, उ.प्र.

अमान सिंह गोटिया (तालुकेदार)

– डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

कुछ पुरानी पुस्तकें देख रहा था उसमें अचानक जबलपुर के श्री अमानसिंह गोटिया की पुस्तक 'वीणा रस मंजरी' पर दृष्टि पड़ी। स्थानीय विधि महाविद्यालय के महर्षि विश्वनाथ सिंह पुस्तकालय में कई ऐसी जिल्दें हैं जिनमें एक से अधिक पुस्तकें बंधी हुई हैं। ये पुस्तकें पहिले छतरपुर के महाराजा साहब के पुस्तकालय में थीं, अब मोतीलाल विधि महाविद्यालय के ग्रंथालय में पहुंच गई हैं। यह ग्रंथालय महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के नाम पर है। जबलपुर के साथ मेरे आत्मीय संबंध हैं, अत: पुस्तक को उत्सुकता से देखा। एक कारण यह भी था कि पिछले दिनों जबलपुर के दो ग्रंथ देखने को मिले थे जिसमें ज्बलपुर की काव्य यात्रा एवं साहित्यिक प्रदेय को संकलित किया गया था किन्तु उन दोनों ग्रंथों में यह नाम नहीं था। हिन्दी साहित्येतिहास के ग्रंथों में भी इसकी चर्चा नहीं है। स्वभावत: मैंने पूरी पुस्तक ध्यान से पढ़ी।

श्री अमान सिंह गोटिया का जन्म आज से लगभग १४० वर्ष पूर्व गढ़ा जबलपुर में हुआ था। गढ़ा पहले गोंड़ नरेशों का निवास स्थान था, अब जबलपुर शहर का एक भाग है। श्री गोटिया के जन्म–वर्ष की जानकारी उनकी पुस्तक 'वीणा रस–मंजरी' में दिये गये विवरण से ही होती है। इस पुस्तक का प्रकाशन ११५ वर्ष पूर्व भारत जीवन प्रेस से सन् १८८७ में हुआ था। इसी पुस्तक के प्रारंभ में स्वयं उन्होंने लिखा है कि उनकी अवस्था इस पुस्तक के प्रकाशन के समय २५ वर्ष की है। यह उनकी दूसरी पुस्तक है। इसके पूर्व उनकी एक मदनमंजरी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी उसका विषय विवरण ज्ञात नहीं हो सका। वे लिखते हैं –

......हे प्यारे रसिक पाठक।

यह इस दास की दूसरी पुस्तक है। प्रथम मदन–मंजरी थी। अब इस दास की अवस्था २५ वर्ष की हुई। बालकपन में ७ वर्ष काशी में विद्योपार्जन हेतु रहा। अब इस गृहस्थी के मार्ग में पड़ा हूँ। मेरा अभिप्राय इस छोटी सी पुस्तक के रचने का यह है कि रसिकजन इसको एक बार पढ़कर श्री राधाकृष्ण के चरणों में मन लगावैं और इस दास के श्रम को सुफल करें।

अधिक शुभम्।

अमान सिंह गोटिया गढ़ा जबलपुर,सी.पी.

पुस्तक में उनके नाम के आगे 'तालुकेदार' शब्द भी जोड़ा गया है, इससे अनुमान होता है कि वे गढ़ा के गोंडवंश की परम्परा से जुड़े रहे हैं जो वहां के शासक थे। ऐसी प्रतींत होता है कि बनारस में रहकर उन्होंने हिन्दी, संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू का भी ज्ञान प्राप्त किया था क्योंकि इस पुस्तक में उर्दू की शब्दावली और छन्दों का भी पर्याप्त प्रयोग है। पुस्तक के समर्पण और पदों में प्रयुक्त भाषा से लगता है कि वे अत्यन्त विनम्र और भक्त–प्रकृति के व्यक्ति थे। समर्पण में वे लिखते हैं – 'मेरे में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि इस छोटी सी पुस्तक को लिखूँ। ... मैं महामंद हूँ, कपटी हूँ, कुटिल हूँ, दीन हूँ, मलीन हूँ...' आदि।

पुस्तक के प्रारंभ में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

उत्तर दिश रेवा निकट, ग्राम गढ़ा सुखधाम।
गुरु माता भ्राता सकल, कह अमानसिंह नाम।।

पुस्तक के अन्त में पुस्तक का रचनाकाल एवं स्थान का उल्लेख किया गया है –

संवत् उनइस्से अधिक, तैंतालिस की साल।
पूस मास ऋतु शिशिर में, ग्रंथ रच्यो यह हाल।
भृगु क्षेत्र रेवा निकट, ग्राम बंधा सुखधाम।
बैठ वहाँ पूरन किया, बरणत सिंह अमान।

संवत् १९४३ वि. (सन् १८८६ ई.) में इस ग्रंथ की रचना हुई और सन् १८८७ ई. में प्रकाशन हुआ।

पुस्तक में कुल ४४ पृश्ठ हैं। सर्वप्रथम एक श्लोक में मंगलाचरण, फिर ५ दोहों में गणपति वंदना। अधिकांश भक्तिपरक विनय पद। प्रभु की महिमा और अपनी दलिता का बखान। हर पद में अपने नाम अमान या अमान सिंह की छाप है। प्रभु से विनय का एक पद इस प्रकार है –

हे प्रभु सब विधि से मैं हारो।
पूजा पाठ कछु नहीं जानौं जाको करो सहारो।
निश दिन छल पाखंड करत हूँ तुमहीं अब निरधारो।
हो कृपाल करुणामय सागर धर मम बाँह उतारो।
अमानसिंह प्रभु त्राहि–त्राहि है कैसऊ कै अब तारो।।

अमानसिंह ने किसी देवी–देवता का विरोध तो नहीं किया पर वे मुख्यत: राधा कृष्ण के उपासक हैं। अपने समर्पण में उन्होंने इस ओर संकेत भी किया है। एक दादरा में मानवती राधा को कृष्ण द्वारा मनाने का चित्रण इस प्रकार किया गया है–

राधा प्यारी कौन सी चूक भई।
भूषन बसन उतार लाड़ली काहे मौन गही।
बोलत नहिं कब से मैं ठाढ़ो कर है रीत नई।
हा हा करत हों प्यारी श्यामा विनती मैं नमई।
अमानसिंह तज मान उठी प्रिय श्याम को अंक लई।

पुस्तक में विभिन्न पदों एवं राग–रागिनियों का प्रयोग किया गया है पद, ठुमरी, भजन, मलार, हिंडोल, विहाग, परज, गजल, गजल, तरजीह बंद, दोहा, होरी, लावनी, बरसात, चंचरीक, प्रभाती, खेमटा, पीलू, दादरा, कजरी खेमटा देश माननी फाग आदि। मंगलाचरण श्लोक और गणेशवन्दना के पद इस प्रकार हैं –

मंगलाचरण –

तीब्रैस्तिग्मरुचैः करैः परिचितां सेकुं कपोलस्थलीम्।
नीराणां निकरं करेण हरता तुच्छीकृते वारिधौ।
मेनाकं समदीक्ष्य पंक पतितं शम्बूक शंकालु षौ।
हेरम्बस्य पुनातु दन्त शिखर व्यापार लीला रसः।।

गणेशवन्दना –

हे गिरजासुत आनन्द कन्द।
एक दंत शुभ सदन वदन तुव शैलसुता पति नन्द।
लम्बोदर गुण बुध के सागर हे हे कुल के चन्द।
प्रथम नाम तव सुमरण करके करत ग्रंथ आरंभ।
अमान सिंह निज दास समझ के काटहु भव के फन्द।

जैसा कि मैंने पूर्व में ही कहा कि उन्हें ब्रजभाषा हिन्दी, संस्कृत और उर्दू भाषा का ही नहीं उनको छन्दों का भी ज्ञान था तभी तो उन्होंने भावानुसार छन्द और भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा शुद्ध और भक्ति–भावना से पूर्ण है। जहाँ उन्होंने श्रृंगार भाव का चित्रण किया है वहाँ भी आराध्य के प्रति समर्पण ही प्रमुख है। यहाँ कतिपय उदाहरण देकर उनके रचना–संसार को समझना उचित होगा। इनमें कवि के भाव, रूप–रंग, प्रकृति, भाषा–शैली आदि की थोड़ी–थोड़ी बानगी मिल सकेगी –

अनोखे पिया चंचल चितवन तोर।
ठमुरी–भूम गिरत मग लोट उठत ना हेरत जाकी ओर।
खंजन मीन रसीले मृग से चंचलता चितचोर
अनियारे कजरारे बांके सुरमा सुन्दर कोर।
अमानसिंह हिय बेधत हमरो नैना नवल किशोर।

परज– मेरो मिल के प्रीतम छूटा रे।
कसके मसक मरोर कुचन को जोबन रस उन लूटा रे।
ले भर अंक निशंक लली की अधरन को रस चूसा रे।
उर में लाय छकाय प्रेम रस मनमानी सुख लूटा रे।
गई इतने खुल नींद निगौड़ी स्वप्न अमान ये झूठा रे।

कजरी–शीतल सावन का महिनवां घरवां नाहीं आये श्याम।
सावन आवन अधिक सुहावने बिहसावन तन काम।
प्रीतम प्यारे अजहूँ न आये ढूँढ़ फिरी सब धाम।
अमान कहत भगवान कुंवरि संग जाय मिले घनश्याम।

होरी– कैसी करौं ऋतु बैरिन आई।
बन बन बागन कोयल कूकत बिरहा मदन बढ़ाई।
बोलत कोकिल डार कदम्बन प्रिय बिनु कछु न सुहाई।
रैन सोचत सब जाई।

लावनी–हे कृपासिंधु भगवान लाज रख मोरी।
व्याकुल मनमोहन समझ करत क्यों देरी।
हिरणाकुश बैरी विद्या हेतु पठायो।
मोहि राम नाम छुड़वावन जतन करायो।
जब मानो नहिं मैं नाथ पहाड़ चढ़ायो।
मोहि बाँधि वहां ते पृथ्वी बीच गिरायो।
मैं गयो सभा में भृकुटी कस कस हेरी...। आदि

गजल (तखल्लुस अमान)
न आती नींद है मुझको न सोता हूँ न जगता हूँ।
फकत उस माह से बुत का हमेशः दम मैं भरता हूँ।
तुझे देखा है जिस दिन से तड़पता नीम बिसमिल सा।
तुम्हारे रूबरू कह दूँ कि बोसा बिन मैं मरता हूँ।
परी रू ज़ुलुफ़ तेरी बाम से सीने पे जो आई।
उसा इस मोम से दिल को उसी की याद करता हूँ।
हजारों कर दिये जख़्मी कि तूने तेंगं अबरू से।
अमाने याद रख दिल में मैं तेरा ध्यान करता हूँ।।

'मदन मंजरी' के बारे में ज्ञात हुआ है कि यह एक नाटक जो भारतेन्दु जी के 'विद्यासुन्दर' के तर्ज पर लिखा गया था, जिसका प्रकाशन सन् १८८४ में भारत जीवन प्रेस, वाराणसी से ही हुआ था जहाँ से तीन वर्ष बाद सन् १८८७ में उनकी दूसरी पुस्तक 'वीणा रस मंजरी' का प्रकाशन हुआ। इस नाटक का मंचन जबलपुर में भारतेन्दु जी की उपस्थिति में ही हुआ था। गोटिया जी विजयराघवगढ़ के राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह के समकालीन थे। दोनों ही वाराणसी में समकालीन विद्यार्थी थे। सहपाठी होने के नाते दोनों की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी से गहरी मित्रता हो गई, दोनों उनके अंतरंग साहित्यिक मित्र बन गये। भारतेन्दु जी की प्रेरणा से ही गोटिया जी ने लिखना प्रारंभ किया। मित्रतावश भारतेन्दु जी तीन बार जबलपुर आये थे। उनकी जबलपुर की अंतिम यात्रा सन् १८८५ में हुई थी। उन्होंने यहां की चमड़ी जलाने वाली भीषण गर्मी के बारे में भी उल्लेख कियाथा। यह जानकारी डॉ. महेशचन्द्र चौबे की पुस्तक के एक अंश से हुई। चौबे जी की जानकारी के अनुसार श्री गोटिया का जन्म सन् १८६० में गढ़ा (जबलपुर) के एक संस्कारी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह भी पता चला कि उनके पौत्र प्रपौत्र विद्यमान हैं पर उन्हें उनके बारे में कोई जानकारी नहीं है।

२५ वर्ष की आयु में 'मदन मंजरी' नाटक और 'वीणा रस मंजरी' काव्य संग्रह के रचयिता श्री अमानसिंह गोटिया निश्चित रूप से एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी रचनाकार थे। उन्होंने बाद में और ग्रंथों की भी रचना की होगी जिनकी खोज करना हम सभी का दायित्व है। यदि किन्हीं महानुभावों को कोई जानकारी हो तो सूचित करने का कष्ट करें।

– एम.आई.जी.–१२, चौबे कॉलोनी, छतरपुर □

ईसुरी की फागों के पाठ – निर्धारण की चुनौती

– घनश्याम कश्यप

भारत के प्राचीन साहित्य में एक विचित्र प्रवृत्ति देखी जाती है कि विद्वान लोग दूसरों की कृतियों में कुछ न कुछ जोड़ते रहे हैं। शास्त्र–पुराण हों या संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं के महाकवियों की हस्तलिखित पोथियां, सभी में लोग मिलावट करने से नहीं चूकते। ऐसी पोथियों के सहारे अशुद्ध पाठ वाली पुस्तकें छपी हैं। तभी तो 'जय' महाकाव्य बीस हजार श्लोकों से बढ़कर सवा लाख श्लोकों का 'महाभारत' बना। हिन्दी में कबीर के विकृत पद चल पड़े, जिन में 'कहत कबीर सुनौ भई साधो' की छाप है। 'सूरसागर' को सवालाख पदों का गड़बड़ ग्रंथ बना दिया गया और तुलसी के 'रामचरित मानस' में 'लवकुश कांड', 'अहिरावन कथा' जैसे क्षेपक छपे हुए मिलते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में विद्वानों ने पुरानी पोथियाँ खोजकर, सूरसागर, मानस पद्मावत जैसे प्रामाणिक पाठों के मानक ग्रंथ छापे और साहित्य जगत में प्रचारित किये। पाठ–निर्धारण का काम तब बहुत कठिन होता है, जब साहित्यकार के हाथ की लिखी पोथी उपलब्ध न हो। यदि रचना लोक गायकों के कंठों में तैरती, स्मृति के थपेड़े खाती बदलती बिगड़ती रहीं हो, तब ऐसे लोक साहित्य का पाठ निर्धारित करना बहुत ही मुश्किल काम होता है। महाकवि 'ईसुरी' जैसे लोक–कवियों के साथ ऐसी मुश्किलें बहुत पेश आती हैं। अद्यतन शोधों के अनुसार ईसुरी सन् १८४१ में जन्मे थे। बुन्देली फाग गायकों के सिरमौर ईसुरी लगभग १६० वर्ष पहले हुए। कई दशकों तक कवि की चौकड़िया फागें लोक गायक गाते–सुनाते रहे। प्रतिभा के धनी ईसुरी आशु कवि थे, पर पढ़े–लिखे कम थे। अत: उनके हाथ का लिखा कोई फाग–संग्रह नहीं मिलता। कहते हैं छतरपुर नरेश ने ठठेवरा गाँव के नन्ने भइया से कवि की पाँच हजार फागों का संग्रह तैयार कराया था। बुधवारा गांव के जगन्नाथ गुप्ता ने भी उनकी हजारों फागों का संग्रह तैयार किया था। परन्तु ऐसे संग्रहों का भी कहीं अता–पता नहीं है। इन फाग संकलनों की कहानी भी सूरदास के सवालक्ष्य पदों जैसी ही है।

टीकमगढ़ नरेश वीरसिंह जू देव को ईसुरी प्रिय थे। टीकमगढ़ की लोक साहित्य परिषद् से 'मुधकर' पत्रिका में, उनकी ऐसी फागें छपुवाते रहते थे। परिषद् में कार्यरत बुन्देली के विद्वान कृष्णानंद गुप्त ने एक–दो फाग संग्रह छपवाए थे। चाहते हुए भी मुझे गुप्त जी के संग्रह देखने को न मिले। सन् १९५१ में जेरा गांव के दुर्गा प्रसाद पाण्डे से एक बाजारू फाग संग्रह देखने को मिला। उस पर ईसुरी भक्त किसी लोक गायक का यह दोहा छपा था –

रामयन तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कालिकाल में, कही ईसरी फाग।।

इस दोहे से मैं ईसुरी की फागों की ओर आकृष्ट हुआ। पांडेजी की बाजारू किताब में छपी मैने कवि की २५–३० फागें पढ़ीं, तो उनके काव्य सौन्दर्य पर मैं मुग्ध हो गया। कई फागें मुझे याद हो गई और जब तब साहित्य गोष्ठियों में उन्हें सुनाता तो ग्वालियर के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय आनंद मिश्र बुन्देलखण्ड से कवि की फागें जुटाने लगे। सातवें दशक में मुझे श्रीराम प्रेस झांसी से छपे छतरपुर के डॉ. गौरीशंकर द्विवेदी का 'ईसुरी प्रकाश' देखने को मिला। उसमें ३५० फागें छपी थीं। फिर १९५९ में लगभग ४५० फागों का 'ईसुरी प्रकाश' का दूसरा संस्करण मैंने झांसी से प्राप्त किया। संग्रह के भूमिका भाग में उपन्यासकार बाबू वृन्दावन लाल वर्मा की टिप्पणी थी कि ईसुरी की ५०–६० फागों का पहला संग्रह सन् १९०५ में छपा था। भूमिका में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा था 'संग्रह से मन में संतोष नहीं होता'। महाकवि की सभी रचनाएं पाठकों के सामने आनी चाहिए। डॉ द्विवेदी के ईसुरी प्रकाश के दोनों संस्करणों की फागों का अनुशीलन करने पर मैंने पाया, कि पुस्तकों में छपाई और संपादन में भारी भूलें हुई हैं। यह बात कुछ उदाहरणों से समझी जाए।

संग्रह में फागों की संख्या बढ़ाने के लिए एक ही फाग से दो फागें बना देने की यह बाजीगरी देखें। पंक्तियों की हेराफेरी कर नई फाग गढ़ने का कौशल समझें –

अटकर प्रीत करे सें जानें। कए सें झूंठी मानें।
कातन कछु कछु कै आवै, रअत न बुद्धि ठिकाने।
दावत देख दूर से नकुआ, लासुन घाईं बसाने।
'ईसुर' कात कोउ ना बिगरौ, हम बेतरां नसाने।

(फाग क्र ३२६)

अब दूसरी फाग की संरचना पर गौर करें –

करकें प्रीत करै सो जाने। कात की कोउ न माने।।
दावन लगे दूर से नकुवा, लासुन भरे बसाने।
काने कछू कछू कै आवे, ना रइ बुद्धि ठिकाने।
बिगरे कैउ अदिन से 'ईसुर', हम बेतराँ नसाने।।

ईसुरी की काव्य–भाषा ठेठ बुन्देली थी, जो झांसी और सागर डिवीजनों के ग्रामीण बोलते हैं। डेढ़ सौ बरस पहले, जब आवागमन के तेज साधन नहीं थे, ईसुरी की फागों की भाषा बहुत कुछ स्थिर थी। उनकी टकसाली बोली और उसकी शब्दावली में या तो लोक गायकों ने तोड़–मरोड़ कर दी थी या बुन्देली से अपरिचय के कारण छपाई वालों ने शब्दों को विकृत

किया अथवा संपादन में ही गलतियां हुई हों। जो भी हुआ हो 'ईसुर। प्रकाश' में वर्तनी की त्रुटियां पाई जाती हैं, जिनसे अर्थ का अनर्थ हुआ और फाग–सौन्दर्य को क्षति पहुंची। शब्दों की गलतियों के निम्नलिखित उदाहरण देखें इन पंक्तियों में –

१. *आपुन आय <u>उसी में</u> ठाढ़े, झपट परी मैं पइयाँ।*
२. *देखो रजऊ खों पटियाँ पारें, सिर <u>सबयार</u> उधारें।*
३. *<u>बाँकन</u> लगे काग महलन में, चंबोदरें परेबा।*
४. *कात 'ईसुरी' ई गोकुल में, जदुबंसी <u>उमदाने</u>।*
५. *मन आनंद गईं महलन में, सिब की मूरत <u>धारी</u>।*

रेखांकित शब्द अशुद्ध हैं। इनकी शुद्ध बुन्देली वर्तनी और अर्थ नीचे दिए गए हैं –

उसीसें – सिरहाने, सबहार–सबतरफ, बासन लगे–रहने लगे, उबराने – उपद्रव करने लगे, ढारी – जल चढ़ाया।

यहां रेखांकित शु० शब्द यदि ऊपर की पांच पंक्तियों में क्रमशः रख दिए जाएं तो हर पंक्ति का भाव स्पष्ट हो जाएगा। ईसुरी का शब्द–सामर्थ्य और पद–विन्यास सधा होता था। कवि की सहज भाव–प्रेषणीयता खूब चर्चित रही है। अब एक फाग की ये गड़बड़ पंक्तियां और देखिए –

हो गऔ फुनगुनियां से फोरा।
अंगुरन धरैं गदेरी सूजी, मिथुल गए सब फोरा।
'ईसुर' अबकें दुक्ख देह भौ, ऐसौ परौ बिलोरा।।

दूसरी पंक्ति में 'अंगुरन' शब्द उंगलियों के लिए आया है। बुन्देली में उँगली का एक वचन होता है 'उँगरिया' और बहुवचन है 'उँगरियाँ'। ऐसे ही 'गदेरी' शब्द की जगह होता है 'गदिया'। मुझे तो लगता है कि गदिया और हथेली की वर्णसंकर सन्तान है गदेरी। फिर पोरा शब्द की जगह 'फोरा' शब्द रखा गया और उसे मसल डाला। शब्द–संपदा के धनी ईसुरी फाग की तुकों में पुनरुक्ति नहीं करते। फोरा तो उनकी ध्रुव पंक्ति में आ चुका था, अतः उसे ये दूसरी पंक्ति के अंत में क्यों रखते?

मेरे पास मेरे गाँव के सीताराम रावत (जेरोंन गांव) से प्राप्त २०० फागों की एक हस्तलिखित पोथी थी। कविवर आनंद मिश्र से प्राप्त हस्तलिखित फागें भी थीं। इन सभी फागों से मिलानकर द्विवेदी जी की फागों को जब देखा–परखा, तो उक्त फाग का निम्नलिखित पाठ मुझे ठीक लगा –

हो गऔ फुनगुनियाँ से फोरा। पैलें हतौ ददोरा।
एक के ऐंगर भयो दूसरौ, दो कैं भए कई जोरा।
गदिया तरें, उँगरियाँ सूजीं, सूज गए सब पोरा।
दवा होत रई दर्द गयौ ना, एक मास दिन सोरा।
फोरा से भओ खता 'ईसुरी', जो रऔ आन बिलोरा।

इस फाग में भावान्विति की पूर्णता, रोग के विकास का सजीव चित्र, भाषा की प्रंजलता आदि हैं। छपे फाग संग्रहों में, ईसुरी के समकालीन फागकार गंगाधर व्यास की भी फागें मिली हुइ थी। गंगाधर व्यास ईसुरी से ज्यादा पढ़े लिखे थे और उन पर रीति कावीन कविता की शास्त्रीयता की छाप थी। ईसुरी सर्वथा कवि थे। उन पर सूर तुलसी जैसे महाकवियों का भी प्रभाव न था। तभी तो उन्होंने राम और कृष्ण विषयक बिलकुल नए तरह की फागें लिखी हैं। विरहिणी राधा का विषण्ण, किन्तु अलमस्त जोगनी का यह चित्र कृष्ण काव्य में शायद ही कहीं मिले। उदाहरण देखे उसके गतिशील रूप का –

जोगिन भई राधका तोरी। बरस बीस की गोरी।।
राख लगाएं, लटें छुटकाएं, डरी कँदा पै झोरी।।
गावै, बजत चमीटा चुटकी, चमक रई ना चोरी।
फेरी देत फिरत फिरकी सी, ब्रजवासिन की खोरी।
उन गुपाल सें कइयौ 'ईसुर', जै गुपाल की मोरी।

ऐसा गत्यात्मक बिम्ब, भावों और विचारों की आदर्श अन्विति, भाषा की चित्रात्मका और नाद–सौन्दर्य ईसुरी के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनकी उक्तियों में ऐसे गुण सहज ही मिलते हैं जो निम्नलिखित उदाहरणों से भी स्पष्ट हैं–

– सांसी कै कें <u>हाथ हलादो</u>। – ईसुर करें गरे कौ <u>कठला</u>।
– कर दए <u>प्रान दरारे</u>। – होत जात <u>अरौंआ</u>।
– ईसुर हंस <u>उड़न की बेरा</u>, <u>झुक आई अँदियारी</u>।

ईसुरी के रचे इन शब्द–चित्रों, लाक्षणिक पद–बंधों और भाव व्यंजनों में पाठों की गड़बड़ भारी क्षति पहुँचा देती है। लापरवाही से तैयार किए फाग संग्रहों के गलत शब्द–विन्यास और वाक्यों या वाक्यांशों के अनर्गल प्रयोग, फागों के रस को मटियामेट न करें और काव्य सौन्दर्य को बदरंग न बनाए, इसलिए मैंने नए सिरे से फागों का संग्रह करने में निम्नलिखित मानक या निकष तय किए थे।

१. नए संकलन में ईसुरी का टकसाली, ठेठ ग्रामीण बुन्देली का सहज रूप सुरक्षित रहे।

२. कवि की अभिव्यक्ति की सहज स्वाभाविकता से फागों के भाव और विचार पुष्ट रहें। फागों में असंबद्ध पंक्तियां या दूसरों की फागों के अंश न मिल जाएं।

३. चौकड़ियां फागों की ध्रुव पंक्ति का पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध के अंश से समर्थित होता है तथा अन्य पंक्तियां मूल भाव को पुष्ट करती चलती हैं। अंतिम पंक्ति में आवृत्ति मूलक लोक विश्रुत कथन, कोई कहावत या बुन्देली मुहावरा निबद्ध रहता है। जिसमें पूरी फाग का उत्स रहता है।

४. रचना में भाव तथा विचार की एकता, उक्ति का पैनापन, जाघव और कसावट 'आदर्श अन्विति' को प्रस्तुत करने वाले हों। मार्मिकता, मौलिकता और प्रभावोत्पादकता ईसुरी की विशेषताएँ हैं। जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है।

५. ईसुरी चौकड़ियां फागों के प्रवर्तक थे जिनकी हर पंक्ति में १६–१२ मात्राओं का नरेन्द्र, ललित, या सार छंद होता है। कवि की रचना में मात्रा–दोष नहीं रहता।

६. यद्यपि फागों में रूबाई की तरह श्रृंगार रस की प्रमुखता

रहती है, किन्तु उनमें विषय वैविध्य और दार्शनिकता के साथ लोकजीवन की पहचान रहती है। ये फागें मुक्तक काव्य के उत्तम उदाहरण हैं।

७. कवि तुकों के निर्वाह में सिद्ध हस्त है। उनमें शब्दों की तोड़–मरोड़ या खीचतान न होकर सहज स्वाभाविकता रहती है।

संपादकों और संकलन करने वालों ने ऐसी बातों पर ध्यान दिया होता तो डॉ. द्विवेदी जैसे विद्वानों के संकलनों में ईसुरी की फागों के साथ न्याय होता। मैंने ऊपर कही बातों पर ध्यान देकर कवि की फागों का अनुशीलन किया और ५५० संस्करण १९८० में परिमल, इलाहाबाद से छपा और दूसरा संस्करण १९७७ ई. में इलाहाबाद से फिर प्रकाशित हुआ। साहित्य जगत ने इन संस्करणों का अच्छा स्वागत किया। स्व. ओंकार 'शरद' ने इलाहाबाद से लिखा – 'श्री घनश्याम कश्यप ने ईसुरी की फागें अर्थ सहित प्रस्तुत कर बहुत श्रम साध्य और महत्वपूर्ण कार्य किया।' जबलपुर के श्री सत्येन्द्र मिश्र ने टिप्पणी की थी– 'ईसुरी भारत में जन्म न लेकर किसी पाश्चात्य देश में साहित्य सृजन कर पाते, तो उनकी प्रतिभा का आकलन ठीक प्रकार किया जाता।' विश्व हिन्दी सम्मेलन, दिल्ली में चैकोस्लेविया के हिन्दी प्रेमी और कवि स्व. डा. आंदोलोन स्मैकस ने पुस्तक देख कर कहा था, 'बुन्देली के काव्य की यह पहली कृति मैं देख रहा हूँ। आपने खड़ी बोली में भावार्थ देकर मुझ जैसे विदेशी हिन्दी प्रेमियों का उपकार किया है। अब यह दुर्लभ ग्रंथ मैं आपको लौटाऊँगा नहीं।'

कवि की बुन्देली भाषा के सम्बन्ध में प्रसंगवश थोड़ी सी चर्चा हुई है, किन्तु बुन्देली और ईसुरी द्वारा उसके प्रयोग पर विचार करना अधिक उपयोगी होगा। जानकारों की राय है 'अमृतं प्राकृतकाव्यं' अर्थात् लोकभाषा या बोली का काव्य अमृत की तरह होता है। विद्यापति ने लिखा था – 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' अर्थात् स्थानीय बोली बहुत मीठी होती है। इसी से संस्कृतज्ञ राजपंडित होकर भी विद्यापति ने मैथिलि बोली में अपनी कविता लिखी थी। ईसुरी पढ़े–लिखे तो नहीं थे परन्तु बुन्देली बोली के पारखी प्रयोक्ता थे। उनकी भाषा में न कृत्रिमता थी न क्लिष्टता सर्वत्र सहजता और सादगी। उनके गिने चुने शब्दों के पदबंधों वाले छोटे–छोटे वाक्यों में गहरी व्यंजना और अर्थगर्भिता रहती थी। वे ग्रामीणों की आवृत्तिमूलक उक्तियों से अपनी फागों को सजाते थे। वे जब कहते 'काए कैकयी मैया?' तो यह पद बंध बहुआयामी टोह लेता हुआ, कैकेयी के अन्याय, कुटिलता, क्रूरता, स्वार्थपरता आदि की व्यंजना करता था। वे आवश्यकतानुसार मुहावरों और कहावतों का भी सटीक प्रयोग करते थे। ये बातें नीचे दी गई फाग की उन पंक्तियों से समझी जा सकती है –

वन खौं पठै दए दोउ भैया! काए कैकयी मैया।
पिता पठै सुरधाम, बोर दई, रघुबंसिन की नैया।।

ठेठ बुन्देली की उक्ति 'पठै दए' में जो बात है वह भेज देने या पहुँचा देने में कहाँ? डुबाने के बजाय 'बोर' देने में अधिक प्रेषणीयता है– अधिक ग्रामीण सहजता। यही बात 'नैया बोर' देने के सटीक मुहावरे में भी है।

'कोस कोस पै पानी बदलै, तीन कोस पै बानी' के अनुसार कवि की भाषा में क्षेत्रगत भिन्नता दिखाई देती है। कर्म और संप्रदान कारक 'को' के लिए कवि ने 'खों–खां–खइयां' शब्दों के प्रयोग किए हैं। ये 'लिखौ कृष्ण खों पाती', 'मोरी सब खां राधा वर की'; मोरी राम राम सब खइयाँ' जैसे वाक्यों में जहाँ–तहाँ खूब मिलते हैं। ईसुरी झांसी–सागर डिवीजनों के गाँवों में घूमते हुए फागें गाते थे। भिन्न भिन्न स्थानों पर ऐसे भिन्न प्रयोग प्रचलित हैं। क्रियापदों के प्रयोगों में भी ऐसी भिन्नता, पाई जाती है। उदाहरण देखें – 'कै दो आधी कै ना आबी', 'चलबू करे धरम कौ मारग'। सामान्य भविष्यत् के ये क्रिया पद खड़ी बोली में बनते हैं, 'आवै', 'चलें', आदि। संकलनकर्ता शब्द प्रयोगों की बारीकियों को न समझ 'हांसा परे आगले मेरे' रजउ नैन दुई तोरे'। इस पंक्ति में रेखांकित शब्दों के रूप होते हैं – हँसा, मोरे, दोइ। 'दुई' का प्रयोग पूर्वी हिन्दी में होता है, 'मेरे' रूप है खड़ी बोली का और 'हाँसा' तो गलत प्रयोग है ही। ये भूलें छपाई की भी हो सकती हैं। फिर भी क्या ईसुरी जैसे महान लोककवि की फागों को, इस लापरवाही से प्रस्तुत करना उचित कहा जाएगा? अब बुन्देली के इन दो शब्दों की वर्तनी पर भी ध्यान केन्द्रित कीजिए–

१. दोरें – द्वार पर (सब कोउ आवत दोरें)
२. दौरे – दौड़ कर (सब कोउ आवत दौरे)

अनुस्वार और एक मात्रा के प्रयोग मात्र से दोनों शब्दों के अर्थों में कैसी भिन्नता आ गई? इसीलिए भाषा की ऐसी बारीकियों पर ध्यान दिया जाना जरूरी होता है।

बुन्देली के अनेक देशज ठेठ ग्रामीण शब्द, मुहावरे, कहावतें और भाषिक प्रयोग ऐसे हैं, जो गैर बुन्देली पाठकों और श्रोताओं के लिए दुरूह होते हैं। ईसुरी ने उनका प्रयोग किया है। मैंने अपने संकलन नें पाद टिप्पणियों में उनके अर्थ दिए थे। इनके कुछ उदाहरण देखें –
ऐंगर = पास, निरोंना = प्रदर्शन की वस्तु, चमकना = शरमाना, घैरा करना = निंदा करना, रगदाई = ढेर, करया = कमर, मुंस = पति, खोरें = गलियाँ, बेर = बावड़ी आदि।
कुछ मुहावरे, कहावतें, भाषिक प्रयोग आदि और देखिए – कान धरी छेरी होना = काबू में रहना, साल का करौंटा लेना = समय पलट जाना, टउका टारना = काम करना, तरइयाँ भरना = आँसू आ जाना, नउत पेट खाँ घूँटे = अपनों का पक्ष करना, बदी का कूका देना = बुराई का ढोल पीटना, सेत पुतरिया फेरना = आँख की पुतली फिरना – मर जाना, हिआओ टूटना = शक्ति क्षीण होना; हाड़ खनकना = हड्डियां चटचटाना, सौ चोर की एक साव की = सौ सुनार की एक लुहार की आदि। ऐसी सैकड़ों पाद टिप्पणियाँ मैंने लिखीं, किन्तु कुछ साहित्यिक मित्रों ने सलाह दी कि इनके बदले फागों का भावार्थ दे देना

ज्यादा ठीक होगा। मैंने अपने संकलन पर फिर काम शुरू किया और फागों का भावानुवाद किया। यह काम समय साध्य तो था, किन्तु पाठ–निर्धारण जैसा कठिन नहीं था। भावानुवाद में दो समस्याएँ और आईं। पहली तो यह कि प्रतिभा के धनी ईसुरी जैसी लोकधर्मी मनोभूमि मुझ जैसे सामान्य अनुवादक के पास कहाँ थी? दूसरी समस्या थी अरौआ, चियारें, चबोरे, मजियाबी जैसे नाद सौन्दर्य पूर्ण शब्दों के हूबहू अनुवाद की। फिर भी मेरे खड़ी बोली के भावार्थ से कवि की फागें गैर–बुन्देली पाठकों के लिए बोधगम्य हुई और अनेक सज्जनों ने भावानुवाद को सराहा। अनुवाद में भाव–संप्रेषण की सीमा रहती है। कहाँ फागों की रसमयता और कहाँ खड़ी बोली का सपाटपन–रूखापन। लोक–भाषा में जोश रहता है और खड़ी बोली में व्याकरण की जकड़बंदी। इसे एक उदाहरण से समझा जाए। कवि की यह प्यारी फाग देखिये।

भौतक छोटी सी नन्दुलिया! लागी दैन बिंदुलिया।।
ऐसी निगन निगत लरकन में, डारें हात हतुलिया।।
छूटी नई लरम मुइयाँ तें, जा तोतली बतुलिया।।
'ईसुर' फिरत पान सौ खाएँ, मिस्सी लगी दँतुलिया।।

अब देखिए इस सरस फाग का खड़ी बोली में अनुवाद —

ननदी बहुत छोटी उम्र की है। वह बिंदी लगाने लगी है। लड़कों के साथ हाथों में हाथ डाले वह अनूठी चाल से चलती है। उसके कोमल मुँह से तोतली बोली अभी छूटी नहीं। देखो 'ईसुरी' दाँतों में मिस्सी रचाए वह ऐसी लगती है जैसे पान खाए फिरती हो।

बुन्देली के लोच और ललित्य से कवि ने फाग में ननदी का बचपन साकार कर दिया है। ननदी को 'नन्दुलिया', हाथ को 'हतुलिया' दाँतों को 'दँतुलिया' जैसी शब्द रचना में कवि जनित स्वतंत्रता का उपयोग कर कवि ने फाग में जो बाल रंग घोला है, वह खड़ी बोली के गद्य में बदरंग हो उठता है। हाथ चाहे बड़े का हो या बच्चे का खड़ी बोली में हाथ ही रहेगा, परन्तु बुन्देलखण्ड के लोग बच्चे के हाथ को प्यार से 'हतुलिया' कह देते हैं और बतुलिया, दँतुलिया आदि भी। ईसुरी ने भी यही किया। 'लिया' प्रत्यय वाणी सभी तुकों का कैसा सहज स्वाभाविक निर्वाह।

अन्त में पाठ निर्धारण संबंधी दो एक बातें और। कई बरस हुए छतरपुर में आयोजित 'बुन्देली संवाद' में ईसुरी की फागों के पाठ निर्धारण संबंधी कुछ विचार मैंने प्रस्तुत किए थे। वे 'ईसुरी विशेषांक' में छपे थे। मेरे आलेख पर छतरपुर से प्रकाशित 'मामुलिया' पत्रिका के तेरहवें अंक में कुछ प्रतिक्रियाएँ छपी थीं। बुन्देली बोली में लिखी कुँअर कृष्ण प्रताप सिंह की प्रतिक्रिया की प्रस्तुति के साथ यह लेख समाप्त करूंगा। श्री सिंह ने लिखा था — 'मामुलिया' कौ अंक ग्याराबारा पढ़ौ। पढ़तई दंग रै गऔ और अपनई आप मौ से निकर परौ — बारे घुल्ला का काने तोरी। सच्चऊँ सबई ने बड़ौ नौनो लिखौ है। न जाने काय मोखाँ सबई से उम्दा श्री घनश्याम कश्यप जू कौ 'पाठ–निर्धारण' बारौ लेख लगौ। मोरी तरफ से उनखाँ साबासी और उनसे मोरी बिन्ती है कि जोंन काम उनने करबे खाँ कहौ है, वो काम वे खुदई करें तो बहुतई उम्दा रैहै।' उल्लेखनीय है कि मैंने बुन्देली भाषा से फागों के पाठ–निर्धारण में अपने लेख में वर्णित अनेक मानकों–सिद्धान्तों के पालन की अपील की थी।

— ४२, खेड़ापति कॉलोनी, ग्वालियर □

बुन्देली युगल गीत

— सुनील केशव देवधर

म.स्वरः आओ सजनवां मोरे अंगनवा, तुम बिन जिया लागे ना
पु.स्वरः और ठौर चल मिल कै बैठें, आहों न तोरे अंगनवा।
म.स्वरः बादर बीच विजुरिया चमकै, इक पल नैन झपैना।
पु.स्वरः हंस हंस प्रान आज हर लै हैं, जै नैना कस कैना
आओ सजनवा............।।१।।
म.स्वरः बागन बीच कोयलिया कूकै, दोरें बैठ मुनइंया
पु.स्वरः कसक प्रेम की जानो सर्जना, भजलो राम गुसइंयां
आओ सजनवा............।।२।।
म.स्वरः हवा चलत में उड़ै कंदेला, सारी जा सम्हरैना।
पु.स्वरः बदल जात हैं सबके चोला एकऊ इतै बचै ना।
आओ सजनवा............।।३।।
म.स्वरः गुइयाँ तुम तो बहुत मुमानी, मोरी एक चलै ना
पु.स्वरः चलो प्रेम की गैल उरानै, इयै कछु धरौना।
म.स्वरः ओ सजनवा मोरे अंगनवा तुम बिन जिया लागेना
पु.स्वरः और ठौर चल मिल कै बैठें, आहों न तोरे अंगनवा।।

— कार्य० अधिकारी, आकाशवाणी, छतरपुर □

बुन्देली चौकड़ियाँ

— डॉ. कुंजीलाल पटेल 'मनोहर'

खोरये अपनी साख पुरानी, पुरखन की लासानी।
हावभाव आदर सब भूले, अपने दाना–पानी।
सपने सी हो रई पैलां की, अपनी असली बानी।
अनजानें अंगरेजी बोलत, सबकी मति सठियानी।
सोसन सूखे जाँय 'मनोहर', जेठे स्याने प्रानी।।

खोदई लोकलाज स्यानन की, अपने घर आँगन की।
बिन मालिक की फौजें हो गईं, हालत परवारन की।
खा गये हवा विदेसी देसी, भूले बन बागन की।
बदनामी की चाल चलें सब, काया भई दागन की।
ईलू–ईलू गायें 'मनोहर', धुन भूले फागन की।।

दुनिया नई फैसन पै आ गई, लोकलाज सब खा गई।
मूल मुलक की खानी पीनीं, जिन्सें सबई बिला गईं।
साज–बाज गाँवन की थाती, जमके पेट समा गई।
गाये जाबैं नये तराने, दुनियां अब सठया गई।
दूध–दही की मही 'मनोहर', कॉफी चाय पिला गई।।

— ३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर म.प्र.

बुन्देली के माधुर्य का ध्वनि वैज्ञानिक विश्लेषण

— डॉ. कैलाश विहारी द्विवेदी

प्रायः सभी भाषाविद् बुन्देली को मधुर बोली कहते हैं, परन्तु उसके माधुर्य के कारकों का विश्लेषण देखने में नहीं आया है। प्रस्तुत लेख में उन्हें दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

भाषा में कोमलता और परुषता का होना उसके तारत्व (pitch), आयतन (Volume), गूंज या अनुनाद (Vocalization), पर निर्भर करता है। यद्यपि ये सभी बातें सभी भाषाओं और बोलियों में होती हैं, किन्तु किसी प्रवृत्ति की बहुलता से उसका स्वरूप प्रभावित होता है।

भाषा के इन्हीं भौतिक तत्वों के आधार पर बुन्देली का संक्षिप्त परीक्षण प्रस्तुत है।

तारत्व यद्यपि तारत्व और आयतन ध्वनि गुण व्यक्तिगत अधिक होते हैं और बोलने वाले की, बोलते समय की मनोवृत्ति से संचालित होते हैं। इस बात को व्यावहारिक स्तर समझने के लिए एक ही व्यक्ति की तीन मनोवृत्तियों में बोली गयी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। एक जब वह किसी को डाँटने–फटकारने में चीखता–चिल्लाता है, उस समय उसके बोलने में ध्वनियों में तारत्व और आयतन दोनों अधिक रहते हैं जो कर्णकटुता और कर्कषता पैदा करते हैं। दूसरे–उसी व्यक्ति की समझाने के ढँग से बोली गयी भाषा में इनका सन्तुलन रहता है। बुन्देली में परम्परा से यही भाषा–शैली सामान्य रूप से व्यवहृत है चाहे वह समझाने के लिए हो चाहे समझने के लिए। यह श्रोता के लिए सहज ग्राह्य होती है और कर्कषता भी उसमें नहीं होती है।

तीसरे–वही व्यक्ति जब अपने आप कुछ कहता है और उसका लक्ष्य किसी श्रोता को सुनाना नहीं होता है। जैसे– राम,राम, कैसी आफत में फँस गये। इस तरह की भाषा में दोनों ध्वनि गुण न्यून मात्रा में रहते हैं। वस्तुतः इस तरह की भाषा सामान्य भाषा अध्ययन का विषय नहीं है।

बुन्देली के परिनिष्ठित स्वरूप में संतुलित तारत्व के कारण उच्चारण के समय स्वर तंत्रियाँ (Vocal cords) निकट रहती है और उनके बीच से वायु निकलते समय उनमें कम्पन अधिक होता है। इस तरह कम्पन के कारण ध्वनियाँ कोमल और नादयुक्त हो जाती हैं। इससे बुन्देली में श्रुति माधुर्य और स्पष्टता दोनों हो जाती है।

बुन्देली में दूसरी प्रवृत्ति अनुनासिकता की है। यह अनुनासिकता दो स्तरों पर क्रियाशील रहती हैं।

(१) ध्वनि स्तर पर — संस्कृत से आगत बहुत से तत्सम और तद्भव शब्दों में अनावश्यक अनुनासिकता का आगम हो गया है। उदाहरणार्थ —

कपित्थ — कैंथ, कोष्ट — कोंठा (पेट), कैकेई — कैंकई, कुक्षि — कूँख, कोंछर, पृच्छ — पूंछ (क्रि.), पुच्छ — पूँछ, सर्प–साँप, श्वास — साँस

यदि शब्द में एक भी नासिक्य या अनुनासिक ध्वनि होती है तो वह शब्द की लगभग सभी ध्वनियों को अनुनासिकता से प्रवाहित कर देती है। जैसे —

प्रेम — प्रेंम, नारायण — नाराँन, हस्तिन — हाँती, श्रावण — साँउँन, गोधूम — गोऊँ (हूँ), कोमल — कोंमल/कोंमर, चूर्ण — चूँन, कोण — कोंनों

(२) अर्थ के स्तर पर — कहीं–कहीं अनुनासिकता से अर्थ प्रभावित होता है। जैसे —

करैया — करने वाला (कर्ता) प्र. ई काम कौ करइया है कोऊ?

करैंयाँ — करने वाला (कर्म की अनिश्चित अवस्था में) प्र० दिन के बादर रात तरैंयाँ, जाने ईसुर कहा करैंयाँ।

इसी प्रकार 'कोष्ठ' से विकसित शब्द भी दृष्टव्य हैं।

कोष्ठ — कमरा

कोष्ठ — कोंठा (पेट)। प्र. कोंठा साफ हो गव

(२) भरें कोंठा में आँय सूजत सबरे सौक।

अनुनासिकता के आगम से बुन्देली में घोषत्व उत्पन्न हो जाता है और घोषत्व से कोमलता तथा नाद उत्पन्न हो जाता है। क्योंकि सभी नासिक्य और अनुनासिक्य धनियाँ घोष होती हैं। इनमें से टवर्ग की परुष ध्वनियों के नासिक्य 'ण' का बुन्देली में बहिष्कार रहता है। इसकी संध्वनि के रूप में 'न' का प्रयोग होता है। जैसे — कण–कन, रण–रन, क्षण–छिन, ऋण–रिन, तृण–तिन, तिनबौ (क्री) तिनूँका (संज्ञा)।

आद्यतन — यह भी व्यक्तिगत गुण है, कुछ लोग ध्वनियों को लम्बा खींच कर तथा कुछ लोग ध्वनियों को चबाते हुए बोलते हैं परन्तु इससे बुन्देली का समग्र स्वरूप प्रभावित नहीं होता है। परन्तु यह ध्वनिगुण भी है जो पूरी बोली पर लागू होता है। उस पर संक्षिप्त विचार निम्नानुसार है।

महाप्राण ध्वनियों (हकारयुक्त — कवर्ग, चवर्ग आदि वर्गों की दूसरी और चौथी ध्वनि तथा ऊष्म ध्वनियाँ (श,ष,स,ह) के उच्चारण में श्वास बल अधिक रहता है इससे ध्वनियों का आयतन भी अधिक होता है और इनके प्रयोग से श्रोतव्यता अधिक स्पष्ट रहती है।

परिनिष्ठित बुन्देली में प्रायः महाप्राण ध्वनियों का अभाव रहता है। जैसे — गात्रग्रंथी — गतिया, संधि–सँद, तिथि — तित (तित पावन मुहावरें में प्रयुक्त) स्वतंत्र प्रयोग में तित तथा तिथी का प्रयोग पाया जाता है।

विधि–विदी, अद्भुत–अदबद, अर्द्ध — आदौ, गृह–घर, अनध्याय — अंजा, संध्या — संजा आदि।

परन्तु इस अभाव की पूर्ति के लिए बुन्देली में एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। विशेषकर दो ध्वनियों वाले शब्दों में प्रारम्भ की अल्पप्राण ध्वनि महाप्राण ध्वनि हो जाती है जो श्रोता को आकर्ण करने में विशेष सहायक होती है तथा शब्द के आयतन की क्षति पूर्ति हो जाती है साथ ही अन्य ध्वनियों के अल्पप्राण हो जाने के कारण कोमलता भी बनी रहती है। जैसे –
गुंठन – घूँगट, गृह–घर, महिष–भैंस, परशु–फरसा, पास–फाँस, बुश – भुसा, बृहत् – भौत, स्कम्भ–खाम, स्थम्भ–थामौ, थुमियाँ, स्तन–थन।

कभी–कभी विदेशी शब्दों के उच्चारण में हकार की मध्यध्वनि (In Glide) उत्पन्न हो जाती है। जैसे – जेल – जैहल; वस्तुतः इसमें भी उपर्युक्त नियम ही लागू है। प्रवृत्ति और अनुकरण के प्रयास में 'झ' ध्वनि विष्लेषित हो जाती है।

प्रश्न उठता है कि इसी तरह 'रेल' में भी मध्यध्वनि क्यों पैदा नहीं होती है? इसका कारण यह है कि 'र' ध्वनि लुण्ठित है। इस कारण इसमें ध्वनिगुण अर्थात् लम्बाई अधिक होने के कारण आयतन अधिक रहता है। अतः उसे अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए किसी सहायक ध्वनि की आवश्यकता नहीं रहती है।

अनुनाद (Vocaligation) – बुन्देली में दूसरी प्रवृत्ति रकारलोप की है।रकार अधिकतर स्वर में परिवर्तित हो जाता है। रकार घोष होता है और स्वर भी घोष होते हैं। इस कारण उसके तारत्व में सन्तुलन रहता है किन्तु अन्य घोष वर्णो की अपेक्षा स्वर अधिक नादयुक्त होते हैं। इस कारण कोमलता में अधिक वृद्धि हो जाती है जैसे अटारी–अटाई, सुटारी–सुटाई आदि।

इस प्रवृत्ति से बोली का माधुर्य तो बढ़ता है किन्तु श्रोतत्वता में कमी हो जाती है। इसलिए अर्थ की दृष्टि से यह अच्छी प्रवृत्ति नहीं है। संभवतः यह अपभ्रंश की अवशिष्ट प्रवृत्ति है। यह निम्न स्तरीय बुन्देली में अधिक पायी जाती है।

बुन्देली की उपबोलियों–भदौरी और पवारी में रकार लोप की भिन्न पद्धति प्रचलित है। उनमें रकार की पूर्व या पश्च ध्वनि में द्वित्व उत्पन्न हो जाता है। जैसे – कुचर–कुच्च (पूर्व), हरदी–हद्दी (पश्च) आदि। बुन्देली की सभी उपबोलियों में शब्द की प्रथम ध्वनि के रूप में रकार यथावत रहता है।

बुन्देली में अनुष्मीकरण (De-assibilation) की प्रवृत्ति भी यदा–कदा, विशेषकर निम्नस्तरीय बोली में, पायी जाती है। जैसे – सूक्ष्म–छुच्चम, जेष्ट–जेठ (यहां लोप है), सीता–छीता, साबुन–छाबन, सलोंनी–छलोंनी, षष्ठि–छट, आश्चर्य–अचरज, सीताफल–छीताफल आदि।

यह प्रवृत्ति क्यों है? कहां से आयी? इसका ध्वनि माधुर्य, शब्द के आयतन श्रोतव्यता आदि पर भी कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं आता है। सम्भव है यह संस्कृत की उस परम्परा का अवशेष हो जिसमें श्रीमत् शंकराचार्य को श्रीमछंकराचार्य कहा जाता था। बहुत संभव यह है कि लौकिक वैदिक भाषा के परिनिष्ठीकरण अर्थात् संस्कृत बनते समय ही किसी आदिवासी भाषा की प्रवृत्ति को संस्कृत में मान्य कर समाहित कर लिया गया हो, क्योंकि बुन्देलखण्ड के सोंरिया आज भी अधिकांशतः 'स' की जगह 'छ' का प्रयोग करते हैं। ओंकारान्तता से भी बुन्देली में नाद सौयन्दर्य और कोमलता में वृद्धि होती है परन्तु वह समग्र बुन्देली में प्रचलित नहीं है। लुधाँति में उसमें कमी है। बनाफरी में लगभग उसका लोप है।

हकार का प्रयोग तो बुन्देली की प्रायः सभी उपबोलियों में कम प्राणत्व के साथ होता है। कहीं–कहीं स्वरीकृत भी हो जाता है। जैसे – नहीं–नई, कही–कई, रही–नई आदि। केवल बनाफरी में हकार में प्राणत्व अधिक रहता है जो बघेली का प्रभाव हो सकता है। हकार के कम प्राणत्व वाले उच्चारण के कारण भी बोली में माधुर्य वृद्धि होती है।

ऐसे नहीं है कि बुन्देली में कोमलता और माधुर्य ही है। यदि ऐसा होता है तो वह अपूर्ण भाषा होती। बुन्देली में भावानुकूल परुषता के लिए निम्नलिखित पद्धतियां प्रचलित हैं।

१. ध्वनियों में द्वित्व करके या अन्य ध्वनि विपर्यय करके जैसे सामान्यतः लाठी को लठिया कहा जाता है किन्तु धमकी देने में 'लट्ठ' कहा जाता है। स्वयं के मन में परुषता न भी हो परन्तु प्रसंगानुसार लाठी की परुषता बनाये रखना आवश्यक हो तो ऐसी स्थिति में 'लट्ठ' भी कहा जा सकता है और लट्ठ की सुदीर्घता व्यक्त करने के 'लठा' भी कहा जा सकता है जैसे 'पुलिस नें गुण्डन पै अच्छे लठा फटकारे' अथवा 'लठा पाँड़ होना'।

२. ध्वनि विपर्यय या सहायक ध्वनियाँ जोड़ कर भावानुकूल मन की कड़ुवाहट, कठोरता और क्रोध को अभिव्यक्त करने के लिए बामन को बमना, ठाकुर को ठकरा, बानिया को बनट्टा, अहीर को अरिट्टा, चमार को चमट्टा, गमार को गमट्टा या गमरगट्टा आदि कहा जाता है।

३. पुंलिंगीकरण करके कभी–कभी वस्तुओं की परुषता, दीर्घता और विकरालता के लिए स्त्री संज्ञा का पुंलिगीकरण भी किया जाता है और यदि भाव की पूरी अभिव्यक्ति न हो रही तो विशेषण में भी ध्वनि द्वित्व कर दिया जाता है। जैसे–कुलरिया से कुलार, बड्डौ कुलार। बन्दूक (तुवक) से तोपाना, बड्डौ तोपाना आदि।

व्यंग्य के लिए ध्वनि स्तर पर अधिकतर लम्बित ध्वनियाँ (Prolonged Sound) का प्रयोग किया जाता है। जैसे अरेऽऽऽ, बाऽऽऽ, दोखौ तौ जा सूऽरत्।

उपर्युक्त ध्वनि वैज्ञानिक विवेचन से यह स्पष्ट है कि बुन्देली में घोष ध्वनियों के अधिक प्रयोग के कारण एक ओर श्रुतिमाधुर्य है, तो दूसरी ओर तारत्व और शब्द की आद्य ध्वनि के महाप्राणीकरण के कारण समुचित श्रोतव्य प्रभाव भी है। स्वरों की प्रयोग बहुलता के कारण कोमलता है।

अल्पप्राण और अघोष ध्वनियों तथा स्वरों की अधिकता से शब्द गति (Frequency) भी बुन्देली में काफी तेज है।

कोमलता और मधुरता के कारण इसकी अर्थ सामर्थ्य में कमी नहीं होती है। भावानुकूल परुषता लाने की भी इसकी अपनी पद्धतियाँ हैं।

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र. □

राजगुरु एवं राजमंत्री ओरछा : कन्हरदास

— डॉ. रामनारायण शर्मा

विन्ध्यांचल सप्तकुल पर्वतों में प्राचीनतम है। उसी प्रकार विन्ध्यांटवी का क्षेत्र पुरातन माना गया है। पुराणों में इसे सुन्दरावर्त कहा गया है।

१. *'महेन्द्रोमलयः सह्य शक्तिमान ऋक्षवानपि।*
विन्ध्याश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल पर्वतः।।'

२. *सुन्दरावर्त नाम्नोऽयं भारतवर्षे विश्रुतः*

चेदि, दशार्ण, जैजाकभुक्ति, जुझौति आदि अनेक साम्राज्यों की प्रशस्त भूमि और प्रबल प्रतापी राजाओं की कर्म भूमि यही पुण्य क्षेत्र रहा। जहाँ बुन्देलों के शौर्य, पराक्रम और वीरता के इतिहास का निर्माण हुआ है। बुन्देला क्षत्रिय अपने को सूर्यवंशी इक्क्ष्याकु राजाओं के कुलावतंश मानते हैं। इनकी प्रशस्ति में — सूयविशान्तर्गत श्री सूर्यवंश कुलावतंश काशीश्वर पंचम ग्रह निवार विन्ध्येलखण्ड मंडलाधीश्वर श्री महाराजाधिराज ओरछा नरेश — कह कर गुणगान किया गया है।

सूर्यवंशी राजा महान प्रतापी — चक्रवर्ती सम्राट हुये। इनके शासन सत्ता के सूत्र 'राजगुरु' और राज्यमंत्री के यशस्वी हाथों में रहे। वैसे इनके मंत्रिमंडल में ८ अथवा १८ सदस्य होते थे। जिनमें प्रधानमंत्री पुरोहित, युवराज, चमूपति, द्वारपाल, अतरवेशक, वंदीग्रह अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, पूर्तिअध्यक्ष, सभाध्यक्ष (न्याय), दंडधारी, दुर्ग रक्षक, प्रदेष्टा, नगर अध्यक्ष, सीमारक्षक एवं जंगलों के रक्षक होते थे। इसी गुरुकुल परम्परा में महाकाव्यकाल में वशिष्ठ, महाभारत काल में आचार्य द्रोण, गुप्तकाल में आचार्य चाणक्य और विभिन्न कालों में राजपुरोहित आदि ने राज्यों को रीति—नीति का मार्गदर्शन दिया। काशीराज, वंशोत्पन्न गृह निवार पंचम बुन्देला हेमकरन को राजपुरोहित पं. गजाधर ने बुन्देला राज्य की स्थापना का मार्ग दिखाया था। (बु. सं. इति — गोरेलाल तिवारी पृ. ११३) कालान्तर में वीरभद्र (सं. ११२८—११४४ वि) से लेकर अर्जुनपाल (सं. १२७२—१२८८ वि.) ने माहौनी को राजधानी बनाया और सोहनपाल (सं. १३१४ वि.) ने खंगहारों को पराजित कर गढ़गुडार में राजधानी बनाई थी। इन्हीं के पुत्र रुद्रप्रताप (सं. १५५८—९८) ने ओरछा को बुन्देलखण्ड का सत्ता केन्द्र बनने का गौरव प्रदान किया था। इसने सिकन्दर और इब्राहीम लोधी से युद्ध कर यश अर्जित किया था। इसके बाद भारतीचन्द्र (सं. १५८८—१६११ वि) ने सं. १६०२ में जयतारा (जतारा) विजय से मुगलसत्ता को अपनी शक्ति का आभास करा दिया था। इस समय इनके गुरु श्री हरीराम व्यास थे। इसी परम्परा में ओरछा राज्य के गुरु पं. कन्हरदास (सं. १६१२—१६७५ वि.) रहे। जिन्हें इतिहासकारों ने इस शदी का पुराणपुरुष माना — ''इस समय महाराज के सेनापति यादवराय गौड़ के सुपुत्र कृपाराम सिंह और कन्हरदास ब्राह्मण मंत्री थे'' (गोरेलाल तिवारी पृ. १४१)। इसी प्रकार अ. मकामअसद वेग के लेखक इलियट जॉनसन ने पृ. १५४—१६० वही जिल्द ६ पृ. १०७ वही १६०—१६२ में कन्हरदास को ओरछा राज्य का मंत्री होने का उल्लेख किया। अतः कन्हरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का विवेचन कर हमें इस शदी की घटनाओं का निरूपण मिल सकता है, जो अभी तक गौड़ था।

जन्म एवं वंश : कन्हरदास का जन्म सं. १५८० वि. के लगभग ओरछा राज्यान्तर्गत ग्राम पथरेड़ी के अड़जरिया तिवारी के वंश में हुआ था। पथरेड़ी वेतवा के उत्तरी—पूर्वी तट पर २३° अक्षांस खिरिया बांध के पास मोंठ—बघेरा मार्ग पर बेंदा तिगैला से ५ कि.मी. अन्दर दांई और बामौर ब्लाक में स्थित है। यहाँ से नदी तट मार्ग से ओरछा दस कोस है। इसका सम्पर्क मार्ग—ओरछा—बरुआसागर— घुघुवा — भीतरी — उजयान — बाघाट — घुवानी — लहरगाँव — कलोथरा — कुकर गाँव — पथरेड़ी है। पथरेड़ी के पार्श्व में प्रवाहित बेतवा की जलधारा में अनेक संस्कृतियों का उत्थान व पतन समाहित है। चंदेलों, बुन्देलों, खंगहारों के राज्याधीन इस छोटे से गांव ने समय की बदलती करवटों को देखा और सहा। पं. कन्हरदास के वंशज इनके राजगुरू रहे। अतएव ऐसे परिवार में कन्हरदास की शिक्षा दीक्षा का कार्य उनके पिता के द्वारा हुआ। कहते हैं कि कुलरीति के अनुसार वे वेद—पुराण वेत्ता एवं ज्योतिष विद रहे। इनकी विद्वत्ता का समाचार जब ओरछा में पहुँचा तो महाराज मधुकर शाह (प्रथम) ने उन्हें सादर अपने दरबार में आमंत्रित किया। जनश्रुति है कि महाराज ने गर्भवती महारानी के प्रशव—काल, पुत्र अथवा पुत्री होने के विषय में भविष्यत बताने को कहा। अपनी ज्योतिष गणना से पं. कन्हरदास ने जो बताया वह बाद में अक्षरशः सही निकला। अतः मधुकर शाह ने उन्हें ओरछा में राजगुरु हरिराम व्यास के वृन्दावन वास के कारण गुरु पद पर आसीन किया।

राजगुरु : राजगुरु की परम्परा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है। राजगुरु राजवंश की शिक्षा—दीक्षा के कार्य के साथ राजा को राज—संचालन में धर्म—नीति सम्मत जन कल्याणकारी कार्य करने को प्रतिबद्ध और जागृत रखता है। महाराज मधुकर शाह का परिवार बड़ा था। पं. कन्हरदास ने राजकुमारों की शिक्षा—दीक्षा, अस्त्र—शस्त्र परिचालन और जागीरों के कार्य—दक्षता में निष्णात किया। वहीं पर राजमहल में धर्म—संस्कृति और शुद्ध आचरण के पाठ पढ़ाए। अपने राजगुरू के दायित्वों का सत्ता—संस्कृति और जन समुदाय के प्रति राज्य के दायित्वों का पालन कराया। इसमें प्रमुख बातें यह रहीं —

१. उस समय धर्म—संस्कृति पर आघातों के विरुद्ध राज्य

सत्ता को सचेष्ट कर क्षत्रीयोचित कर्म की ओर अग्रसर किया।

२. भय, भाग्य की विवेचना कर मधुकरशाह और बाद में वीरसिंह जू देव (प्रथम) को शत्रु का सामना करने के लिये भाव—भूमि तैयार की थी।

३. सांस्कृतिक पर्व जैसे 'कजरियन' का मेला, बसंतोत्सव, श्रावण होली आदि के आयोजनों से राजा और प्रजा के बीच अगाढ़ सम्बन्धों का निर्माण किया। जो बाद में आक्रमणकारियों के विरुद्ध जन सामान्य का सहयोग राज्य को मिला।

अतः राजगुरु के कर्त्तव्यों के प्रतिपादन में पं. कन्हरदास ने राजपरिवार, राजा—राजेश्वरी, प्रिया—प्रजा को गुरु निर्देशों से परिमार्जित एवं परिपक्व किया था। इसीलिए उनके समकालीन राज—कवि केशवदास ने राजगुरू की प्रशस्ति में वीरसिंह जू देव चरित में लिखा है —

ज्यों बशिष्ठ दशरथ के मित्र। रामचन्द्र के विश्वामित्र।
वीरसिंह त्यों मंत्री करयो। कन्हरदास विप्रमति धरयो।।
(१८वें प्रकाश पृ. ३७८)

राजमंत्री : सही सलाहकारों से राज्य की कीर्ति बढ़ती है। पं. कन्हरदास ने अपनी प्रखर बुद्धि और कूटिनीति से ओरछा राज्य के राजगुरू एवं राज मंत्री के पदों पर रहते हुये राज्य के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में अभिवृद्धि की थी। महाराज रूद्रप्रताप और भारतीचन्द्र के काल में कालिंजर समेत ओरछा राज्य की सीमायें टोंस, यमुना, नर्मदा तक विस्तार लिये थीं। जो बाद में बढ़ती सिमटती रहीं। किन्तु वीरसिंह जू देव के समय ओरछा राजनैतिक, कला, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट रहा। अकबर के समय बुन्देलखण्ड के एरच, काल्पी, भांडेर, बिजपुर और जतारा सूबा आगरे से, ललितपुर, चंदेरी, सूबा मालबा से तथा बालाबेहट धामौनी सूबा रायसेन से नियंत्रित होते थे। किन्तु इनमें से वीरसिंह जू देव के पराक्रम और मंत्री कन्हरदास की कूटनीति से इनमें से कुछ क्षेत्र भी ओरछा राज्यान्तर्गत आ गये थे।

सं. १६११ वि. में राज्यारुढ़ मधुकर शाह को अकबर अपने दुष्चक्रों में फँसाकर ओरछा को अपने अधीन कर पूरे सेंट्रल बुन्देलखण्ड को अपने लिये निरापद कर लेना चाहता था। इसके पूर्व वह एक बड़ी सेना भेज इस क्षेत्र को नियंत्रित करने में असफल हो चुका था। अपनी विस्तारवादी नीति से राजस्थान और सुदूर दक्षिण में अपना परचम लहराकर आतंक का साम्राज्य स्थापित कर चुका था। बुन्देलखण्ड के राजवाड़े भी उसकी अधीनता स्वीकार करने लगे थे। किन्तु ओरछा ने इसका विरोध किया। राजगुरु और राजमंत्री ने राज्य की धर्म—परायण जनता को उसके स्वाभिमान की रक्षा के लिए सांस्कृतिक आधारों के बल पर शक्ति और शास्त्र की कूटनीति से शत्रु को पराजित किया। जिसके लिये 'रामराजा' की ओरछा में प्रतिस्थापना 'तिलक', एवं 'आखेट' जैसे अकबर के कुचक्रों में राजनीतिक सूझबूझ से उसे पराभूत किया था।

ओरछा में 'राजाराम' की प्रतिष्ठापना : महाराज मधुकर शाह कृष्णोपासक और महारानी रामोपासक थीं। यही नहीं अधिकांश क्षत्रिय अपने को भगवान रामचन्द्र के पुत्र महाराज लव के वंशज मानते थे। ऐसे समय महल, दरवार और क्षत्रियों में एकजुटता के भाव उत्पन्न कराने की दृष्टि से राजगुरु ने महारानी को अयोध्या से श्रीरामजानकी की प्रतिमाएँ नंगे पैर चल कर पूरे राज्य में होकर लाकर सं. १६३१ वि. चैत्रशुक्ल नवमी मंगलवार को जय—जयकार के साथ ओरछा में प्रतिष्ठापित करा दी। इससे जबरदस्त सांस्कृतिक भावना का उद्भव से शक्ति की राज्य में वृद्धि हुई। संयोग से चित्रकूट में इसी समय रामचरित मानस की संत तुलसीदास द्वारा रचना कर जन—मन—गण को सम्मान मिला। जो तत्कालीन भक्ति साहित्य और लोक—साहित्य में एक साथ प्रस्फुटित हुई।

प्रणहित सदा करत रघुराई — नाभादास
ओरछो वृन्दावन सौ गांव — मधुकर शाह
प्रभु तुम अपनौ कर मोय जानौ — रामशाह

दूसरी ओर शक्ति का मुगलों के विरुद्ध आवाहन ने जनता में शक्ति का संचार किया।

सोके जागी मोरी आदि भवानी।
तोपै मुगल चढ़ आऔ हो मां। आदि
नौ लख मारे दस लख गाड़े।
अनगिनत मार भगाये हो मां।
हाथ जोड़ ठाड़े भये मुगला;
तैं मोरी आद भवानी हो मां। आदि

इससे जन—चेतना में स्वाभिमान और स्वराज्य की रक्षा के प्रचण्ड भाव जागृत हुये। अपने राज—गुरू एवं राजमंत्री की कूटनीति से प्रसन्न हो महाराज मधुकर शाह ने उन्हें ३११ वीधा भूमि मौजा भसनेह में पदारघ रूप में दी और उन्हें 'स्वामी' पद से सम्मानित किया। जिसकी सही नीचे दी जा रही है —

'श्रीन्हसिंह जू। सही।। महाराजाधिराज
श्री महाराज श्री राजा मधुकर साहि जू ऐते
पं. गुरूदेव कन्हरदास को पदारघ दई मौजो
भसनैह में बीघा ३११... पायै जाहि कृष्णार्पण'

स्वामित्राई लिखत प्रमकुद सं. १६३१ वैसाख वदि ११ बुधे इसके साथ राजकुमारों को जागीरों को जिम्मेदारी भी सौंपी जिससे राज का प्रबन्धन सुदृढ हो। इससे घबड़ाकर अकबर ने मधुकर शाह को घेरने और भयभीत करने के कुचक्र रचे।

मधुकरशाही तिलक : बसंतोत्सव पर अकबर के दरबार में सभी देशी रियासतों के राजा उपस्थित होते थे। चूंकि ओरछेश मधुकर शाह तिलक और माला धारण करते थे, अकबर ने किसी को भी तिलक लगा करने आने का फरमान जारी किया कि ऐसा करने वाले का सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। राजगुरु एवं मंत्री ने इस कुचक्र को समझ कर महाराज को 'तिलक' राजा की शोभा तथा माला श्रद्धा—विश्वास और राजा का प्रतीक होने से इन्हें निर्भय हो धारण कर दरबार में जाने का

परामर्श दिया। अकबर ऐसा देख हतप्रभ हो गया और उसने इसे 'मुधकर शाही तिलक' का नाम दिया। इससे जनता में स्वाभिमान की भावना और दृढ़ हुई और मुगलों के विरुद्ध एक जुट खड़े होने को तैयार किया।

आखेट — में शेर का शिकार करने के बहाने मुधकार शाह को ओरछा से बाहर बुलाकर भयभीत करने के कुचक्र को महाराज समझ गये थे। अतः दरवार में मंत्रणा के बाद उन्होंने 'नृसिंह' उपासक होने के कारण इस आमंत्रण को ठुकरा दिया।

इससे अपमानित अकबर ने ओरछा पर आक्रमण हेतु अपनी सेना भेज दी। मधुकर शाह ने डटकर मुकाबला किया और अंत तक अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इस बीच महारानी के निधन से दुखी महाराज भी स्वर्गारोहण कर गये। सत्ता केन्द्र बदले और जहाँगीर ने अकबर की जगह ली तथा वीरसिंह जू देव को ओरछाधीश का पद मिला। राजतिलक की रीति के अनुसार वीरसिंह जू देव को सं. १६६२ वि (सं. १६६३ वि) बसंत के दिन गुरुदेव कन्हरदास ने वस्त्रालंकार स्वयं पहिनाकर अलंकृत किया। जिसका वर्णन कवीन्द्र केशव ने इस प्रकार किया है —

''करि अपने मन प्रेम प्रकाश। पहिराए द्विज कन्हरदास''

(वीरसिंह चरित १८वां प्रकाश पृ. ६११)

इसके बाद गुरूदेव ने महाराज को आशीर्वाद दिया —

अमल चरित्र तुम बैरिन मलिन करौ,
साधु कहैं साधु पर दार प्रिय अति है।
एक थलथिति पै बसत जगजन जिम,
द्विपद बिलोकियत बहुपद गति हो।
भूषन बसन जुत सीस धरैं भूमिभार,
भू पर फिरत सु अभूत भुवपति लै।
राजसिंह लीन्हें साथ राखौ गाय ब्राह्मननि,
चिरजीवौ वीरसिंह अद्‌भुत गति हौ।

(वीर सिंह चरित — केशवदास)

वीर सिंह देव का राज्यकाल स्वर्णिम युग माना गया। राजगुरु, राजमंत्री कन्हर दास की मंत्रणा से जागीर बँटवारा से राज्य प्रबन्धन सुदृढ़ हुआ। राज्य की आय २—३ करोड़ की हुई। सामाजिक नीति निर्धारण कर सुधार किया। जिसमें संस्कारी समाज की रचना, सामाजिक कुरीतियों का निराकरण पारासर संहितानुसार लड़कियों के विवाह कर अपहरण से छुटकारा, साधु—संतों का समादर, दीन इलाही के दुष्प्रचार का दीन दयाल की शरणागत पूजा के आर्थिक उत्थान के लिये ५२ कुओं, सरोवरों, किलों, महलों मंदिरों का निर्माण कर राजा—प्रजा के सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये गये। ८१ मन सोना दान का पुन्य अर्जित करने का प्रसिद्ध प्रकरण है। कहते हैं महाराज का पलड़ा सोने के पलड़े से भारी था। तब उन्होंने अपने मंत्री से पलड़ों को बराबर करने का उपाय करने को कहा। इस पर पं. कन्हरदास स्वयं विषम पलड़े पर बैठ गये तो दोनों पलड़े सम हो गये। इस का महाराज ने कारण पूछा तो मंत्री कन्हरदास ने बताया कि राजा का भार राज्य सिंहासन का होता है किन्तु राजमंत्री का भार पूरी जनता काहै जो इसे सम बनाये रखता है। कन्हरदास के सम्पूर्ण कृतित्व में यही भाव परिलक्षित होता है। इसीलिए इतिहासकार पं. गोरेलाल तिवारी के शब्द — किसी राज्य की कीर्ति उसके सलाहकार (मंत्री) को अच्छी मंत्रणा से ही बढ़ती है। कन्हरदास के मंत्रित्वकाल को ओरछा का स्वर्णिम काल कहा गया है। □

संदर्भ सूची :

१. अ.मकाम असद बेग — इलियाजॉन सन
२. ओरछा इतिहास — डॉ. लक्ष्मन सिंह
३. ओरछा दस्तूरात — जिल्द ४ पृ. २५५
४. केशव दास जीवन और कृतित्व — चिरंजीलाल माथुर
५. केशव दास ग्रंथावली — म.प्र. साहित्य परिषद, भोपाल
६. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास — गोरेलाल तिवारी
७. वीरसिंह चरित — केशवदास
८. भकभाल — नामादास
९. बुन्देलीभाषा साहित्य का इतिहास — डॉ. रामनारायण शर्मा
१०. भसनेह कुल बस्तर रिकार्ड
११. तामपत्र

— ६९५/३ सिविल लाइन्स, झांसी उ.प्र. □

बुन्देली कविता

चपेटा

— डॉ. ए.के. जड़िया

टोरें टाँक मरोरें फेंटा, देह नेह में घोरें।
मानों इन्द्रधनुष के सातउ, रंग विराजे दोरें।।
आँखिन के झूला में पुतरीं, झूलें ऊपर नीचें।
जे पुतरीं उतरीं आँखन में, रंग अपार उलीचें।।
रंग—बिरंगे चपल—चपेटा, मेंहदी छू छू जावें।
कैसउ व्योम—विहार करें पर, लौट लपक आ जावें।।
इनकी लरम कलइयाँ कबहूँ लचक लूँम लेतीं हैं।
पटक भूँम पै देतीं कबहूं चटक चूँम लेतीं हैं।।
कबहुँ योग कबहूँ वियोग के प्रबल प्रयोग करत हैं।
इनकी कर—क्रीड़ा में अँग अँग अति सहयोग करत हैं।।
चटकत चपल चपेटा खन खन चुरियाँ खनकीं जातीं।
छनकीलीं की छनक देखि कें छातीं छनकीं जातीं।।
रूप आगरी कौंनउँ कौनउँ गुण उजागरी नौंनी।
रूप और गुण की कौंनउँ सम्मिलित सुकृति अनहोंनी।
प्रखर विखर रइ धूप—रूप की सब थल कंचन है रओ।
कर—क्रीड़ा को अनजानें स्वाभाविक मंचन हो रओ।।
नरम हथेलिन पै निर्मम पथरन कों झेल रई हैं।
कर्मठता कौ खेल इतै बालाएँ खेल रई हैं।।
खिले—खिलाए हाथ, मँजे जा रए हँसी हाँसी में।
इन हाथन की हद्द, देख गए हैं, हरीफ़ झांसी में।।
ये मेंहदीले हाथ रंग देते अबीर देते हैं
वक्त पड़े तो ये दुश्मन का ज़िगर चीर देते हैं।।

— हरपालपुर, जिला छतरपुर म.प्र. □

बुन्देली लोक जीवन में नवधा भक्ति

— डॉ. हरिमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

हमारे धर्मशास्त्रों में आत्मा और परमात्मा के एकाकार हो जाने को ही जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि माना गया है। आत्मा इस संसार के ८४ लाख योनियों के मायाजाल में घूमती रहती है और उसे बड़े मुश्किल से यह मानव शरीर मिलता है जिसमें सोचने समझने और कुछ करने जैसी क्षमता होती है। अत: इस मानव शरीर के माध्यम से अपनी आत्मा का परमात्मा के साथ साक्षात्कार, एकाकार का स्वर्णिम अवसर गंवाये बगैर हमें विशेष उद्यम करने की सीख हमारे पूर्वजों, ऋषियों, मुनियों द्वारा दी गई है। इस अलौकिक उद्यम का ही नाम भक्ति है, जो ईश्वर के प्रति परमानुराग से उत्पन्न होती है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र १/१/२ में बतलाया गया है —

"सा परानुरक्तिरीश्वरे"

ईश्वर के प्रति परमानुराग को ही भक्ति कहते हैं।

नारद भक्ति सूत्र २ में भी कुछ यही कहा गया है —

"सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा अमृत स्वरूपा च"

परमेश्वर के प्रति होने वाले परम प्रेम को ही भक्ति कहते हैं।

भक्ति एक ऐसा साधन है जो भक्त को भगवान के निकट ले जाने का सबसे सशक्त माध्यम है। परन्तु इस माध्यम में स्वार्थ, मोह तथा मायाजाल के घिनौने बन्धन नहीं होना चाहिये। ईश्वर के प्रति भक्ति में केवल प्रेम ही प्रेम और वो भी निस्वार्थ, निश्छल होना चाहिए। परमेश्वर केवल हमारे प्रेम का ही भूखा है। ऐसी निर्मल ईश्वर के प्रति प्रेमोपासना ही भक्ति है।

श्रीरूप गोस्वामी विरचित भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति की व्याख्या बतलाते हुये कहा गया है—

अन्याभिलपिताशून्यं ज्ञानकर्मद्यिनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा।।

अर्थात् अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा न करते हुये, कर्म अथवा वैराग्य का भी मोह न रखते हुये और अपने किसी स्वार्थ की भावना को स्थान न देते, केवल श्री कृष्ण की संतुष्टि के लिये उनका प्रेम भाव से चिन्तन करना ही उत्तम भक्ति है।

ऐसी उत्तम भक्ति से ही भक्त की साधना का सुफल परमात्मा की प्राप्ति के रूप में होता है। भक्ति का चरमोत्कर्ष ही परमपद की प्राप्ति में निहित है। परमपद प्राप्त कर लेने पर आत्मा और परमात्मा ऐसे एकाकार हो जाते हैं जैसे नदियां समुद्र में मिलकर।

ऋग्वेद १/७१/७ में भक्ति की इसी परणति का वर्णन करते हुए कहा गया —

अग्निं विश्वा अभि पृक्ष: सचन्ते।
समुद्रं न स्त्रवत: सप्त यह्वी:।।

जैसे गंगा आदि बड़ी सात नदियां समुद्र की ओर ही दौड़ती हुयी उसी में विलीन हो जाती है, वैसे ही भगवत् भक्तों के मन की सभी वृत्तियां अनन्त दिव्य गुण कर्मवान्, परमेश्वर की ओर जाती हुयी—एकाकार होती हुयी उसी में विलीन हो जाती है।

भक्ति के कई रूप हैं, कई प्रकार हैं, कई गुण हैं। परन्तु नवधा भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। इस नवधा भक्ति के नौ आधारभूत तत्व हैं। जिसके कारण इसे नवधा भक्ति कहा जाता है।

श्रीमद्भगवत ७/५/२३—२४ में नवधा भक्ति के लक्षणों को बतलाते हुये प्रह्लाद कहते हैं —

श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मनयेऽधीत मुत्तमम्।।

विष्णु भगवान का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन— इन नौ लक्षणों वाली भक्ति यदि पुरुषोत्तम विष्णु को अर्पण की जाये तो मैं समझता हूँ कि वही सु—अधीत है।

बुन्देलखण्ड के जनमानस में भक्ति के ये नौ स्वरूप हमें बुन्देली गीतों में स्पष्टत: दृष्टिगोचर होते हैं।

(१)श्रवण : अपने आराध्य की बातें, उनकी चर्चा, उनके क्रियाकलापों को एकाग्रचित होकर सुनना भी भक्ति का ही एक अंग है।

शु. यजुर्वेद २५/२१ में बतलाया गया है कि —

भद्रं कर्णेभि श्रृणुयाम देवा:

हम भद्रपदवाच्य परमेश्वर के नाम, गुण, चरित्रों का श्रवण करें।

भगवान श्री कृष्ण वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले गये हैं। वृन्दावन की गोपिकायें अपने श्याम के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। परन्तु श्याम तो आये नहीं उन्होंने ज्ञान के पण्डित अपने सखा ऊधौ जी को भेजा और कहा कि गोपिकाओं को ज्ञान की शिक्षा दें। ऊधौ जी ने जब ज्ञान का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया तब गोपिकायें कहने लगीं कि हमें ज्ञान की शिक्षा नहीं चाहिये। वे गोपिकायें तो भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में आकन्ठ तक डूबी थीं। अत: केवल श्रीकृष्ण नाम ही उनके कर्णो को प्रिय लग रहा था और वे केवल श्रीकृष्ण चरित्र का ही श्रवण करना चाहती थीं। अस्तु वे कहतीं हैं —

ऊधौ जी हमखौं न सिखावौ ज्ञान
हम तौ प्रेमी किसन लला के, हमरे हैं वे प्रान

०० ०० ००

स्याम की बातें मन को भावैं, मौ पै आ गई मुस्कान
सुन सुन बतियां ऊधौजी से, सखियन हरसित हो गये प्रान।

ऊधौ जी से गोपिकाओं ने जब श्रीकृष्ण जी का निर्मल चरित्र सुन लिया तब उनके कर्ण धन्य हो गये और उनको इस श्रवण भक्ति रस में आनन्द ही आनन्द प्राप्त हुआ।

(२) कीर्तन : अपने प्रभु के चरित्र का स्मरण करके, उनके चरित्र को भाव विभोर होकर गाना ही कीर्तन है। ऋग्वेद २/३३/८ में 'सुष्टुतिमरियामि' से कीर्तनरूप भक्ति का संकेत मिलता है।

मानव योनि में भगवान का कीर्तन करके, प्रभु के चरित्र का वाचन करके भक्तिपूर्वक अपने आराध्य को प्रसन्न करना ही कीर्तन भक्ति है। तभी तो बुन्देलखण्ड में गाया जाता है —

पाकर मानुस के तन को भजले रघुराई
जासे गत बन जाये तेरी, कोई काम न आई
जे सब स्वारथ के अपने, दारा सुत भाई
अंत समय जब पड़ा रहे, कोऊ संग न जाई
सेस, सुरेस, महेस सदा हरि को यस गाई
बेदहू जासु के भेद को तौ कबहूं नहीं पाई

(३) स्मरण : अपने प्रभु को स्मरण करना उनकी लीलाओं का चिन्तर मनन करना भी भक्ति है।

ऋग्वेद १/१६/९ में स्तवाम त्वा स्वाध्य: तथा ऋग्वेद ३/६२/१० में वर्णित भर्गो देवस्य धीमहि मन्त्रों में परमपिता परमेश्वर की स्मरणरूपी भक्ति का तथा भजनीय तत्व के स्वरूप का दिग्दर्शन होता है।

किसी भी कार्य के प्रारम्भ करते समय विघ्नविनाशक गणेश का स्मरण करते हुये बुन्देलखण्ड में गाया जाता है —

सुमिरहुं श्री गनेस ग्यान परवेश होथ उर
आनन्द मंगल रूप कहत यौ वेद और सुर
यस परसत अघ नसत लसत ग्रह रिद्धि सिद्धि सब
संकट विकट कटत होय मम बदन निकट जब
हर गवर नंद सब गुन सदन, सुबुद्धि देहु आयहु सरन
निज कृपा दृष्टि करि हेरिये, पूरन कीजे मम परन

गोपिकाओं की श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति निसन्देह अद्भुत है। नवधा भक्ति के सभी लक्षण गोपिकाओं की भक्ति में मिलते हैं यहां स्मरण भक्ति का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण के सम्मोहनी स्वरूप को स्मरण करके एक गोपिका कहती है कि ऐसे मनोहारी सुन्दर स्वरूप पर तो मैं अपना तन मन धन सर्वस्व अर्पित कर सकती हूँ —

छबि बिसरत नाहीं बिसारी री जस से पिया रूप निहारी री
सिर पर ताज जुल्फ घुघराली, बड़े बड़े नैनन वारो री
मृद मुसक्याय लखि सखी जब सो, मो चित्त भयौ मतवारी
कब देखौ महबूब दृगन भर, अब कुछ जतन बिचारो री
जित मतवारो बलिहारी छैल पर, तन मन धन सब बारो री।

(४) पाद सेवन : नवधा भक्ति का एक अन्य लक्षण है पाद सेवन। अर्थात जब भक्त अपने प्रभु के श्रीचरणों की सेवा में ही अपने आप को पूर्ण मनोयोग से समर्पित कर देता है तो वह भक्त अपनी पाद सेवन भक्ति के द्वारा प्रभु के श्रीचरणों में स्थान पा लेता है।

ऋग्वेद ८/१०२/१५, में 'पादं देवस्य' कहकर पाद सेवन भक्ति का संकेत मिलता है।

एक भक्त जगत्जननी माँ भगवती की पाद सेवन भक्ति में सराबोर होकर मैया के पदारविन्दों का अर्चन करते हुये गाता है—

जगतारन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।
हिंगलाजन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।
काहे के पटली मैया आसन डारो।
सो काहे के पखारों दोई पांव।
हिंगलाजन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।
चन्दन पटली मैया बैठन डारों।
सो दुधुआ पखारों दोई पांव।
०० ०० ००
दूब देख माई अगना में लाई
पूत देख मुसकानी।
सुमर सुमर माई तोरो जस गाऊँ
तोरे चरनन छोर कहां जाऊँ
जगतारन आ गई मोरे पाहुनी हो माय।

(५) अर्चन : अपने श्री प्रभु की श्रद्धापूर्वक अर्चना करना भी भक्ति का ही एक लक्षण है।

ऋग्वेद ८/९२/१९ में इन्द्राय मद्वने तथा सामवेद पूर्वा. ४/२/३/३ में अर्चन प्रार्चत मन्त्र से अर्चन भक्ति का दर्शन होता है।

एक भक्त अपने पूज्य श्रीकृष्ण जी का स्मरण करते हुये उनकी अर्चना करते हुये विनम्र भाव से कहता है —

कब मोरे मन्दिरवा आयहौ प्यारे घनस्यामा प्रभू।
सिर पर सुन्दर मुकुट सम्हारी कानन कुण्डल की बलिहारी
उर में माल विसाल सुधारी संगै सखा लिये दो चारी
सूखा सूखा प्रेम से पायहो, प्यारे घनस्यामा प्रभू।
०० ०० ००
जैसी खुसी द्रोपदी दीनी, जैसी कुबरी अपनी चीनी।
ऐसे हमको कभी अपनाय हो, प्यारे घनश्यामा प्रभू।

अर्चना करते समय भक्त अपने प्रभु की सुन्दर छवि के समक्ष अपने श्रद्धा प्रसून अर्पित करता है। भोग परसादी अर्पित करता है और प्रभु की छवि में अपने मन को एकाग्रचित करके अपने स्व को भूलकर पूर्णरूपेण समर्पण का भाव बनाता है।

(६) वन्दन : जब कोई अतिथि अथवा हमारा प्रियजन हमारे घरों पर आता है तब उसका वन्दन करके, हम उसका स्वागत करते हैं। ईश्वर को भी अपने घरों पर सर्वमंगल हेत बुलाने के लिए जब वन्दन किया जाता है तब वह ईश्वर भक्ति का एक स्वरूप बन जाता है।

सामवेद पूर्वा. २/१/५/३ में समस्य मन्यवे तथा अथर्ववेद २०/१२१/१ में अभित्वा शूर नोनुम: कहकर वन्दना भक्ति का निरूपण किया गया है।

यही वन्दना भक्ति बुन्देली गीतों में भी हमें दिखलाई

पड़ती है। श्री हरि सेवक मिश्र ने वन्दना भक्ति का सुन्दर सृजन करते हुये लिखा है –

हरि बरनन करि वन्दना, बन्दत चरन महेस
कन्ठ बसहु मम सारदा, उर मंह बसहु गनेस
सरसुति बन्दौ चरन तुव, हुऔ मोहि सहाय
कथा अपूरब बरनिहौ, सो सुनि जगत सिहाय।

वन्दना भक्ति की पतित पावनी गंगा जब प्रभावित होती है तो मन आनन्द विभोर होता है और हृदय गद्गद् होकर आराध्य के सानिध्यरूपी प्रचण्ड सागर में गोते लगाने लगता है। नवधा भक्ति का यह स्वरूप आत्मीयता का पर्याय बनकर नर और नारायण के साक्षात्कार प्रदान करता है।

(७) दास्य– दास्य भक्ति बड़ी विलक्षण भक्ति है। श्री हनुमान जी की मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के प्रति जो भक्ति थी वह भाव भक्ति का अनुपम उदाहरण है। अपने आराध्य को स्वामी मानकर स्वयं को उनके समक्ष दास भाव में प्रस्तुत कर जो आराध्य की सेवा की जाती है वह नवधा भक्ति का एक अति सुन्दर लक्षण है।

अथर्ववेद २०/११२/१ में 'यदद्य कच्च' तथा सामवेद पूर्वा. २/१/४/९ में 'आ/घा' ये मन्त्र आये हैं जिनसे दास्य भक्ति प्रकट होती है।

दास भाव से ओत प्रोत भक्त पर जब प्रभु का अनुग्रह होने में विलम्ब होता है तो भक्त का मन छटपटाने लगता है। एक गोपिका श्री कृष्ण के विषय में कहती है –

जिनके हम दासी बेई न मिले
माथे मुकुट हरि के अधिक विराजे
कलियन बीच बसा लई हरि कासी, बेई न मिले।
अंखियन सुरमा हरि के अधिक विराजे
भौहंन बीच बसा लई, हरि कासी, बेई न मिले।
कानन कुंडल हरि के अधिक विराजे
लटकन बीच बसा लई हरि कासी, बेई न मिलै।
गले माला हरि के अधिक बराजे
लाकिट बीच बसा लई हरि कासी, बेई न मिले।
हाथन कौंची हरि के अधिक बिराजे,
मुतियन बीच बसा लई कासी, बेई न मिले।

(८) सख्य – मित्रता में मित्रों के मध्य कोई दुराव अथवा छिपाव नहीं होता है। इसी प्रकार से जब बिना कुछ भी छुपाये हम अपना हृदय ईश्वर भक्ति में लगा देते है तथा मित्र भाव से उसके साथ व्यवहार करने लगते हैं तो सख्य भक्ति बन जाती है। ऋग्वेद ४/१७/९ में सख्य भाव भक्ति के विषय में कहा गया है –

अस्य प्रियासः सख्ये स्याम।

सखा भक्ति भाव की पृष्ठभूमि पर जब ईश्वर की अनुरक्ति अवतरित होती है तो मन मयूर सावन की झड़ी की भाँति नृत्यरत होकर अति उत्साहित आनन्द में हिलोरें लेने लगता है। एक सखी अपने सखा श्री कृष्ण के विषय में कहती है–

मन भावन राज किशोर सखी री
यार हमारो सांवरो
हरी हां री सखी री सुख सागर जब से लखो
मोहि छिन पल परत न चैन
अरी हां री सखी री विरह पीर दिल में उठे
कोऊ नैन देय दिखाय
अरी हां री सखी री जो जस मानो बहुत के
सखि छेल छबीले मिलाहि
सखी री यार हमारो सामरो।

अपने सखा से मिलन की छटपटाहट जहाँ इन पंक्तियों में दिखलाई पड़ती हैं वहीं सखा भाव भक्ति की पराकाष्ठा को भी पीछे छोड़ते हुये एक सखी कहती है –

भई ने बिरज की मोर सखी री
कौन बन उड़ती रे, कौन बन चुनती, कौन बन करत किलोर
मथुरा उड़ती रे, गोकुल चुनती, मधुबन करत किलोर
विन्द्रावन की सकरी गलियैं, कड़ती पंख ककोर
उड़ उड़ पंख गिरे धरती पै, बीनत जुगल किसोर
चन्द्र सखि भज बाल किसन छब छलिया जुगल किसोर
सखी री मैं तो भई नै बिरज की मोर

(९) आत्म निवेदन : ईश्वर के साथ एकाकार हो जाने का आत्म निवेदन जब होता है अथवा आत्मा परमात्मा की उत्कट अभिलाषा जब मानव मन के मन्दिर में अवतरित होती है तभी आत्म निवेदन भक्ति का अभ्युदय होता है। इस अभ्युदय से अनभिज्ञ भक्त प्रभु के साथ एकात्मता स्थापित कर लेता है –

श्वेता. उ. ६/१८ में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति को मुमुक्षुवै शरणमंह प्रपद्ये कहकर दर्शाया गया है।

वाणी की अधिष्ठात्री देवी शारदा एवं विघ्न विनाशक श्री गणपति कर स्तुति करते हुये यह आत्म निवेदन किया जाता है कि कुबुद्धि का हरण हो। सद्बुद्धि प्राप्त हो एवं कृपा दृष्टि बनी रहे –

सरसुति बन्दौ तोहि, सिया रघुवर अरु सारदा
सुबुधि दीजिये मोंहि, हरि अज सुरपति सहित
श्री गनपति गननाथ, सेवक पर कीजे कृपा
जोरि जुगल निज हाथ, बार बार बिनती करहुं।।

भक्त अपने भगवान के सामने बिल्कुल निर्भीक हो जाता है। वह किसी की भी परवाह नहीं करता। उसका केवल यही निवेदन रहता है कि उसके भगवान की कृपा दृष्टि सदैव उस पर बनी रहे। एक भक्त माँ भगवती के समक्ष आत्म निवेदन करता हुआ कहता है –

तेरे प्रसाद रहौं सहलाद, करौं परवाह नहीं नरनाह की।
हे जगदम्ब तुम्हीं अवलम्ब, हमारे उछाह को ओर उमाह की।।
वानी भवानी तुहीं बिनती, कवि जानकी के है यही चित्र चाह की।
और कछू न चहौ जननी, कृपा कोर चहौ बस तेरी निगाह की।।

नौ भाव रसों से अभिसिंचित भक्ति में ही पुण्य मोक्ष जैसे फल लगते हैं जो भक्त को कैवल्यता प्रदान कराकर चराचर जगत के आवागमनीय माया जाल से मुक्ति प्रदान कराते हैं।

– निदेशक, बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई □

गोरी-धना किसान की

— कल्याण दास साहू 'पोषक'

भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।
सती—सुलच्छन, छैल—छबीली, है—बुन्देल महान की।।

भुका—भुके सें ओरैं चकिया, चून पीसबै मनकौ।
'घर कौ पिसौ पुसाबै' संगै, माँ देखत पइसन कौ।।
सूरत देखैं कभउँ न स्यानीं, चकिया बाई दुकान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

नानौं नाज पीसबै नानौं, टटो—टटो कैं दानौं।
जल्दी—जल्दी भाँवै चकिया, जी कौ नईं ठिकानौं।।
गारीं गावै बन्न—बन्न कीं, मधुर सुरीली तान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

चार चोंइं कौ चून पीसबै, दो कौ दरबै दन्नौं।
रोंन लगै इतने में जो कउँ, राइ भरौ—सौ 'नन्नौं'।।
झटपट उयै लगा छाती सें, मूरत बनत महान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

पुटया—पुटया दूद पिआबै, हाँत मूड़ पै फेरै।
'हाँतन में जिउ आवै' ऊकौ, लाल दुखी मन हेरै।।
'नजर उतारै' धुवाँनि देवै, 'वा' निसदिन अजवाँन की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

उतै सार में अगर रमावैं, बछवा और पड़ेऊ।
बेड़ा में मिमियावैं ऐनइं, छिरियन के बुकड़ेऊ।।
समझ लेत है माँ की ममता, भाषा बिना जुबान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

भुन्सारे कौ दूद बेंचवै, लौटी जोर जमावै।
आँते—रोजै दई बिलोवै, मठा महेरी खावै।।
पाई—पाई धरै जोर कैं, चिन्ता कन्यादान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

कथरी ओढ़ें परौ रबूदा, झटपट उयै जगावै।
लैजा बेटा रखत हार में, पुटवा कैं समजावै।।
रोटी पकरा देत हाँत में, कोदे कुटकी धान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

बखरी पौर, दुआरौ, बेड़ा, गलियारौ तक झारै।
गोबर—लैंड़ी, कूरा—करकट, सब घूरे पै डारै।।
करत सफाई जतन—जतन सें, घर—बाहर गोठान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी धना किसान की।।

निसदिन भरै रखत के लानें, दस—दस खेपैं पानीं।
स्याँनी बिटिया खों सिखलावै, जबरइं रोटी—पानी।।
घर कौ पूरौ काम सिखावै, संगै बातें ग्यान कीं।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

उम्दा खैबौ रोज बनावै, ब्याद समझ ना टारै।
राइ—भरे खों लै कैं कइंयाँ, जात फटाफट हारै।।
रखवारी उजरा ढोरन सें, करै खत—खरयान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

तातौ खैबौ 'उनैं' खुआंवै, सद्द पिआबै पानी।
हँसी—खुसी की बातें करवै, मीठी बोले बानी।।
ऐसी सेवा करत बलम की, जैसी 'देइ—दिमान' की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

दिन भर काम करत खेतन में, घरवारे के संगै।
फुरसत में आँचर कौ लरका, लगा लेत है अंगै।
ढिक दैबे भर ल्यात पोतनी, घोरा—घाट खदान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

जेठ मास कौ घाम न आँसै, चौमासौ, जड़कारौ।
लपट, ततूरी उमस न आँसै, कीचा, ठण्ड, तुषारौ।।
बाबा—बिच्छू भूत—प्रेत औ, ना दैसत तूफान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।।

लौलइंयन 'वा' घर खौं लौटै, तौउ हार ना मानें।
साँदी करकैं धरै रतेबा, सबइ रखात के लानें।।
दुनियाँ भर कौ काम बटोरै, नइंयाँ फिंकर थकान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

हड़िआ भरी महेरी बनवै, रोटीं पैबै न्यारी।
हँसी—खुसी सें होवै सबकी, ठेलम ठेला ब्यारी।।
खूबइं अटर—खुसामद करबै, सास—ससुर—सन्तान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

जाँगन—ताँगन करै बिछौना, झटपट सबखों पारै।
कथरी फटी बिछाकें खुदखों, दूबर धुतिया डारै।
'पोषक' सुघर नारि छनकीली, घरवारी नादान की।
भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।

भौतइं मैंनत करत 'रातदिन', गोरी—धना किसान की।
सती—सुलच्छन छैल—छबीली, है — बुन्देल महान की।।

— 'शरद कुन्ज' किले के पास, पृथ्वीपुर, (टीकमगढ़) □

संकल्प व्रत - कार्तिक स्नान

– डॉ. (श्रीमति) मधु श्रीवास्तव

बुन्देलखण्ड अंचल में विभिन्न अवसरों पर यहाँ की परम्पराओं, लोकाचारों और संवेदनाओं के भाव मुखरित हो उठते हैं। बुन्देली लोक जीवन धार्मिक भावनाओं और आस्थाओं से ओतप्रोत हैं। लोक जीवन से प्राप्त गहन अनुभवों में अनेकों धार्मिक आख्यान और वार्तायें सम्बद्ध रहती हैं। ईश्वर कण–कण में व्याप्त है। लोक में व्याप्त ईश्वर की आराधना प्रत्येक आराधक के हृदय में आराध्य भाव उत्पन्न करती है। श्रद्धा भक्ति से नियम पूर्वक किया गया पूजन अर्चन ईश्वर से समीपता का भाव उत्पन्न करता है। ऐसे ही भाव 'कार्तिक स्नान' करने वाली महिलाओं में भी दिखता है। बुन्देलखण्ड में कार्तिक माह में परम्परायें, आचार–व्यवहार और मानवीय संवेदनायें जीवंत हो उठती हैं। कृष्ण–गोपियों के प्रेम की संवेदनात्मक अनुभूति को आत्मसात किये महिलायें मास पर्यन्त कार्तिक–स्नान का संकल्प लेती हैं। पूरे कार्तिक माह में ब्रम्हमुहूर्त में स्नान के साथ प्रतिदिन नवीन विधान व्रत, पूजन और कृष्ण–गोपियों के हास–परिहास सम्बन्धी प्रसंग भी होते हैं।

कार्तिक स्नान करने वाली स्त्रियों को बड़ी उत्सुकता से कार्तिक माह की प्रतीक्षा रहती है। यह स्नान तन–मन की शुद्धता के साथ किया जाता है। इस कारण स्त्रियों का परिवार भी उनके कार्तिक स्नान संकल्प में सहयोगी बनता है। गृहस्थ जीवन में रहते हुये भी स्त्री कृष्णप्रिया बन जाती है। उनके हृदय के उद्‌गार शब्दों का रूप ले लेते हैं वे कृष्ण के सानिध्य के लिये ब्रज की मोर बनना चाहती हैं –

भई न बिरज की मोर सखी री मै तो भई न बिरज....
काँहां रहती, काँहा चुनती, काँहा करती किलोर, सखी ....
मथुरा रहती विन्द्रावन चुनती गोकुल करती किलोर, सखी ....
विन्द्रावन की सकरी गलियाँ, उड़ती पंख सकोर, सखी ....
उड़–उड़ पंख गिरें धरती में सो बीनत नंद किसोर, सखी ....
उन पंखों को मुकुट बनाओ, सो बाँधत नंद किसोर, सखी ...
चंद सखी भज बालकृष्ण छब, छलिया जुगल किशोर,
सखी री मै तो भई न बिरज की मोर।

बुन्देलखण्ड में कार्तिक स्नान करने वाली स्त्रियों को 'कतकियारीयाँ' कहा जाता है। यह शरद पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर कार्तिक पूर्णिमा तक कृष्ण के प्रति समर्पण भाव, मनोकामना पूर्ति, सुख–समृद्धि तथा बैकुण्ठ प्राप्ति की सदिच्छा संजोये "संकल्पव्रत' है।

कार्तिक स्नान की पृष्ठभूमि में श्री मद्‌भागवत की कथा के अनुसार द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण के विश्व मोहक स्वरूप पर ब्रज की गोपियाँ आसक्त भाव रखतीं थी। कृष्ण प्राप्ति के संकल्प से गोपिकाओं ने हेमन्त ऋतु के प्रथम मास मार्ग शीर्ष में देवी भद्रकाली का पूजन किया। वे सूर्योदय से पूर्व समूह में कृष्ण प्रेम के गीत गातीं यमुना जल से स्नान कर वहीं यमुनातट पर बालू से देवी–कात्यायिनी की मूर्ति बनाकर पूजा करतीं थी। एक दिन भगवान श्री कृष्ण ने उनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से स्नान के समय गोपियों के वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर बैठ गये। गोपियों की अनुनय–विनय तथा अगाध प्रेम के वशीभूत होकर श्रीकृष्ण ने उनके वस्त्र वापस दे दिये और आने वाली शरद ऋतु में उन सभी के साथ विहार करने का आश्वासन दिया।

शरदपूर्णिमा से कार्तिक कृष्ण तृतीया तक शुभ–मुहूर्त में कार्तिक स्नान करने वाली स्त्री 'गठिया' बाँधती है। वे सूर्योदय से पूर्व समीप के किसी जलाशय या नदी में स्नान करती है। नई धेती या साड़ी के छोर में अथवा नये कपड़े में थोड़ा जवा, चावल के दाने, एक सुपारी, तिल, पैसा, पंचरत्नी (सोना, चाँदी, ताँबा, मोती मूँगा) और अग्गासिया का फूल रखकर 'गांठ' बाँधी जाती है। प्रतिदिन स्नान करते समय गांठ का भीगना अनिवार्य होता है। व्रत के समापन पर गाँठ में कुश (अंकुरण) नहीं फूटने चाहिये अन्यथा व्रत सच्ची श्रद्धा से नहीं किया गया ऐसा माना जाता है। दिन में केवल एक बार भोजन या फलाहार का विधान होता है जिसमें अनेक वस्तुये निषिद्ध भी होती हैं। मास में रविवार, मंगलवार और एकादशी को केवल फलाहार किया जाता है।

स्नान से पूर्व जल में चावल डाले जाते हैं इसे 'जल जागरण' के रूप में माना जाता है। स्त्रियाँ चावल डाल कर कहती हैं –

जल ताते, जल सीरे
जल में कच्छ, मच्छ बियाँय
कच्छ मच्छ तुम लेव अहार
हमखों देव बैकुण्ठ बहार

बुड़की लेते समय कहती हैं –

तपिया खों तपकी पुण्य, हमें राधाकृष्ण की बुड़की की पुण्य।

स्नानमाह में अगर संभव हो सका तो महिलायें घाट बदल बदल कर स्नान करती हैं। 'दुनव' नदी जहाँ से नदी की दो धारायें निकलती हैं वहाँ का महत्व ज्यादा होता है। बाँधी हुई गठिया सहित बुड़की ली जाती है। वे सूर्य, श्रीकृष्ण की ओर अर्घ्य देती हैं। और कहती हैं –

पान सुपारी नारियल और कनेर के फूल,
अरग लेओ सूरज नारायण, निर्मल होय शरीर।

जल से बाहर निकलकर गीले वस्त्र धारण किये ही व्रत के लिये निर्धारित पूजन करती हैं। वे छोटे–छोटे समूह बना

लेती हैं। वे नदी के तट पर मिट्टी का चबूतरा बनाती हैं। चबूतरे पर सफेद या पीला वस्त्र बिछाकर उस पर बालू से राधा कृष्ण के प्रतीक चित्रित किये जाते हैं। उस चित्रण की पूजा चंदन, अक्षत, तुलसीपत्र तथा पुष्प आदि चढ़ाकर की जाती है। वे कृष्ण जागरण के गीत गाती है —

उठो मेरे हरजू भये भुनसारे, गऊअन के बंद खोलौं सबारे।
कंचन गडुआ राधा भर ल्याई, दातुन करौ मेरे कुंज बिहारी।
ततहंड नीर सुगंध उबटने, अंग उबट असनान कराये।
पीताम्बर धोतीं पहराई, मलयागिरि के तिलक लगाये।

माखन, मिश्री, दही आदि का प्रसाद चढ़ाने के उपरान्त वे ठाकुर जी की आरती करती हैं —

आरत मंगल तेरो जस गाऊँ, तेरे जसगाऊँ।
महाफल पाऊँ, बिमल बिमल श्याम तेरो जस गाऊँ।

ठाकुर जी की परिक्रमा करते हुए गाती हैं —

दुबधा कब जैहै जा मन की,
इन पायन परकम्मा दे हों छाया गोबरधन की।

समूह की स्त्रियां घेरा बांधकर चित्रित वस्त्र को पकड़कर पालने की तरह झुलाती हुई गातीं हैं —

अपने गोपाल जी खों पलना पार झुलादेऊँ री।

चित्रित वस्त्र को लेकर वे थोड़ी दूर तक चलती हैं उसे श्री कृष्ण की रथ यात्रा कहा जाता है। वे गाती हैं —

रथ ठाड़े करियो स्याम संगै हमई चलहैं।
तेरी ऊँची नीची घटियाँ को चढ़हैं।
मेरी पतरी सी करिहा लचक जैहै।

इसके बाद चित्रित वस्त्र की सामग्री जलाशय में विसर्जित कर केवल पूजन का तुलसीपत्र प्रसाद स्वरूप रख लिया जाता है। पूजन वाले वस्त्र (चीर) को निचोड़कर उससे प्राप्त जल को चरणामृत की तरह लेती है। पूजन सामग्री विसर्जन समय पर वे गाती हैं —

कूँद परै गिरधारी लाल कूँद परै जमना में
आउतन—आउतन सबनें देखे, कूंदत काउ न देखे गिरधारी

दिन विशेष के अनुसार सप्तवार कथा सुनी जाती है। एकादशी को एकादशी कथा तथा प्रतिदिन कार्तिक महात्म्य सुना जाता है। कथा पंडित तथा पंडिताइन सुनाती हैं।

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी से कार्तिक शुक्ल द्वितीया तक कृष्ण जी का 'हिरा जाना' (खो जाना) माना जाता है। गोपी रूपी स्त्रियाँ कृष्ण को ढूँढ़ने के लिये प्रतिदिन अलग—अलग जलाशयों पर जाकर स्नान करतीं हैं और विरह गीत गाती हैं —

तुम बिन स्याम बनही बन भटकी
ब्रिन्दावन भटकी,
बागन गई ती सुरत नइयाँ तन की
सो जब सुध आये, मोहे कलियां टोरन की
तुम.........

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को 'मौनी परमा' को मौन धारण कर 'कतकारियां' मौन धारण कर तालाब पर दिया जलाती हैं जिसे 'मौन दिया' कहते हैं। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को ही वे भोज का आयोजन करती हैं जिसे 'राधा—दामोदर' कहते हैं। इस दिन पति—पत्नि की जोड़ियों को भोजन कराया जाता है इस कारण इसे 'जोड़ी करना' भी कहते हैं। जोड़ी की संख्या एक से तीस तक हो सकती है। भोजन के बाद सुहागन स्त्रियों को सुहाग सामग्री, पान का बीड़ा, फूलों का हार आदि दिया जाता है। यदि 'कतकारी' हो तो केवल पान का बीड़ा और हार ही बाँटती है।

कार्तिक शुक्ल तृतीया को श्री कृष्ण मिल जाते हैं यह मानकर विरही कतकारियाँ अपने जलाशय पर जाकर पूजन करती हैं जहाँ पहले दिनों में स्नान किया था। कार्तिक शुक्ल नवमीं (इच्छानवमीं) को सभी स्त्रियाँ आंवले के वृक्ष का पूजन कर उसके नीचे बैठकर इच्छानुरूप भोजन करती हैं। जिन दिनों में श्रीकृष्ण खो जाते हैं तब घर लौटते समय स्वाँग करने वाले कतकारियों को श्रीकृष्ण का रूप धारण कर छेड़ते हैं। बहरूपिया कभी कभी महिला भी बन जाती है। कृष्ण रूपी कहता है —

दान दिये बिन जान न पैहो, सुनिये सखी सयानी
चाहे साँझ यही हो जावे मैने मन में ठानी।

सखी उत्तर देती है —

दान तुम्हें नहिं दैहे लालन चाहें सो हो जाई
जाय कहे हम बाबा सौं, डग रोकत मोरी कन्हाई।

इसी प्रकार दधि का दान भी गीत के माध्यम से माँगा जाता है—

संग सखा ये जुरे सबरे अब आज मिले हैं
तो माखन खैहैं........
रार परी मारग में एक व्रज नागरि सों
रोको न डगर कान्ह दान दधि पैहो ना........

कृष्ण लीला में गोपियों का चीरहरण प्रमुख है उसका भी लोकगीतों के माध्यम से वर्णन किया जाता है —

लै गओ चीर मुरारी मोरे हर लै गये चीर मुरारी
लै के चीर कदम पर बैठो, मैं जल माँझ उघारी
चीर हमारो दे दे मन मोहन, न मै दै हों गारी मोरो
चीर तुमारे जब हम दै हैं हो जाव जल सें न्यारी
जो हम जल से न्यारे हुइये सो लोग हँसे दें तारी
लोग हँसें सो हँसन दे राधा हम हैं पुरूष तुम नारी
मोरो हर लै गओ चीर मुरारी.........

गोपियों को छेड़ने वाले ग्वाल—बाल कुछ दान—दक्षिणा लेकर कतकारियों का मार्ग छोड़ देते हैं। कार्तिक स्नान व्रत का उद्यापन कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को किया जाता है। कार्तिक स्नान समाप्त होने पर उद्यापन भी किया जाता है। राधा—दामोदर की जोड़ी करना उद्यापन का छोटा रूप माना जाता है। इसलिये जो महिलायें उद्यापन नहीं करना चाहती वे जोड़ी करती हैं।

कार्तिक शुक्ल एकादशी अर्थात देव प्रबोधनी एकादशी से कार्तिक पूर्णिमा तक 'पंच मिकें' मानी जाती है। इसमें कतकियारियाँ अन्न छोड़कर केवल फलाहार करती है। परन्तु इस बीच अगर कृतिका नक्षत्र रहता है तो उतने समय तक महिलाओं को निर्जला व्रत रखना पड़ता है। पूर्णिमा के दिन

स्नान व पूजन के बाद आटा या बेसन से निर्मित और तेल या घी में सिके हुये भवन के निर्माण की सामग्री बनाती है जैसे दीवारें, खिड़की, दरवाजे, ठाट, बडैरे, कुरैयाँ और खपरा आदि। इन सामग्रियों से चबूतरे पर ठाकुर जी का 'घर–दुआर' बनाया जाता है फिर पूजा की जाती है। भगवान श्रीकृष्ण की प्रिय सामग्री–बाँसुरी, लकुटी, मुकुट और गेंद आदि भी भवन सामग्री के समान तैयार की जाती हैं। मोइन डालकर एक पूड़ी बनती है जिसे 'लाल कुचैया' कहते हैं। इसका भी प्रसाद लगाया जाता है। पत्तल पर विविध व्यंजन रखकर ठाकुर जी को भोग लगाया जाता है।

कार्तिक पूर्णिमा को पंडित आकर विधि पूर्वक पूजन कराता है और कार्तिक स्नान की संकल्प गाँठ खोलता है उसमें बँधी सामग्री ब्राह्मण को दान स्वरूप दे दी जाती है।

जो स्त्रियाँ पहली बार कार्तिक स्नान करती है वे इस दिन अपने पति के साथ गाँठ बाँधकर 'बछिया' का पूजन करती हैं, यह पूजन पंडित कराता है। कार्तिक स्नान में तुलसी का बहुत महत्व है कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा से कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तक प्रतिदिन कतकियारियाँ जलाशय से लौटकर घर पर शाम सबेरे तुलसी का पूजन करती हैं और तुलसी घरे पर दीपक रखती हैं, और प्रर्थना भी करती हैं –

तुलसा महरानी नमो नमा, हर की पटरानी नमो नमा
कौन से मईना में भई तेरी पूजा
सो कौन से मईना भई हरियाली, नमो नमा.....
कातक के मईना में भई तेरी पूजा,
सो अगहन मास भई पटरानी, नमो नमा........
क्वाँरी गावे घर वर पावे, सो तरनी पुत्र खिलावे
बयाही गावे लाल खिलावे, सो लाल अमर तेरा हुआ महारानी
तुलसा रानी........

मार्ग शीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को प्रातःकाल कतकियारियाँ उसी जलाशय पर स्नान करने के पश्चात् अपनी सखियों को बेर, मकोरा, सिंघाडे, चना की दाल, अमरूद और गन्ने की गड़ेरी बाँटती है। इसे ग्वाल चबैनी कहते हैं।

कार्तिक स्नान का साक्षी गणेश को बनाया जाता है। इस कारण मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थी को कार्तिक स्नान करने वाली स्त्रियाँ गणेश चतुर्थी का व्रत रखकर उस जलाशय पर स्नान करती हैं जिस पर वे पूरे कार्तिक मास का स्नान करतीं रही हैं। वे पूजन की सामग्री तथा पूजन के चबूतरे की मिट्टी को जल में विसर्जित करती हैं। पूजन में प्रयुक्त पात्रों को जलाशय के जल से धोकर घर लौटती हैं और सुमधुर स्वर में कृष्ण प्रेम का गीत गातीं हैं –

हिल मिल के बिछुड़ जिन जाओ कन्हैया प्यारे
दिन दिन लगत सुहावनों

इसी के साथ वे आगामी कार्तिक माह की प्रतिक्षा तथा कृष्ण मिलन की आस लिये घर लौट जाती हैं।

–३८०, बी, सिविल लाइन्स, झाँसी उ.प्र. ☐

बुन्देली कवित्त :

फागुन

– डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक'

माव सुदी पाँचें ऋतुराज की सबारी सजी,
बढ़न लगी गली–गली, पौन पै बिराजौ है।
बेला की चौंर डुलत, छत्र लगो चम्पा कौ,
गजरा गुलाब लाल, गेंद मौर साजौ है।
सरसों के फूल बिछे, पाँवड़े बसंती से,
तितलन कौ नाच होत, भौंरन कौ बाजौ है।
कलियाँ सब उचक–उचक, देखें ऋतुराज रूप,
लग न आय नजर कऊँ, उमर कौ तकाजौ है।।१।।

महक सें करोंदी की, बौरा गये आम्र कुँज,
फागुन की हवा लगत, बालें गदराई हैं।
चम्पा की गंध कहत, मीठे से बोल कछू,
बेला की बोंड़न की, बोंड़ी मुसकाई हैं।
भोर सें चमेली, रसभीनी सी हँसी हँसै,
रसिया के मनै, रातरानी मन भाई हैं।
टेसू सी खिलन लगीं, बाँछें अब फागुन कीं,
राई नची तितलन जब, भमर फाग गाई हैं।।२।।

फागुन के लगत देह, चम्पा बन मैंक उठत,
गोरिन की ऐंड़ाई, पौन बनी डोलें हैं।
मन की आवाजें धर, कोइल की कूक रूप,
बागन बौराई सी, आमन सें बोलें हैं।
गालन के गुलाब भये, ओंठन के टेसू भये,
आँखें इसारन सें, मीठे रस घोलें हैं।
भौंरा बन गुन गुनांय, छैल की उमंगे जे,
अंग–अंग फूल की, दुकानें सी खोलें हैं।।३।।

फागुन के लगत हवा, लैन लगी ऐंड़ाई,
बंदना से खुलन लगे, मौसम अलबेलौ है।
बाट तकत खिरकिन हो, बैठो रओ मावो भर,
ठन्ड के लिहाजन रओ, दूर–दूर मेलौ है।
शंकर सें गौरा की, होत सी सगाई आव,
धर कें फुलवाद मूँड़, मालिन कौ चेलौ है।
गुद गुदाय देत सबै, फूलन सें फगुना जौ,
भौंरन उकसाय देत, रूप कौ झमेलौ है।।४।।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ ☐

उनकौ जीवन तौ 'अनमोल' है
पै इन्सानियत सो 'गोल' है।
oo oo oo
वे, एकई बात खों उलट–पलट कें घुमा रये हैं।
लगत है अबै के, 'नेतन' कौ 'फार्मूला' अपना रये हैं।
– किशोरी लाल गुप्त, पचोर वार्ड, शाहगढ़, सागर ☐

बुन्देली बोली की साहित्यिक भाषा : समस्याएँ और समाधान

— पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

विन्ध्य–पर्वत श्रृंखला का विस्तार दूर–दूर तक फैला हुआ है। इस फैलाव वाले क्षेत्र के रहवासी आदिकाल से जो भी टूटी–फूटी बोली बोलते रहे हैं, उस बोली ने देशकाल–परिवर्तन के कितने ही उतार–चढ़ाव देखें, और उन परिवर्तनों में समय–समय पर वह नये नामों से भी पुकारी व पहचानी गई। कभी तो उसे प्राकृत अथवा अपभ्रंश की श्रेणी में पहचाना गया तो कभी विन्ध्य–पर्वत–श्रृंखला के सानिध्य के कारण विद्वानों ने उसे 'विन्ध्याटवी' भी कहा। देश में ऐसी अनेक बोलियाँ पहचान में आई जिन्हें सुव्यवस्थित कर भाषायी संस्कार देकर व्याकरण बद्ध करने का प्रथम प्रयास महर्षि पाणनि के द्वारा जब किया गया तो उसे 'संस्कृत' कहकर पुकारा गया। पाणनि पूर्व ऐसी कोई संस्कृत नहीं थी कि हम संस्कृत को आदि भाषा कहकर यह फतवा दे दें कि शेष सभी बोलियाँ व भाषाएँ संस्कृत से निकली है। जैसा कि लोकगायक स्व. अमरदान गाते रहे कि–

'ऐसी नोंनी लगत बुंदेली,
ससकिरत की बिटिया है
जो ब्रज की सहज सहेली..'

परन्तु यथार्थ में संस्कृत पाणनि पूर्व की जिन प्राकृत और अपभ्रंश बोलियों से निकली है उनमें बुन्देली जैसी अनेक आंचलिक बोलियां पहले से मौजूद थीं। अत: बुन्देली संस्कृत की बेटी कदापि नहीं हो सकती है 'पुरखा' अवश्य है।

> बुन्देली बोली और बुन्देली बोली की साहित्यिक भाषा के बीच अन्तर की सीमा रेखा आज आवश्यक हो गई है। बुन्देली एक भाषा के रूप में विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में भी अब स्थान प्राप्त कर चुकी है। इस कारण रचनाधर्मियों को बुन्देली बोली के क्षेत्रीय प्रभावों से ऊपर उठकर साहित्यिक भाषा का रूप निखारना चाहिए। इसी अंक में बुन्देली बोली पर भाषा वैज्ञानिक धरातल पर अति टैक्नीकल आलेख 'माधुरी बोली बुन्देली' भी हमने प्रकाशित किया है जो बोली के स्तर पर उसके लालित्य और मिठास पर प्रकाश डालता है। प्रस्तुत आलेख में बुन्देली को बोली और क्षेत्रीय प्रभावों से ऊपर उठाकर उसे साहित्यिक भाषा का रूप देने पर बल दिया गया है। जो बुन्देली के रचनाधर्मियों के लिए प्रेरक और उपयोगी सिद्ध होगा।
>
> —सम्पादक

जब कोई बोली विकसित होकर बोली से विभाषा और फिर संस्कारित होकर 'भाषा' का रूप धारण करती है तो उस भाषा में साहित्य की सर्जना होने लगती है। बोली और भाषा में जो अन्तर हम देखते हैं वही अन्तर 'लोकसाहित्य' और 'साहित्य' के बीच होता है। लोक साहित्य अपनी मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहा है। जबकि 'साहित्य' लिपिबद्ध होकर हजारों वर्ष का दस्तावेज हैं। मौखिक परम्परा में देशकाल–परिवर्तन का प्रभाव होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। ठीक यही बात 'बोली' के लिए भी लागू होती है कि वह भी अपनी मौखिक परंपरा में पीढ़ियों से यात्रा करती आती है तो बोली के टोन में यदि देशकाल–परिवर्तन का प्रभाव दिखाई दे जाए तो आश्चर्य क्या? समय–समय पर पाणिनि की भांति इन बोलियों को भी लिपिबद्ध कर उसे भाषायी संस्कार रचनाधर्मियां ने देकर साहित्यिक भाषा का रूप संवारा है। निश्चय ही साहित्यिक भाषा का रूप संवारने का कार्य राज दरवारों के संरक्षण में फूला–फला है।

डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी का यह मानना तब एकदम गले उतरता है कि मध्य युग में मध्यदेशीय बोलियों को साहित्यिक भाषा के रूप में ग्वालियर के तोमरों के शासन काल में निखारा गया। जिसे 'भाखा' (भाषा) नाम से जाना जाता था। ग्वालियर के तोमरों के पतन के पश्चात् आश्रय–विहीन रचनाधर्मी ग्वालियर से जब चले गये तो साहित्य–लिखने वाली वह ग्वालियरी झरना भी अपने साथ लेकर गए। कुछ तो वृन्दावन पहुंचकर भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में लीन हुए और उसी समय ओरछा में बुन्देलों का अभ्युदय हो रहा था तो कुछ रचनाधर्मी ओरछा–राजदरवार में आश्रय पा गए। ग्वालियरी उसी 'भाखा' पर यदि वृन्दावन पहुंचने पर यमुना के पानी का असर हुआ तो ओड़छा में बेतवा के पानी ने भी अपना असर अवश्य दिखाया अर्थात् उसके टोन में 'विन्ध्याटवी' चढ़कर बोली ही। बुन्देला शासकों ने उसे 'बुन्देली' नाम दे डाला तो उधर वृन्दावन वासियों 'ब्रजभाखा' नाम दे डाला जबकि अपने मूल में साहित्यिक भाषा के रूप में वह ग्वालियरी भाखा ही थी। यही कारण है कि आज की साहित्यिक ब्रजभाषा और बुन्देली में ८० प्रतिशत से भी अधिक शब्द एक ही हैं उनकी व्याकरण भी एक ही है। भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के धरातल पर दोनों में समानता है, मात्र टोन का ही अन्तर ब्रज भाषा और बुन्देली के बीच अन्तर की सीमा रेखा खींच देती है।

ब्रज–क्षेत्र के रचनाधर्मियों ने भाषायी संस्कारों से उसे संस्कारित किया तो 'ब्रजभाषा' राष्ट्रभाषा हिन्दी की मध्य युगीन हिन्दी के राजसिंहासन पर बैठी। परन्तु 'बुन्देली' विष्णुदास, ईसुरी, आचार्य केशव, आदिक इने गिने सु–कवियों को अनदेखा कर लोकसाहित्य के समानान्तर चल पड़ी तो वह साहित्यिक भाषा के रूप में सिंहासनारूढ़ यदि नहीं हो सकी तो कुछ लोगों ने यह शिगूफा भी छोड़ दिया कि चूंकि बुन्देली में गद्य नहीं लिखा गया इसलिए ही उसे भाषा का दर्जा नहीं मिला.... बगैरह कहकर उसकी प्रकृति के विरुद्ध बलात गद्य लिखने का साहस तो किया परन्तु उसके पदलालित्य में भाषाधी संस्कार न दे सके अत: अपेक्षाकृत बुन्देली पिछड़ गई।

ऐसी ही परिस्थितियों में हम–सब पर बुन्देली के प्रति दीवानगी का तूफान आया और हम लोग खूब भागे। परिणाम हमारे सामने है कि आज बुन्देली लिखने वालों की संख्या भीड़

में सुमार हो जाए तो आश्चर्य क्या? स्थिति यह है कि अब बुन्देली विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में भी अपना स्थान बना रही है, बुन्देली कविता में प्रयोगधर्मिता भी उभर कर आ रही है, बुन्देली में इतर भाषाओं से सफल अनुवाद भी हुए हैं आदि। इतना सब कुछ होना भी पर्याप्त एवं सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। अभी भी बहुत कुछ शेष हैं करने के लिए। तभी हमारी बुन्देली एक साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज भाषा जैसी अपनी सहचरी बोलियों के समान हिन्दी–साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकेगी। इसके लिए सिर्फ दीवानगी ही नहीं, गहरे पैठ कर शोध प्रवृत्ति एवं जानने–समझने की जिज्ञासा की अनिवार्य जरूरत भी है। जबकि हम अपनी दीवानगी की सनक में किए कार्यों को ही पूर्ण मानकर उसके पक्ष में ताल ठोकने से भी नहीं चूक रहे हैं, इस ताल ठोकने की प्रवृत्ति से परहेज किए बगैर बुन्देली को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने का हमारा स्वर्णिम स्पप्न पूरा नहीं हो सकेगा।

वस्तुतः बुन्देली पर्याप्त समर्थ है भावों की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए। समृद्ध शब्द सम्पदा बुन्देली के पास है, फिर भी हम तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी और संकर शब्द छोड़कर मूल शब्दों की तोड़–मरोड़ बोली एवं उप बोली का बुन्देली भाषा मानने का भ्रम यदि पालें तो वह बुन्देली के विकास मार्ग को अवरुद्ध करने वाला सबसे बड़ा व्यवधान अवश्य है। 'मैदान' को 'मैदन्ना' रामचरन को 'रमचन्ना' अपनी को 'अपइ' पानी को 'पाँइं' लिखने जैसे प्रयोग बोली को भाषायी संस्कार नहीं दे सकेंगे, भले ही बोली के स्तर पर उनका प्रयोग अंचल विशेष में हो रहा हो। इस अति क्षेत्रीय आंचलिकता से तो ऊपर उठना ही पड़ेगा। बुन्देली रचनाकर बनने की दीवानगी में ऐसा भी देखने को मिल जाएगा कि स्तरीय हिन्दी की शब्दावली के साथ बुन्देली बोली के क्रियापद जोड़कर भी बहुत से लोग बुन्देली रचनाकर होने का दम भर रहे हैं। मानों क्रियापद ही बुन्देली भाषा का निर्माण करने वाले हैं। अतः इस प्रवृत्ति से भी हमें परहेज करने की जरूरत है।

सबसे बड़ी समस्या बुन्देली को उच्चारण के यथा अनुकूल लिखने की है। बुन्देली के अनेक शब्द ऐसे हैं जिन्हें हम उनके उच्चारण के यथा अनुकूल चौकस नहीं लिख पा रहे हैं। एक उदाहरण देखें – 'बुन्देली साहित्य समिति एवं राजकीय संग्रहालय झाँसी के संयुक्त में 'तीसरौ बुन्देली संस्कृति सम्मेलन संग्रहालय की सभा–पौर में आयोजित हो रयौ है।'' इस वाक्यांश में 'संयुत', 'सम्मेलन', 'आयोजित' और 'रयौ' शब्दों पर गौर करें – क्या स्तरीय हिन्दी के 'संयुक्त' शब्द को तोड़–मरोड़ कर 'संयुत' लिख देना ही बुन्देली है? क्या 'हो रयौ' क्रिया पद से जुड़ कर 'आयोजित' शब्द बुन्देली हो गया? क्या 'सम्मेलन' शब्द में बुन्देली माटी की सुगंध है? क्या है? और क्या नहीं है? यह तो हम सब को मिलकर ही विचार करना होगा। व्यक्तिगत मेरी राय में यह मात्र बुन्देली के प्रति अन्धी दीवानगी ही है। क्योंकि बुन्देली को वास्तविक रूप में धाराप्रवाह बोलने की सच पूछो तो हममें योग्यता है ही नहीं। दीवानगी के वशीभूत हम स्तरीय हिन्दी की तोड़–मरोड़ को ही असल बुन्देली मान बैठे हैं। तभी तो 'मैदान' शब्द को 'मैदन्ना' कर देना और पानी को 'पाँइं' कर देने को हमने बुन्देली की भाषा मान लिया। जबकि ऐसे प्रयोग अतिक्षेत्रीय सीमा से बंधे हुए बुन्देली की बोली से भी नीचे उतरकर उप बोली का रूप है। साहित्यिक भाषा में ऐसे प्रयोग फूहड़ता के प्रदर्शन के सिवा कुछ भी नहीं है। साहित्य महोपाध्याय स्व. श्यामसुन्दर बादल के शब्दों में ''.... बुन्देली की एक कानात है– दस कोस पै भाखा बदलै'' ईसें ई भाषा के कैऊ रूप हो गये हैं। सो ईकों ऐसे सब्दन के प्रयोग से बचावौ जरूरी है, जिनकौ व्यौहार सीमित क्षेत्र में हों रऔ है।'' (रंग फआरौ नाक पुस्तक की सम्मति से) अति क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर हमें बुन्देली का एक ऐसा रूप संवारना होगा जिसमें बुन्देली माटी की सुगंध तो हो परन्तु फूहड़ता न हो जो यमुना से नर्मदा तक और चम्बल से टोंस तक फैले विस्तृत भू–भाग की मानक भाषा हो।

दूसरी समस्या लिपि की भी एक चुनौती अवश्य है। बुन्देली के बहुत से शब्द ऐसे हैं जिन्हें हम उच्चारण के ठीक हू–ब–हू नहीं खि पा रहे हैं जैसे – ईसुरी की पंक्ति में 'हो गऔ फुनगनियाँ से फोरा, पैलें हतो ददोरा' इसमें 'गऔ' शब्द छन्द में दो मात्राओं में उच्चरित हो रहा है। जबकि गऔ में (ISI) तीन मात्राएं लिखी जाएं तो छन्द की गति टूटती है। कुछ लोग दो मात्राओं के करण 'गव' लिख देते हैं जब कि 'गव' में तो शब्द ही अपने मूल स्वरूप से हट जाता है। ऐसे शब्दों को लिपिबद्ध करने हेतु संगीत की स्वर लिपि से कुछ विशेष चिन्ह लेकर उन्हें उच्चारण के यथानुकूल लिखने की पद्धति बनाना जरूरी है। तब गऔ शब्द के नीचे गऔ अर्द्धचन्द्र की रेखा खींचें तो पाठक समझ लेगा कि इन तीन मात्राओं को समेट कर दो मात्राओं में उच्चारण करना है... आदि। कहीं कहीं दीर्घ अक्षर के नीचे हलन्त का प्रयोग करके उसे दीर्घ और ह्स्व का मध्यवर्ती उच्चारण लिखा जावे जैसे कि सँयानों, भेयाँओंनों– वगैरह। अनुस्वार प्रयोग बुन्देली में नहीं के बराबर ही किया जावे चांद बिन्दी का प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए। बुन्देली की लुधांती उप बोली, बनाफरी उप बोली में महाप्राणत्व का बाहुल्य है वहां गाड़ी का उच्चारण 'गाढ़ी' हो रहा है अतः ऐसे महाप्राणत्व वाले शब्दों को लिपि में शुद्ध लिखा जावे। बुन्देली की प्रकृति में मात्र दन्त 'स' ही उच्चरित होता है तालण्य श और मूर्धन ष नहीं। मूर्धन ष का बुन्देली उच्चारण 'ख' हो जाता है। अतः लिपि में दन्त 'स' का ही प्रयोग किया जावे। ऐसी लिपि सम्बन्धी अनेक समस्याएं हैं जिन्हें मिल बैठ कर समझें और सर्व मान्य समाधान निकालें। तभी हम बुन्देली की साहित्यिक भाषा का रूप निखार सकते हैं। अन्यथा ''अपनी अपनी ढपली और अपना–अपना राग'' की कहावत में बुन्देली के प्रति सिर्फ दीवानगी को ढोते जीवन बीत जाएगा और बुन्देली बोली से ऊपर उठकर साहित्यिक भाषा का सम्मान कभी प्राप्त न कर सकेगी।

– कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ म.प्र. □

अप्रकाशित कृति : खाण्डेराय रासो

— डॉ. लखन लाल खरे

हिन्दी साहित्य में रासो काव्य परम्परा का विशिष्ट महत्व है। खुमान रासो (दलपति विजय, सं. ११८०—१२०५), बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह; सं. १२९२), पृथ्वीराज रासो (चन्दबरदाई; सं. १२२५—१२४९) परमाल रासो (जगनिक ; सं. १२३०) विजयपाल रासो (बल्लसिंह, सं. १३५०) एवं हम्मीररासो (शार्गधर ; १३५७) इस परम्परा के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। रासो ग्रंथ मूलत: चरित काव्य हैं जिनमें सम्बन्धित कवियों ने अपने—अपने आश्रयदाता नरेशों का चरित्र—चित्रण किया है। उनके प्रेम—प्रसंगों, शौर्य एवं विभिन्न युद्धों के शब्दांकन में इन कवियों ने अपने काव्य—कौशल को प्रदर्शित किया। आचार्य शुक्ल द्वारा निर्धारित वीरगाथा काल की समय—सीमा के मध्य प्रणीत इन रासो काव्यग्रंथों की पर्याप्त चर्चा हिन्दी—जगत में हुई है और शोधार्थियों द्वारा इन पर पर्याप्त शोध—कार्य भी किये गये हैं। किन्तु रासो नामधारी जो ग्रंथ वीरगाथाकाल के अनन्तर प्रणीत हुए, उनकी चर्चा हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहीं नहीं है। डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव ने अपने एक आलेख 'दतिया के रासो—काव्य' (दतिया: उद्भव और विकास: स्व. श्याम सुन्दर 'श्याम' स्मृति ग्रंथ; १९८६, पृ. १६८) में ११ रासो काव्य ग्रंथों का रचनाकाल सहित उल्लेख किया है। ये समस्त ग्रंथ दतिया राज्य के तत्कालीन कवियों द्वारा लिखे गये हैं :—

१. दलपतिराव रासो — जोगीदास भाण्डेरी सं. १७६४ वि.
२. शत्रुजीत रासो — किशुनेश सं. १८५८ वि.
३. शत्रजीत रासो — साहिब राय सं. १८५८ वि.
४. परीछत रासो — श्रीधर सं. १८७३ वि.
५. बाघाट रासो — प्रधान आनन्द सिंह कुड़रा सं. १८७३ वि.
६. भगवंत सिंह रासो — प्रधान बाजूराय सं. १८७४ वि.
७. बाघाट कौ समय — प्रधान बाजूराय सं. १८७६ वि.
८. झांसी कौ रासो—प्रधान कल्याण सिंह कुड़रा सं.१९२६ वि.
९. छछूंदर रासो —
१०. गाड़र रासो —
११. घूस रासो — पृथ्वीराज

उपर्युक्त अंतिम तीन ग्रंथ प्रतीक रासो हैं। इनमें छछूंदर, गाड़र (भेंड) व अन्य प्रतीकों के माध्यम से विद्रूपताओं पर व्यंग्य किये गये हैं। स्पष्ट हैं कि इन तीन ग्रंथों में रासो शब्द जुड़ने के उपरान्त भी इनका स्वरूप परम्परागत नहीं है।

उपर्युक्त रासो ग्रंथ मात्र तत्कालीन दतिया राज्य के हैं। सम्भव है, बुन्देलखण्ड की अन्य रियासतों में भी रासो काव्य—ग्रंथ रचे गये हों जो अब तक अज्ञात हों।

उपर्युक्त रासो ग्रंथों का लेखन—समय—हिन्दी साहित्य का रीतिकाल है। डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' का एक आलेख—'रीतिकाल का एक रासो' शीर्षक से मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका में आज से १०—११ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। इस लेख में जिस रासो ग्रंथ पर प्रकाश डाला गया था वह है — 'खाण्डेराय रासो'। प्रस्तुत आलेख की विषय—वस्तु यही कृति है।

ग्रंथ का परिचय: खाण्डेराय रासो का परिचय 'जंगजस' नाम ग्रंथ की चर्चा के बिना अधूरा है। ये दोनों दीर्घाकार ग्रंथ हैं। खाण्डेरायरासो के नायक खाण्डेराय खाण्डेराव के वंशज हैं— श्री रामसिंह जी वशिष्ठ। स्वतंत्रतासंग्राम सेनानी वयोवृद्ध श्री वशिष्ठ जी खाण्डेराय की चौदहवीं पीढ़ी से हैं। दोनो कृतियां १७वीं शताब्दी की हैं। 'जंगजस' का रचना—काल सन् १७४८ है। अनवरत खोज करने के उपरान्त वशिष्ठ जी को मूल ग्रंथ तो नहीं, उनकी छायाप्रतियां आज से २० वर्ष पूर्व प्राप्त हुईं— इतिहासज्ञ व साहित्यकार स्व. डॉ. रघुवीर सिंह (सीतामऊ—मन्दसौर) के पास से। डॉ. रघुवीर सिंह ने इन ग्रंथों में उल्लिखित घटनाओं को ऐतिहासिक मान्य किया था। इन दोनों ग्रंथों का आधार लेकर मुरैना के सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं. छोटेलाल भारद्वाज ने 'वीरवर खाण्डेराय' नामक उपन्यास भी लिखा है।

कथावस्तु : खाण्डेराय का जन्म शिवपुरी जिले की पोहरी तहसील के ग्राम भटनावर में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित वृन्दावन उपमन्यु था। इस समय नरवर में कछवाह राजा अनूप सिंह का राज्य था और दिल्ली के तख्त पर आसीन था सम्राट औरंगजेब। औरंगजेब दक्षिण अभियान पर जाते समय नरवर किले में रुका और उसी समय अनूपसिंह से नटवर का आधिपत्य छीन कर किले में अपना फौजदार नियुक्त कर दिया। अनूप सिंह शिवपुरी में महल बनाकर रहने लगा। उसके पास छोटी सी फौज थी और नरवर के आसपास का कुछ भाग अधिकार में था। परन्तु था वह मुगल—सम्राट का ही एक करद।

पोहरी—भटनावर क्षेत्र के वन में शिकार खेलने के समय अनूप सिंह ने एक अद्‌भुत दृश्य देखा — धूप में एक तेजस्वी बालक सो रहा था और एक फणधारी अपने विशाल फण से उसके मुख पर छाया किये था। राजा को यह बालक अलौकिक लगा। यह खाण्डेराय था, जिसे राजा अनूपसिंह ने पं. वृन्दावन से मांग लिया और उसे अपने साथ लेकर शिवपुरी आ गये। यद्यपि राजा को पूर्व से ही पुत्र था, जो खाण्डेराय का समवयस्क था। शिवपुरी में रहकर खाण्डेराय ने सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त की। खाण्डेराय की स्वर्णसम देहकान्ति एवम् सुगठित देहयष्टि तथा प्रत्युतपन्नमति को देखकर लोग इन्हें अवतारी पुरुष समझने

लगे। अठारह वर्ष के होते होते खाण्डेराय के वीरतापूर्ण कार्यों की यश–गाथा चारों ओर फैलने लगी थी। इसी मध्य इनका विवाह बैराड़ (पोहरी के पास) के पण्डित चतुरानन मिश्र की पुत्री के साथ हुआ।

सत्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक दुर्दान्त बाघ का वध कर डाला। राजा अनूपसिंह के हाथ से नरवर का किला चला गया था। जिसकी कसक उनके दिल से जाती न थी। परन्तु उन्हें विश्वास था कि खाण्डेराय उनके स्वप्न को पूर्ण करेगा। खाण्डेराय की महाराज की अनकही पीड़ा को समझते थे। महाराज भी अब वृद्ध हो चले थे, अतः युवक खाण्डेराय को उन्होंने ६० सवारों का नायक बना दिया। कुछ दिनों बाद सदीखां पठान ने शिवपुरी के आसपास के ग्रामों में अपनी सेना के साथ जनता पर भीषण अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। यह वही सदी खाँ पठान था, जो मालवा में लूटपाट करता हुआ नरवर राज्य में आया था और खाण्डेराय की अनुशंसा पर अपने आठ हजार सैनिकों सहित अनूपसिंह की सेवा में राज्य की उत्तरी सीमा पर तैनात किया गया था।

खाण्डेराय अपने ६० सवारों के साथ सदी खां की विशाल पठान–सेना से भिड़ गया। खाण्डेराय रासो के अनुसार बूढ़ा डोंगर ग्राम के मैदान में यह भीषण युद्ध कार्तिक सुदी ६, मंगलवार, सं. १७६२ को हुआ था। इसकी तुलना करते हुए कवि कहता है कि अकेले परशुराम मानों सहस्रबाहु अर्जुन की विशाल सेना से भिड़ गया हो —

परशुराम सों प्रगटियो श्री खण्डुन बलवान

००　　　००　　　००

और इकल्लो होइ सम्हौ भव सह अर्जुन मद ठाहि दिय,
ईकई सबेर छत्रीनि पै जामदग्नि सौं देख लिय। (पृ. १२७)

इस विषम युद्ध में विजय श्री वरण करने के उपलक्ष्य में महाराज ने खाण्डेराय को अपना प्रधान सेनापति नियुक्त किया।

सं. १७६४ में औरंगजेब की मृत्योपरान्त देश में राजनैतिक अस्थिरता का दौर प्रारंभ हुआ। सम्राट के निधन के पूर्व सं. १७६२ में शेख सलेम उज्जैन का फौजदार हुआ जिसे ग्वालियर–नरवर पर भी नियंत्रण रखने के अधिकार दिये गये। यह चढ़ाई करने के उद्देश्य से आगे बढ़ा। उसने शिवपुरी संदेश भिजवाया कि तुमने हमारा पोहरी का इलाका दबा लिया है, अतः उसके मुआवजे सहित मेरे सामने हाजिर हो। खाण्डेराय ने राजा से उत्तर लिखवा भेजा कि पोहरी का इलाका हमने नहीं, खाण्डेराय ने दबाया है और वह मेरी बात मानता नहीं। उत्तर पाकर शेख सलेम ने ससैन्य पोहरी पहुंच कर वहां के सेनानायक कायमखां को भटनावर घेरने का हुक्म दिया। खाण्डेराय ने अपने चुनिंदा सैनिकों को साथ लिया और कायम खां से भिड़ गया। कायम खां मारा गया। कायम खां की मृत्यु के समाचार ने शेख को क्रोध से पागल कर दिया। वह शीघ्रता से भटनावर पहुंचा और अपनी विशाल सेना के साथ खाण्डेराय की छोटी सी सेना पर टूट पड़ा। इस भीषण युद्ध में खाण्डेराय ने शेख का सिर काट लिया। इस विजय से खाण्डेराय का महत्व और अधिक बढ़ गया। महाराज ने इन्हें सेनापति के साथ–साथ प्रधानमंत्री भी बना दिया। इसी बीच औरंगजेब की मृत्योपरान्त उसके पुत्रों–आजम और मुअज्जम के मध्य हुए सत्ता–संघर्ष में खाण्डेराय की सहमति से अनूपसिंह ने मुअज्जम का साथ दिया। बहादुरशाह के नाम से विजयी मुअज्जम जब दिल्ली के तख्त पर बैठा तो उसने अनूप सिंह को नरवर का किला लौटाकर पुरस्कृत किया। महाराज की वर्षों की साध पूरी हुई। खाण्डेराय ने आसपास के क्षेत्रों को जीतकर उन्हें नरवर राज्य में मिलाना प्रारम्भ किया। किन्तु महाराज अनूप सिंह इस विस्तारित राज्य का उपभोग अधिक समय तक न कर सके और सं. १७६६ में वे स्वर्गवासी हो गये।

अनूप सिंह की मृत्यु ने खाण्डेराय को तोड़कर रख दिया; परन्तु वे शीघ्र ही संभल गये और अपने भ्रातृवत् नये महाराज गजसिंह का साथ देने प्राण–प्रण सहित खड़े हो गये। इन्होंने नरवर राज्य की आंतरिक और बाह्य व्यवस्थाओं को सुदृढ़ किया; अनेक युद्ध किये और सभी में विजय प्राप्त की। इस अजेय योद्धा को दिल्ली दरवार में सम्मानित किया गया। खाण्डेराय का पुत्र नवलसिंह भी अपने पिता का प्रतिरूप था जिसने बाद की बात पर एक लाख के इत्र से अपने घोड़े को नहला दिया था। गजसिंह की मृत्यु के उपरान्त रामसिंह व छत्रसिंह क्रमशः शासक रहे। परन्तु खाण्डेराय की राजभक्ति में कोई अन्तर न आया। छत्रसिंह के शासनकाल में नरवर में बेड़नी की घटना घटित हुई थी। सं. १८०५ की वैशाख कृष्णपक्ष की एकादशी के दिन इस अलौकिक व्यक्तित्व ने संसार से विदा ली।

रासो की रचना : खाण्डेराय के पुत्र नवल सिंह ने अपने पिता का राजसी सम्मान के साथ अंतिम संस्कार किया और कृष्णकवि को खाण्डेराय रासो तथा जदुनाथ कवि को 'जंगजस' महाकाव्यों के प्रणयन की आज्ञा दी। रासो में कृष्ण कवि ने ३४ कवियों द्वारा विरचित खाण्डेराय की शताधिक प्रशस्तियों को संग्रहीत किया और 'जंगजस' में यदुनाथ कवि ने खाण्डेराय तथा नवलसिंह द्वारा लड़े गये सैकड़ों युद्धों का सटीक वर्णन किया है।

यह रासो ग्रंथ रासो काव्य–परम्परा को सहेजे हुए है। विभिन्न छन्द, विभिन्न अलंकार व विभिन्न रसों को यह ग्रंथ समाहित किये हुए है। रीतिकाल में प्रणीत यह ग्रंथ वीरगाथा काल के रासो–ग्रंथों से इस बात में भिन्न है कि यह एक कवि द्वारा अन्य कवियों द्वारा लिखित प्रशस्तियों का संग्रह है। बुन्देलखण्ड के रासो ग्रंथ–परमालरासो से इसकी समानता यह है कि दोनों में राजाओं के शौर्य का गौरव–गान न किया जाकर उनके प्रतापी सेनापतियों–आल्हा–ऊदल एवं खाण्डेराव–नवलसिंह के प्रभुत्व का काव्यमय एवं साहित्यिक वर्णन है। कृष्णकवि को रीतिकालीन महाकवि बिहारी का पुत्र कहा गया है। इसी प्रकार

बुन्देली लोककथा :

कवि की चतुरई

— डॉ. नारायण दास 'कमलेश'

बुन्देलखण्ड की एक रियासत के राजा कविता सुनबे के बड़े प्रेमी हतै। वे कवियँन कौ बड़ौ आदर सत्कार करत्ते। महाराजा छत्रसाल की कविता की जे पंक्तियां वे सब दरवारियँन कों सुनाउत नई अघाउत्ते कै —

''कीरत के विरवा कवि हैं इनकों कबहूँ कुम्हलान न दीजे।''

ईसें उनके दरवार में रोजई कवियँन कौ मेला सौ लगौ रत्तौ। उनके राज में एक बड़े विद्वान गरीब कवि जू सोउ रत्ते। कवि तो सुदामा की नाई सूदे साँचे हते अकेलें उनकी घरवारी बड़ी चतुर और पढ़ी गुनी हती। जब गरीबी सें जादाँ हैरानी भई तब एक दिना ऊने कवि महाराज से कई कै सुनत हैं कै अपई रियासत के महाराज कवियँन कौ बड़ौ आव—आदर करत हैं और भरपूर इनाम—खिताब देत हैं। तुमउँ एक दिना महाराज कों अपनी कविताई सुनायाओ तासें अपने दुख—दालुद्दुर दूर हो जाँय। तुम तो बड़ी ऊँची कविताई करत हौ। कवि बोले कायकों मसखरीं करतीं हौ। हमाये ऐसे भाग्ग काँ धरे जो महाराज कों खुस करकें इनाम—किताब पा सकें।

कवि की घरवारी बोली कैसी बातें करत हौ कवि के काव्य में तो बौ ताकत होत है कै पथरा कों पानी करदे, जो कानूत का झूँठी है कै जहाँ न पोंचै रवि ताँ पोचै कवि। और शास्त्रँन में तो काव्य की बड़ी बड़ाई लिखी है — काव्य सें जस मिलै, धन मिलै, मान मिलै सब दालुद्दुर दूर हो जाँय। तुम ऐसी निराशा की बातें करत हो। कैसे कवि हो?

घरवारी ने धरौ पानी, कवि कों जौ बात गुरयानी।
बोले — रानी, तुमाई बात मानी।
सबेरे ई दरवार में जाकें जरूर, अजमेंहों अपनी बानी।

इतनी कै कें सरसुती मैया कों सुमिर कें कविजू कविता लिखने कों बैठ गये।

सवेरौ भऔ कविजू स्नान—ध्यान करकें अपनी पुरानी सुगनी दरवारी पोसाक पैर कें मँहलँन कों चल दये। राजा साव अपने दरवार में विराजे ते। कवि जू ने अपने आवे की खवर महाराज तक पोंचवाई।

तनक देर बाद कवि कौ दरवार में बुलउआ भऔ। महाराज ने कविजू सें उनको परचौ पूँछौ। कवि हात जोर कें बोले महाराज! हम आपके सढ़वाई (साढूभाई) लगत हैं। कवि कौ उत्तर सुनकें महाराज भौंचक्के से रै गये।

पैलें तो उन्हें मन में बड़ी गुस्साँ आई फिर कछू सोचकें बोले कै कविराज, आप हमाये सढ़वाई कैसें लगत हो? तब कवि जू ने एक दोहा पढ़ौ —

सम्पत—विपत सहोदरीं उपजीं एकई अंग।
सम्पत व्याही आपकों, विपत हमाये संग।।

कवि की चतुरई भरी जुक्ती सुनकें — विद्या के निधान, गुनवान महाराज बड़े खुश भये और दोहा सुनकें ई कवि की सब हालियत समझ गए।

कविजू कों आदर सें आसन दऔ और थारी भरे रुपैया और सिरोपाव दैकें बड़े प्रेम से उनकी बिदाई करी।

उन महाराज की कीरत आजऊँ बुन्देलखण्ड के गाँव—गाँव में गाई जात है। काउ कवि ने साँची कई है कै —

कवि कौ आदर जे करें, ते जग आदर पाँय।
लोक और परलोक में साँचउँ सुजस कमाँय।।

— आलमपुर ☐

सेठ भगवानदास की चौकड़िया

नइयां जी जवान कौ खांड़ौ, ऐंगर होय न ठांड़ौ।
गर्रा बैल मिन्त मूरख हां, घर सें बारै काड़ौ।।
का उपदेश दये सें होंने, जो हो मनुस उबांड़ौ।
कायर सूम दास कब मानें, इनकी संगत छाड़ौ।।

— संकलनकर्ता: कुंजीलाल पटेल

(पिछले पृष्ठ का शेष)

जदुनाथ कवि ने स्वयं को चन्दवरदायी का वंशज कहा है।

उपर्युक्त रासो काव्य अब तक अप्रकाशित एवं अविज्ञापित है। इन काव्यों में अत्यन्त उच्चकोटि के साहित्यिक मापदण्ड प्राप्त होते हैं। अंत में —

तेरै धाक आगैं नर धीर न धरत कोऊ,
तेरै धाक आगै रिपु तजि गये भौन हैं।
तेरै धाक आगैं बंक छांड़ि कै अतक गये,
तेरी संक मानि सब साधि रहे मौन हैं।
बिन्द्रावन जू के नन्द रइया राइखण्डेराय,
अरि अंधियारी तू सरदवारी जोन्ह हैं।
उत्तर लौ दक्खिन लौ पूरब लौ पछिम लौ,
खाण्डेराय तो सौं पग मांडे रन कौन हैं।

ग्वालियर, झांसी, शिवपुरी और आसपास के समस्त क्षेत्र में जगह जगह बनी खाण्डेराय की हवेलियां, बावड़ियाँ और तालाब आदि उनकी अक्षय कीर्ति के दृष्टांत हैं।

—शासकीय महाविद्यालय
कोलारस, जिला शिवपुरी ☐

कहावतों की उत्पत्ति : कुछ ऐतिहासिक कहावतें

– डॉ. वीरेन्द्र 'निर्झर'

विश्व के इतिहास में नीतिमूलक साहित्य (कहावतें, सूक्तियाँ आदि) की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारत वर्ष में भी इस प्रकार के नीतिमूलक साहित्य की परम्परा वैदिक काल से मिलती है। ''नऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा''। ऋगवेद १/११७/१९ (ईश्वर परिश्रम न करने वालों का मित्र नहीं होता।), ''बहु प्रजा निर्ऋतिमा विवेश।'' ऋगवेद १/६४/३२ (अधिक सन्तानवाला अधिक कष्ट उठाता है।) जैसे प्रवाद वाक्य तत्कालीन सामाजिक चिन्ता और जागृति को अभिव्यक्त करते हैं। उपनिषदें, ब्राह्मण ग्रंथों, बोद्ध त्रिपिटक आदि में भी इस प्रकार के सुभाषित और प्रवाद वाक्य विरल नहीं हैं।

''कर्मणा बध्यते जंतुर्विद्याया तु प्रमुच्यते।'' सं.सो. २/२८

''कर्मों से जीव बँधते हैं और विद्या से मुक्त होते हैं।'' जैसे वाक्य संस्कृत के विद्वानों में उसी प्रकार प्रचलित हैं, जिस प्रकार कहावतें जनसामान्य में। उपनिषदों में प्रयुक्त कुछ उपमायें तो बिलकुल कहावतों के प्रयोग जैसी जान पड़ती हैं। कठोपनिषद में प्रयुक्त–अन्धेनेव नीयमाना यथान्धा–कहावती उपमा कबीर की निम्न साखी में द्रष्टव्य है –

जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अन्धे अन्धा ठेलिया, दोनूँ कूप पड़न्त।।

इस प्रकार कहावतों का अस्तित्व प्राचीनतम लिखित साहित्य तक में अभिनिहित दीख पड़ता है। भले ही हम इन्हें भद्र पुरुषों की भाषा में प्राज्ञोक्ति, सूक्ति, सुभाषित आदि की संज्ञा से विभूषित करें। डॉ. कन्हैयालाल सहल ने लोकोक्तियों और प्राज्ञोक्तियों का अंतर स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि – ''लोकोक्तियाँ मुख्यतया जनसामान्य के धरातल की उक्तियाँ होती हैं, जबकि दार्शनिक ग्रंथों की उक्तियाँ तलस्पर्शी चिंतन की अपेक्षा रखने के कारण लोकोक्तियां न रहकर प्राज्ञोक्तियों का रूप धारण कर लेती है।''[१] इस कथन से स्पष्ट है कि ऋगवेद आदि ग्रंथों की उक्तियाँ लोक में पहले से ही प्रचलित उक्तियों के विकसित और परिमार्जित संस्करण हैं। है भी कुछ ऐसा ही। प्राथमिक अवस्था में साहित्य श्रुति परम्परा द्वारा प्रचलित होता है, लेखनकला बाद में आती है। लेखनकला से पूर्व वचनों का उत्कर्ष अधिक रहता है और पश्चात कम हो जाता है। क्योंकि शब्द 'परा' की विकृति होती है जो अपनी स्थूलता के कारण उसे ग्रहण नहीं कर पाती।[२] स्पष्ट है कि जब मनुष्य भाषाई ज्ञान से अनभिज्ञ था उस समय भी उसके अंतरतम् में गहरे से गहरे अनुभव प्रस्फुटित होते थे, जिन्हें उसने सम्भवतः उपयोगी एवं व्यावहारिक संकेतों के रूप में मौखिक ही संकलित किया होगा। मेरे विचार से लोक–जीवन के अधिकांश ये ही अनुभव ग्रंथकार की कलम से आवर्त में फँसकर आर्ष ग्रंथों में सूक्त, सुभाषित, उपमा, दृष्टान्त आदि रूप ग्रहण कर लिखित रूप में सामने आये। इस प्रकार कहावतें और उनके प्रयोग की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन है, उतनी प्राचीन, जितने वेद भी नहीं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि कहावतों में सूत्र शैली प्राप्त होती है, अतः इनका जन्म सूत्रकाल में – जिसमें पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी लिखी थी – हुआ होगा।[३] किन्तु सूत्रकाल से पूर्व ऋगवेद आदि में इनके प्रयोग प्राप्त होना तथा इनमें उच्च बौद्धिकता का अभाव उक्त तर्क को मानने नहीं देता। सूत्रकाल के घोर बौद्धिक और पाण्डित्यपूर्ण वातावरण से इनके (कहावतों के) जन्म का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि कहावतें शुद्ध आदिम मानव के मानस से उद्भूत भी नहीं हैं। मानस चित्रों से ऊपर उठकर बौद्धिक भाव तत्वों के संयोजन के लिए जिस स्थिति की आवश्यकता है, वह स्थिति आदिम मानव की अंतिम विकास कोटि की सीमा पर पहुँचती है।[४] निश्चित ही कहावतें आदिम मानव के आदिम मानस की उपज नहीं, किन्तु अंतिम विकास कोटि की देन भी नहीं बल्कि एक मध्यमान स्थिति – जिसे हम संयत शब्दों में विकसनशील मस्तिष्क की अनुभवशील खोज कह सकते हैं – की देन है। जो अत्यन्त–अत्यन्त गहराई में पड़े अनुभव रत्नों को एक कुशल गोताखोर की भांति ग्रहण करने तथा ऊपर लाने में समर्थ होता है। इस दृष्टि से कहावतों का उदय सूत्र वेदों से पूर्व ही कहीं दिखाई पड़ता है, क्योंकि वेद अंतिम विकास कोटि की देन है।

पंचपादिका पृष्ठ ४९ में स्पष्ट रूप से आभाणक शब्द का प्रयोग हुआ है, जो इस बात का प्रतीक है कि उपनिषद काल से पूर्व ही कहावतें लोक में प्रचलित थीं। द्रष्टव्य हैं – ''सोऽयमाभाणको लोके पिण्डमुत्सृज्य करें लेढीति''

अर्थात ''मधुर पिण्ड को छोड़कर हाथ चाटता है कहावत (आभाणक) लोक प्रसिद्ध है। बाल्मीकि रामायण का – ''सत्यश्चात्र प्रवादोऽयं लौकिकः प्रतिभातिमे'' (११२/३३/२८) तथा बालरामायण का – ''सत्यं बतेदं प्रवदन्ति लोके'' (५/२८/३) आदि संदर्भ लोक में प्रवादों के प्रचलन और उनकी सत्यता की साख को प्रमाणित करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि कहावतों का अस्तित्व समाज में बहुत पहले से वर्तमान था। किन्तु कहावतों के क्रमिक विकास का अध्ययन, उनके उत्पत्ति काल का निर्णय कि किस कहावत का जन्म किन विशिष्ट परिस्थितियों में कब, कहाँ और कैसे हुआ ज्ञात करना एक जटिल समस्या ही नहीं असंभाव्य परिकल्पना भी है। फिर भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहावतों के विषय में अवश्य कुछ

परिधि निश्चित की जा सकती है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित कुछ कहावतें दृष्टव्य हैं —

साँसी बात सादुल्ले कहें, सबके मन सें उतरे रहें।

उक्त कहावत इतिहास प्रसिद्ध सेनापति एवं मंत्री सादुल्ला खाँ से संबंधित है, जो अपनी न्यायप्रियता और निर्भीकता के लिए प्रसिद्ध थे। अत: यह कहावत औरंगजेब के शासनकाल सं. १७१५–१७६४ वि. के आस–पास की होनी चाहिए। इसी प्रकार अन्य और भी ऐतिहासिक कहावतों के संभावित उदयकाल निश्चित किए जा सकते हैं।

''बड़े टिकेंत बनें फिरत।''

कहावत का उदय सूत्र ओरछा नरेश महाराज मधुकरशाह का सम्राट अकबर की राजाज्ञा के विरुद्ध टीका लगाकर दरवार में उपस्थित होने से संबंधित घटना में देखा जा सकता है। जब सम्राट अकबर ने अपने क्रोध को पीते हुए महाराज मधुकरशाह के साहस की प्रशंसा की थी और उन्हें 'टिकैंत' नाम से सम्बोधित किया था। सम्भवत: यह कहावत उन कठिन परिस्थितियों में अपने प्रण पालन में समर्थ महाराज मधुकरशाह की उस घटना को लेकर ही अवतरित हुई है। उक्त आधार पर कहावत का उत्पत्तिकाल सं. १६११ से १६३४ वि. के बीच होना चाहिए।

''राजा भौत गरधो होत।''

कहावत महाराज वीरसिंह जू देव (१६६३–१६८७वि.) के स्वर्ण तुलादान से संबंधित जान पड़ती है। तुलादान के समय जब इक्यासी मन स्वर्ण चढ़ाये जाने पर भी तुला समभाव नहीं हुई तब लोगों को आश्चर्य चकित देखकर महाराज वीरसिंह जू देव ने उक्त उक्ति कही थी। सम्भव है यह कहावत उन्हीं की उक्ति के उपरान्त प्रचलित हुई हो।[5] तुलादान की यह घटना सं. १६८१ वि. की है।[6]

''तरवार देय सो लेय''

कहावत का बीज पन्ना राज्य के दीवान बेनीहजूरी और नोने अर्जुन सिंह के बीच युद्ध की प्रस्तावना में देखा जा सकता है। जब बेनी हजूरी ने महाराज अनुरुद्ध सिंह और उनके भाई सरमेद सिंह के बँटवारे को लेकर नोने जू को एक पत्र लिखा था, जिसका आशय था कि यह बँटवारा तलवार की नोक पर ही सम्भव है। अत: घटना के आधार पर कहावत की उत्पत्ति सं. १८३६ के आसपास सिद्ध होती है।[7]

''जूँठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान''

कहावत की उत्पत्ति मध्यकालीन निम्नांकित दोहे से आँकी जा सकती है —

बिनती राय प्रवीन की, सुनिए शाह सुजान।
जूँठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान।।

रायप्रवीण द्वारा कथित यह दोहा ही सम्भवत: इस कहावत का उत्स काल है, जिसे रायप्रवीण ने सम्राट अकबर के दरवार में अन्योक्ति रूप पढ़ा था। अस्तु दोहे के आधार पर उपर्युक्त कहावत का निर्माण काल विक्रमी की सत्रहवीं शताब्दी निश्चित होती है।

बानपुर नरेश मर्दनसिंह द्वारा आयोजित यज्ञ से सम्बद्ध भी एक कहावत देखी जा सकती है। बुन्देलखण्ड में उस समय तीन और तेरह कुरी के ठाकुर श्रेष्ठ माने जाते थे। सभी यज्ञ में आमंत्रित थे। इन कुरी के ठाकुरों के अतिरिक्त भी एक सज्जन वहाँ यज्ञ में उपस्थित हुए। भोज में इन सज्जन को लेकर खानपान संबंधी एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। अंतत: उसका समाधान हुआ। विश्रामालय में ही इन सज्जन के लिए भोजन की व्यवस्था की गई। बुन्देली की — ''तीन में न तेरा में मृदंग बजावें डेरा में'' कहावत सम्भवत: उक्त घटना की ही देन है। महाराज मर्दनसिंह संवत् १८४२ वि. में सिंहासनासीन हुए अत: कहावत का उदय १८४२ के उपरान्त ही हुआ होगा।

इनके अतिरिक्त कुछ और कहावतें दृष्टव्य हैं —

१. अमान साई ठेका रखायें, कई, पैलें उन जैसो मौं तो करलो।
२. सहर चँदेरी मों मनवारा, तिरिया राज खसम पनिहारा।
३. घर के ज्वा बरातै गये, अलीपुरा कठवा में दये।
४. देखी तोरी कालपी बावन पुरा उजार।
५. रिन्द रिन्द नई कि फतेचन्द नई।
६. दलेल की उलेल में बुन्देल बहे जात हैं।

उक्त कहावतों में पहली महाराज छत्रसाल के प्रपौत्र तथा सभासिंह के पुत्र महाराज अमानसिंह जू देव (सं. १८०९–१८१५ वि.) के समकालीन अथवा बाद की अद्भूत है। दूसरी सम्भवत: मोर प्रह्लाद बुन्देला के शासनकालीन सन् १८१५ ई. के पहले की है। क्योंकि १८१५ ई. में महाराज दौलत राव सिंधिया ने इस राज्य को मोर प्रहलाद से छीन लिया था। तीसरी कहावत महाराज हरपाल सिंह जू के पिता महाराज छत्रपति सिंह जू के समय की है, जो अलीपुरा में राज्य करते थे। लगभग सं. २००० के आस-पास नि:सृत। चौथी कहावत सम्राट अकबर के शासनकाल के बाद की ही उत्पन्न ज्ञात होती है। क्योंकि सम्राट अकबर के समय में कालपी एक समृद्धशाली बस्ती थी, किन्तु अब उजड़ी पड़ी है। पाँचवी कहावत शाहजहाँ के शासनकाल में फतेहचन्द नामक व्यक्ति द्वारा रिहन्द नदी के पुल बनवाने की घटना से संबद्ध है। छंठी कहावत वि.सं. १७९३ में जैतपुर के समीप हुए बंगस और जगतराज के बीच युद्ध से संबंध रखती है। इस युद्ध में मुहम्मदशाह बंगस की ओर से सेनानायक दलेल खाँ थे। उन्हीं के शौर्य के संवंध में यह उक्ति प्रचलित है। ऐसे ही —

१. गांव में आई डोरी तौ का माते का कोरी।
२. लस्कर कौ का डुकरियई पीसें।
३. गोरन की नौकरी बंदर कौ नचाबो।

कहावतें अंग्रेजों से संबंधित हैं। अस्तु इनका उद्भवकाल ब्रिटिश शासन के मध्य ही निश्चित होता है। इसी प्रकार 'बरसैं कऊँ पै कड़ै तौ ओरछे के पुल तरेई हो।' कहावत का निर्माणकाल ओरछा में बेतवा के पुल के निर्माण के बाद का ही होगा।

इस प्रकार कहावतों की उत्पत्ति और उनकी आयु ऋगवेद से भी पहले की सिद्ध होती हैं। ये उस समय की

अशिक्षित और अपढ़ समाज की नियंत्रक, ऊर्जा के केन्द्र वेद और पुराण थे। लिखा–पढ़ी के साधन के अभाव में इनका अधिकांश जीवन अशिक्षित जनों की रसना में ही पुष्पित और पल्लवित हुआ। इसीलिए इनका स्वरूप सरल, और सहज तथा भाषा चित्रात्मक एवं व्यंजना प्रधान है।

कहावतों की प्राचीनता पर विकासात्मक वृत्त खींचना कोई सहज कार्य नहीं है, फिर भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आधारों पर जन्मी कहावतों की प्राचीनता पर एक सीमारेखा अवश्य खींची जा सकती है, क्योंकि बहुत सी कहावतों का उदय एक काल विशेष के इतिहास या उसके बाद की स्थितियों तथा संस्कृति आदि को लेकर हुआ है। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन : डॉ. कन्हैया लाल सहल
२. आर्य जीवन दर्शन : पं. मोहनलाल महतों 'वियोगी' पृ. ५
३. लोक साहित्य विज्ञान : डॉ. सत्येन्द्र पृ. ३८८
४. वही, पृ. ३८८–३८९
५. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य : रामचरण हयारण 'मित्र' पृ. ४७
६. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : पं. गोरेलाल तिवारी पृ. १४०
७. वही, पृ. २३५ □

बुंदेली कविता :

न रोपौ गाड़े सें पाड़ौ

– गोपाल दास रूसिया

ना रोपौ गाड़े सें पाड़ौ, बात भली तुम मौं सें काड़ौ।
बात भली तुम मों सें काड़ो, ना रोपौ गाड़े सें पाड़ो॥
झन झट से घर बने बिगरजें, लरका बिटियाँ भूखन मरजें।
चीथें कोट कचारी वाले, आँख दिखा तिदुआ से गरजें।
संग न दे बिन पइसा कोऊ, की की सें तुम कड़ुआ काड़ो
ना रोपो............॥

आपुस में सिजवा मरवा दें, नग नग चाये जब टुरवा दें।
झूंटे केस डार के तुम पे, लम्बी सजा तुमें करवा दें।
घर आपुस में फूट डारकें, उल्टो तुम्है पढ़ाये पहाड़ो।
ना रोपो............॥

मों से सदा राम जे काबें, दाबे छुरी बगल में राबें
भेष बना साधू संतन को, सूधे साचन खां फसवाबैं॥
सीधे बोल न बोलें मोंसें, बोलैं बोल सदैव उबाड़ो।
ना रोपो............॥

चुगली करके इनसे उनकी–बरबादी करबा दे धन की।
इज्जत माटी में मिलवा कें, करवा डारें अपने मन की
पार पाओ न इन झूंटन सें, लैन लगा टाड़ौ है ठाड़ौ।
ना रोपो............॥

खा ना जइयो भइया चुक्का, झूँटो जे लिखवा लें रुक्का।
अपढ़ औ सीदे सादन खाँ, सीधो कर दें जैसो तुक्का
ई से बुरये जनन की संगत, पकरो कान सदा खाँ छाड़ो।
ना रोपो............॥

चोरी करे साँव कहलावें, झूँठी खाँ साँची बतलावें।
सुने गुने न बात काऊ की, अनी धुन गावें बर्रावें।
मीन नहीं जे बैरी पक्के, ताड़ सको तो इनखाँ ताड़ो।
ना रोपो............॥

अपने मौं पै तारो डारो, बिगरी आदत परी सुधारौ।
भइया देख पराई पातर, ललचा कें ना मनें बिगारौ॥
मिलै भाग से जो कछु लिक्खौ, कितनऊ गोड़ो चाय अखाड़ो।
ना रोपो............॥

विनती हाथ जोर कें प्यारे, न भटको तुम द्वारे–द्वारे।
मन के हारे, हार न मानो, विधि के लेख टरे न टारे।
नरतन मिलौ देह जो दुर्लभ, बोलौ न तुम टेढ़ौ ठांड़ो।
ना रोपो............॥

पर धन देख न नीयत न बिगाड़ौ, मन सें सबको भलौ बिचारौ।
डायन तृष्णा खां तुम मन सें, सुख चाहो तो तुरत निकारो।
संतोषी को एक पिछौरा, काट 'गुपाल' देत है जाड़ो।
ना रोपो............॥

– हरिहर मार्ग, हरपालपुर (छतरपुर) म.प्र. □

सौना औ रूपा

— रवि प्रताप रावत

एक गांव में एक राजा राज करत हते। वे भौतऊ नौने राजा हते, अपनी प्रजा हां कभऊ दुखी न होन देत हते। उन राजा के दो कुँवर हते। छोटे को नांव हतो वीरेन्द्र, बड़े कौ ज्ञानेन्द्र। औ दो बेटी हती। एक जनन कौ नांव तो सौना, एक को नांव तो रूपा। दोई बेटी देखत में भौतऊँ नौनी लगत तीं।

इन बेटीयन में एक खासीयत हती कै सौना के बार सोनें के हते और रूपा के बार चांदी। जा बात उनकी माता जू भर हाँ पतौ हतीं और कोऊ न जानत हतो। कुंवर दोई बैनन सें जेठे हते औ नदियन कौ ठेका लेत हते। नदिया में सें जो कछु बहाकें आऊत तो सो वे उऐ रोक कें देखत हते।

एक दिना की बात है। सौना और रूपा नदिया पै नहावे खां गई। दोई जनी नहाउन लगीं। दोई जनन के तनक–तनक वार झर गए, और वे नदिया में बहा गये। वहात–वहात बे बार उतई पौंचे जां उनके भइया ठेका लैंयते। उनने अपने नौकरन हाँ आदेश दओ कै देखो जाल में का फसौ। बे औरे बार निकार लै गये। कुंवर वीरेन्द्र ने वे वार देखे और सोचन लगे कै जिनके बार सौने के और चांदी के हैं तौ बे कितनी सुन्दर न हुयें और कुंवर ने उनें अपने लौ धर लओ। तनक देर में कुँवर अपने घरे पौचें और मौं बना कें पर रये। झुली परें जब उनकी माता जी आई और बोली ''बेटा, भोजन जैं लो'' पै कुंवर ने कोनऊ जवाव न दओ। महारानी ने फिर सें कई पै कुंवर कछु न बोले।

''बेटा का कष्ट है तुमें, तनक हमें बताव काऐ रिसाने परे'' रानी बोलीं।

तव कुंवर ने उत्तर दओ बोले ''मां, हमें तो ऐंसी मौंड़ी से ब्याव करने जीके बार सोने के होवें।''

रानी ने सुनी औ सोच में पड़ गई कै सौने – कै बार तो हमई की बेटी के हैं।

कुंवर फिर बोले ''मां, का सोचन लगीं, हमाई बात को जवाव काए नई देरई।''

मां बोली ''बेटा जो व्याव कौन हो सकत''

''कायं''

''बेटा, सौने के बार तौ तुमाई बैंन सौना के हैं।''

''माँ, कछु हो जाऐ, चाऐ। हमें तो उनई से व्याव करने; नईतर हमें भोजन कौ एक कौर लौ नई खाने'' कुंवर बोले।

उनकी मताई हां उनके आंगू हारने आओ और बोली – ''कुंवर भोजन कर लेओ, तुमाऔ व्याव हो जेहै।''

कुंवर खुश हो गए और भोजन करबे चले गए। माता जी उनकी पौंची अपनी बेटी लौ और सब बातें अपनी बेटी हां बता दईं। बेटी सुनके हरां कें अपनी माताराम सें बोली – ''माँ, अपुन चिंता न करौ, अपुन तौ व्याव की तैयारी करौ, और सब कछु हम देख लैबी।''

मां ने बिटिया की बातें सुनी औ रोन लगी। बिटिया ने मां हां चुप्प करा कें काम–काज में लगा दओ। ऐंसई–ऐसें व्याव के दिना ऐंगर आ गऐ। पंडित जी, मड़वा तरैं बैठे मंत्र पढ़ें जा रए ते, औ बोले – 'बेटी हां बुलाव महूरत कड़ो जा रओ।

उतें बेटी दिशा मैदान के बहाने घर सें चलीं गईं और एक पथरा लौ जाकें बौली ''हे, पथरादेव तुम सत्य के सांचे हो तौ तुम फटौ और हम समा जइए।''

पथरा फटो औ सौना ऊमें समा गई। इतै उनके ढुड़उआ पर गए। सब जनें ढूंड़न लगे। बे कंऊ लो न मिली। उनके बड़े भइया ओई जांगा पोंचे जां वे समानी ती और बोले –

'सौना बेटी, सोना बेटी, दार सड़त है, भात सड़त है।
बम्मन बरूआ वेद पड़त है, गांव को मातौ भूख मरत है।
जां हो सो कड़ आओ,

उते से सौना बेटी की आवाज आई –

''दार सड़न दो भात सड़न दो
बम्मन बरूआ वेद पड़न दो
गांव को मातौ भूख मरन दो
पैला हते तुम भाई हमारे
अब होत हैं जेठ हमारे
लौट घरै तुम जाओ।

और वे घर की कोद चल दये। ऊके बाद आई उनकी बैंन रुपा वे बोलीं –

''सौना जिज्जी, सौना जिज्जी
दार सड़त....कड़ आओ।।

सौना बोली– *''दार सड़न दो भात सड़न दो*
बम्मन बरूआ.......
पैला हती तुम बैन हमारी
अब होती है नंद हमारी
लौट घरे तुम जाओ।''

वेई लौट गई। अब वारी आई उनकी मताई की। मताई आई और बोलीं
सौना बेटी, सौना बेटी,
दार सड़त है, भात सड़त है।
जां हो सो कड़ आओ।।

आवाज आई *''दार सड़न दो भात सड़न दो।*
बम्मन बरूआ...........
पैला हतीं तुम माई हमारी।

अब होती हौ सास हमारी।
लौट घरे तुम जाओ।।

वे सोई चुपचाप लौट गई। अब आये उनके पिता जी और बोले–

"सौना बेटी, सौना बेटी,
दार सड़त है, भात सड़त है।
जां हो सो कड़ आओ।

सोना की आवाज आई –

"दार सड़न दो, भात सड़न दो
वम्मन वरुआ..............।
पैला हतें तुम पिता हमारे
अब होत हौ ससुर हमारे
लौट घरे तुम जाओ।

उनके पिता जी आंखन में अंसुआ लै चले गए। अब आये वे 'भाई जौंन के संगै' व्याव हौने हते।

वे बोले – *"सौना मोरी, सौना मोरी,*
दार सड़त है भात सड़त है।
बामन बरुआ वेद पढ़त है
गांव कौ मातौ भूख मरत है।
जां होओ सो कड़ आओ"

सौना गरौ भर कैं बोली –

"दार सड़न दो, भात सड़न दो
वम्मन बरुआ वेद पड़न दो
गांव कौ मातो भूख मरन दो
पैला ते तुम भाई हमारे
अब होबे चले पति हमारे
अब आंगू कछू न काव"

और बोली "भइया वीरेन्द्र अब तुम कछु न काव। हमाए जावे कौ कोऊ दुख न करहै। हमने तौ अपनी और घर की मान–मर्यादा कै लाने प्राण–त्याग दै। और एक बात और कै हम व्याव कर लेते तौ बैन–भइया के पवित्र सम्बन्ध पै सें दुनिया कौ भरासौ हट जातो। कोऊ ई सम्बन्ध हां सम्मान की नजरन सें न देखतो। ई सें हमने तुमाये हाथ पै बंधी राखी कौ मान रख लओ।

इतनी बातें सुनकें पछतात वीरेन्द्र घरै चले गये और सब हाँ सौना की कई बात समझाई। सब जनें बस्स रोऊत रै गए।

– बसारी, जिला छतरपुर म.प्र. □

चौकड़िया फाग

– डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर

रितु मासा

ऐसे सज राखे हैं बाँने, उमर देत है ताने।
उज सिंह में तुला, वृश्चिक के, दिनकर मित्र मुखमाने।
सहस तफन धन मकर जोबनन, विष्णू बरन उभराने।
तपस–मधुकटि कुम्भ मीन छटकै, सुरज भान तरफाने।
माधव शुक मेष, वृष जाँघन, तपन इन्द्रहु अकुलाने।
सुच–नभ पिड़रिन मिथुन कर्कतइ, आदित गमस्त रिझाने।
नमस–ईस है सिंह कन्या अंगन, यम हिरन्य ललचाने।
नागर नाग विजुरिया आँखन, बाँदै निघन निसाने।

सूर्य की होली

होरी खेलत गगन बिहारी, किरनन की पिचकारी।
बारा नाव कला हैं बारा, घुरवा रथन सबारी।
सात रंग के सात दिना है, नकछत्तरन सिरदारी।
चन्दा उर तारे रंग डारे, धरती इसकी नारी।
ज्ञान, विज्ञान बनाओ उननै, अनू ऊरजा ढारी।
रोजइँ रंगत रात हैं जग खौं, फेरी दै दै न्यारी।
जल थल–नभ सब इनके रंग में, लूटै मौंज बहारी।
इनके रंग सै जग निपजौ हे, काम देत किलकारी।
जड़–चेतन देखों रंगडारे, सराबोर सबतारी।
लय–प्रलय सब इनके रंग में, बेगन वायु हजारी।
बुध विकास रंग तरा तरासैं, परा अपरा सिंसारी।
नांगर आप देव जेई हैं, पीछे सब करतारी।।

–रघुवंश नगर, भाण्डेर मार्ग, दतिया म.प्र. □

सड़कें

– गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

सांचऊँ गजबई ढा रई सड़कें, तकौ बायरें कड़कें।
कऊं ऊंची कऊं नीची मिलतीं, एक एक सें बड़कें।
बस में बैठे परिवहन की, चलत रई अड़ अड़ कें।।
उचटी सीट गिरी पटवारन, जियरा हमरे धड़कें।
हिलुर गईं हैं पेट की आंते, अंग–अंग सबरे खड़कें।।
कम्मर टूटी पंडतान की, रै गई हमें जकड़ कें।
टूटो दांत घलो जब धचका, रै गए दाऊ अकड़ के।।
खिड़की कांच बजें मोटर कें, ताल छिड़ी तड़ तड़ कें।
झूला झूलत मोटर भीतर, भौजी खूब रगड़ कें।।
बिन अपरेशन मोड़ा हो गओ, लाला घटिया चढ़ कें।
ठकुराइन कयें और घूम लो, गुप्तेश्वर सुन भड़कें।
पोंचत पोंचत झुली तौ पर गई, निकरे ते हम तड़कें।
भूल गई सब इतै चौकड़ी, आए ते जित्ती पढ़ कें।।

– ईडी/२५– म.प्र.वि.मं. कॉलोनी, रामपुर जबलपुर □

बुन्देली बालिकाओं का खेल :

चपेटा : एक दृष्टि

— आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

बुन्देली भाषा में व्यक्त अनेक गूढ़ रहस्यों को उजागर करने वाले पं. कन्हैया लाल 'कलश' ने अपनी गवेषणात्मक कृति 'बुन्देली व्याकरण' में लिखा :—

''बुन्देली संख्यावाची शब्दों पर यदि विवेकपूर्वक विचार कर गवेषणा की जाय तो अनेक रहस्य प्रकट हो सकते हैं। बुन्देली बालिकाओं के 'चपेटा' नामक खेल से भी संख्यावाची शब्दों के रहस्य उजागर होने की संभावना है। 'एकनखाजा। दो महाराजा। तीन तियल के। चौ पतियँल के। पचम पचीस। लटक चालीस' (बुन्देली व्याकरण, पृ. ४५, प्र. संस्क १९९०)''

इस पुस्तक की एक प्रति भी 'कलश' जी ने मुझे भेजी थी। तब मैं किसी कार्य में व्यस्त था। पुस्तक न पढ़ सका पर जानता था कि वे मुझे शब्दों के गूढ़ रहस्य उजागर करने को उकसाते है। उनकी ही प्रेरणा से मैं बुन्देली पाटियों की गवेषणा में प्रवृत्त हुआ था और कार्य पूरा होने पर उन्हें ही सबसे अधिक प्रसन्नता हुई थी। 'कलशजी' की प्रसन्नता मेरे लिए अर्थवान् सन्तोष है। मैने 'चपेटा' में प्रयुक्त होने वाले पदों को समझने का जो यह प्रयास किया है, उसका कारण यही है।

चपेटा लड़कियों का एक प्रिय खेल है। बुन्देलखण्ड में इसे लड़कियाँ प्रायः सावन के महीने में खेलती हैं। यह खेल जिन पाँसों से खेला जाता है, वे मिट्टी, लाख, लकड़ी, पीतल या ऊँची आर्थिक स्थिति होने पर चाँदी के होते हैं। सामान्यतः डेढ़ अंगुल के परिमाष वाले चौकोर घनाकार ये पाँसे प्रायः लाल, पीले, हरे और काले रंग के तथा संख्या में पांच, सात, नौ अथवा ग्यारह होते हैं। हमें श्री कलश ने जिन पदों की व्याख्या के लिए प्रेरित किया है। वे पाँच पाँसों से सम्बन्धित खेल के हैं, अतः इस विवेचना में पाँच पाँसों को ही आधार माना गया है। और संख्यावाची प्रयुक्त शब्दों को समझने का प्रयत्न किया गया है। 'चपेटा' शब्द की रचना उसकी बहुत कुछ जीवन कथा बताती है। चपेटा (चपेटः) अपने संस्कृत रूप से सुरक्षित बनाये है। यह दो धातुओं से बना है। वे धातुएँ हैं 'चप्' और 'इट्'। 'चप्' धातु सान्त्वना देने के अर्थ में हैं और 'इट्' धातु हटाने, प्रक्षेपण करने के अर्थ में। इस प्रकार 'चपेटः' सान्त्वना और उसका विलोम प्रक्षेपण दोनों अर्थो को संजोये हुए हैं। इसीलिए 'चपेटः' सान्त्वना की मुद्रा, डांट की मुद्रा, प्यार की चपत, डाँट की थप्पड़ साथ साथ यज्ञ की कार्य में प्रयुक्त विशेष परिमाण आदि विविध अर्थो को सूचित करता रहा है। शत ब्राह्मण के हिन्दी विज्ञान भाष्य करते समय वेद—विज्ञान के वेत्ता पं. मोतीलाल भारद्वाज 'चपेट;' के सम्बन्ध में लिखते हैं — ''हाथ की अँगुलियों को सर्वथा ऋजुभाव में परिणत कर दीजिए। साथ ही अँगुलियों को परस्पर न भिड़ाकर स्वभावतः जिस अन्तर पर अँगुलियाँ (चाड़ी) विस्फारित रहती है, उन्हें उतने ही अन्तर पर रहने दीजिए। ऐसी अवस्था में यह हाथ 'चपेटः', प्रतल व प्रहस्त इन तीन नामों से व्यवहृत है। यज्ञ के वेदी आदि निर्माण कार्यो में इसका उपयोग होता है। धर्मशास्त्र में इस परिमाण को विशेष प्रधानता दी जाती है।''

'चपेटा' खेल का इस विशेष मुद्रा में सम्बन्ध होने से ही इसकी संज्ञा चेपटः (चपेटा) हुई है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस प्रकार के पाँसे के खेल का वर्णन किया है। (२/१/१०) तब पाँसे या गोटे दो तरह की हुआ करती थी अक्ष और शलाका। अक्ष ठीक ऐसी ही घनाकार गोटे होती थी जैसी 'चपेटा' खेल में होती है, (पर 'शलाका' गोटों की आकृति वेलनाकार होती थी)। भरहुत एक दृश्य में पाँच पाँसों से खेलते 'पुष्पक यक्ष' का चित्रण है जिसके पाँसे 'घनाकार' ही दिखाये गये हैं (कनिंघम, भरहुतस्तूप फलक ४/५) तैत्तिरीय ब्राह्मण से पाँच पासों के खेलने की पुष्टि होती है (तै. १/७/१०) पाणिनि के काल में भी पाँच पाँसों का खेल होता था (२/१/१०) धम्मपद की गाथा, क्रमांक २५२ से इस प्रकार के खेल खेले जाने की पुष्टि होती है।

महाभारत सभापर्व (५९९) में युधिष्ठिर शकुनि का निहितार्थ महत्वपूर्ण है, अतः उसे देखें। वहाँ युधिष्ठिर शकुनि से कहते हैं, 'नहिमानं प्रशंसन्ति, विकृतौ कितवस्य हि' हे शकुनि सज्जन पुरुष जुआरियों की प्रशंसा नहीं किया करते हैं। इस पर शकुनि उत्तर देता है —

''अक्ष ग्लहः सोभिभवेत् परं नः,
तेनैव दोषो भवतीह पार्थ।।

अर्थात् हे युधिष्ठिर पाँसों के साथ जो दाव है, वही नीचा दिखाने वाला है, वही दोष हैं यह 'चपेटा' दाँव का दोष हटाया हुआ द्यूत है। एक ऐसा जुआ है जिसको पराभव करने वाले काल रूप दाँव का दोष निकाल कर युद्ध मनोरंजक खेल का रूप लोक ने दे दिया है।

एकनखाजा : के समझने से पूर्व हमें इन पदों में प्रयुक्त एक, दो, तीन, चार (चौ), पाँच (पचम), पचीस और चालीस संख्यावाची शब्दों के मूल भाव और उनकी रचना यानी व्युत्पत्ति और निर्वचन की ओर थोड़ा ध्यान देना होगा।

एकनख्आजा : एक शब्द बना है 'इ' धातु से। 'इ'[१] धातु गति के अर्थ में प्रयुक्त होती है। यास्क मुनि 'एक' शब्द का निर्वचन करते हुए कहते हैं, 'एक को एक कहते हैं क्योंकि यह एक संख्या दूसरी संख्याओं में पहुँची संख्या है यानी एक इता

संख्या (नि. ३/१०) है। नख्[२] धातु जाने के अर्थ में है' अर्थात् एक जो दूसरों में जाता है वह जावे और आवे। यह अर्थ है 'एकनखाजा' का।

दो महराजा : 'दो' शब्द 'द्वौ' का तद्भव रूप है जो बना है 'द्रु' धातु से। इस धातु का अर्थ तेज दौड़ना। निरुक्त कहता है कि 'दो दौड़ में एक से आगे है यह इसीलिए 'दो'[३] कहलाता है। 'मह' शब्द तत्सम है[४] जिसका प्रयोग शिशु पालवध काव्य में भी है। और 'राजा' शब्द बना है 'राज'[६] धातु से। यह शुद्ध तत्सम रूप में है। राजा का अर्थ है शोभित होने वाला, कान्तिमान्। इस प्रकार 'दो महाराजा' का मतलब होता है। :— ये जो एक से दौड़ में आगे दो हैं, उत्सव हैं खूब शोभित हैं राजा हैं।

तीन तियल के :— 'त्रय'[७] है तीन का शुद्ध तत्सम रूप जो जो बना है 'तृ' धातु से। 'तृ' धातु का अर्थ है तैरना, प्लवन या संतरण। महामुनि यास्क तीन (भय:) का निर्वचन करते हुए कहते हैं कि तीन इसलिए तीन कहा जाता है, क्योंकि 'तीन' एक और दो से भी अधिक तैर जाने वाली (तीण्तिमा संख्या) है।[८] इसमें आया 'तियल' का अर्थ है तिगुना, तिगुण जैसे जनेऊ के धागे 'तीन तियल' होते हैं, वैसे तीन तियल। यहाँ बुन्देली बेटी बोलती है — 'ये तीन जो सबसे ज्यादा तैरने वाले हैं, वे साधारण तीन नहीं है, तियल[९] के तीन हैं, तिगुन के त्रिगुण के तीन हैं (जैसे) जनेऊ के तीन तगा तियल के होते वैसे है ये तीन। 'तीन' ये त्रिगुण के है जो दुनिया के आधार हैं।

चौ पतियँन के : (चौपतियॅल के दोनों पाठ हैं): वेदांग निरुक्त ने कहा है कि चार इसलिये चार है क्योंकि उसके सामने, एक, दो तीन कहीं नहीं ठहरते।[१०] चार (अपने मूल रूप में चत्वार:) चम्प् धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है लेकर भाग जाना। पतियॅन के (पतियन्ती के)। पतियँन—पतियन्ती[११] (सं.) है वह जो पति के घर जाने को तैयार बैठी है। बुन्देली बेटी में जाने अनजाने संस्कार बचे हैं, वह बोलती है, 'चौपतियँन के।' भगजाने वाले, चम्पत होने वाले ये चार हैं 'पतियन्ती' के उनके, जो पिया के साथ चम्पत होने को तैयार बैठी हैं। (कितना शिष्ट विनोद है!)

पचम पचीस : पांच के मूल रूप (सं. पंच) की संरचना 'पृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ है, पालन करना, पोषण करना, भरना पूर्ण करना, व संयोग करना। निरुक्त के अनुसार पाँच पूर्ण संख्या है और संयोजित करने वाली भी। प्रकृति में जैसे 'तीन' फैलकर आधार बनाती है वैसे 'पाँच' अपने गुण—धर्म (पूर्ण करना व संयोजन करना) के आधार पर एकक बनाती है और आधार प्रदान करती है। इसीलिए वैदिक गणित में प्रमुख आधार 'पांच' को माना गया है और लोक में 'तीन—पाँच' करने के मूल में यही विचार है। यहाँ बेटी पाँच पाँसों से ही खेल रही है। कहती है — 'पचम पचीसा' ये पाँच जो पूर्ण हैं, पूरे हैं, उन्हें पाँच बार करो, पच्चीस मिलते हैं, यानी पूरे को पूरे वार तो फलन हुआ पच्चीस यानी पूरा संसार। (७९ साल पहले पं. गुलाबराय ने सुमिरिनी में गाया था — पाँच पचीस पछार, परम षद पावनी/भगत भगवन्त भरी) पाँच तत्वों से यह २५ तत्वों का संसार रचा गया है। अपने २४ तत्वों को कालतत्व मिला कर २५ तत्वों का जगत सांख्य ने भी माना है।[१३] श्रीमद् भागवत तो स्पष्ट रूप से (५+५+५+५+५ करके) जगत की १. पंचमहाभूत, २. पंच ज्ञानेन्द्रियाँ ३. पंच कर्मेन्द्रियाँ। ४. पंच तन्मात्राएँ ५. मन बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष रूप में पंच पंचात्मक सृष्टि मानती है। इस प्रकार पंचम पचीस का अर्थ होता है अपने में पूरे और सबमें मिलने पाँच हैं इनकी पूरे वार (पांच बार) आवृत्ति करने पर पच्चीस बनते हैं और पचीस पूरी दुनिया ही है।

लटक चालीस : 'लटक' शुद्ध संस्कृत शब्द है।[१४] लटक का अर्थ है, शरारत से भरा, ऊधमी लड़का, बाह्य क्रीड़ा करने वाला छोकरा। 'लटक' शब्द का आधार 'लट्' धातु[१५] है। जिसका प्रयोग वाल चेष्टाएँ करना, रोने—चिल्लाने जैसी बच्चों की चेष्टाएँ करना, बनावटी तुतलाना, शरारत करना, आदि में विहित हैं। 'काशकृत्स्न' जैसे पाणिनि के पूर्ववर्ती शब्दतत्व के जानकर लट् धातु को बालक्रीड़ा करने के साथ ही अन्यक्त ध्वनि के प्रकट करने के अर्थ में मानते हैं।[१६] अर्थात् 'लटक' से सूचित होता है शरारत भरा, ऊधमी, बच्चों जैसी चेष्टाएँ करने वाला। और चालीस (चत्वारिंशत्) है चार बार दश की आवृत्ति या ५ के आधार में ८ बाद की आवृत्ति। 'पांच' और 'आठ' दोनों इस देश की गणना में आधार रहे हैं।[१७] इस प्रकार आठ और पांच इन दोनों आधार संख्याओं को मानकर — ८ की ५ आवृत्तियां, या ५ की ८ आवृत्तियों से आते हैं चालीस। (५ और ८ के आधारभूत होने के उदाहरण टिप्पणी में दिये गये हैं। देखिए अन्त में टिप्पणी 'अ') वैदिक काल में 'चालीस' रोमांचक युवावस्था की प्रतीक संख्या थी। 'सम्वत्सर' सूर्य के एक पूर्ण परिभ्रमण चक्र में पृथ्वी द्वारा प्राप्त अग्नि थी। जिससे काल सूचक 'सम्वत्सर' शब्द बना है — अग्नि वैं सम्वत्सर: (शतपथ)। तैत्तरीय ब्राह्मण में इस अग्नि के ५वें भाग को एक ऋतु मानकर कहा गया है— 'पंच वाऋतव: सम्वत्सर:' (तै.ब्रा. २—९—९०) प्रत्येक ऋतु का परिमाण ३६०/५ यानी ७२ अरोहात्र माना है, जिसमें १६ अहोरात्र बाल्यावस्था और १६ अहोरात्र वृद्धावस्था के निकालने पर ७२ अहोरात्र की एक ऋतु में चालीस की पूर्ण योजनावस्था हुई। बुन्देलखण्ड में यह ज्ञान अनजाने गाँवों में अभी जीवित है। जाड़े के लिए कहावत चलती है धन के पन्द्रा, मरक पचीस, जाड़े के दिन चिल्ला चालीस। सो चालीस यानी पूर्ण योवनावस्था। बुन्देली बेटी खेल खेल में बोलती है 'लटक चालीस' बालक्रीड़ा करने से, या शरारत कड़ने से उलट चाल चलने से (२५+५+४+३+२+१) का उलटा योग करने से जो जोग जुड़ा है, वह चालीस है; चिल्ला चालीस है पूर्णयौवन है। (वह मैंने प्राप्त कर लिया है)

इस प्रकार हम पाते हैं 'चपेटा' खेल के संख्यावाची शब्दों की गवेषणा से उत्तर वैदिक काल (ब्राह्मणकाल), महाभारत,

चाणक्य कालीन अर्थयुगीन एवं काशकृत्स्नं, पाणिनि की परम्परा से होते हुए वृद्ध सांख्य और नव्य वेदान्त तक के अंकों सम्बन्धी (१,२,३,४,५,६,७,८,९ एवं १०) संख्याओं के गुणधर्मों के कुछ गूढ़ रहस्यों की कुंजियाँ हमें सहज ही मिलती है।

टिप्पणी (अ): आधुनिक विचार तथा आठ और पांच की आधार सूचिका वैदिक उक्तियाँ :

आठ :

१. द्राविड़ भाषा में आठ के आधार पर गणना होती थी। यह रीति दाशमिक रीति की प्रबल प्रतिद्वन्दी बनी। आठ या उसकी गुणित संख्या सोलह, बत्तीस, चौंसठ अधिकतर चालू हैं जैसे १६ आनों से रुपया, १६ छटाकों से सेर.... इत्यादि (डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या – 'भारत में आर्य और अनार्य' – शास्० साहित्य परिषद् भाषणमाला, जून १९५५, पृ. ८७)

२. ऐतरेय ब्राह्मण में (३/१२) पर एक विवरण है – यजमान ने सोम शक्तियों को एकत्र करने का प्रयास किया, एक ऋचा द्वारा न कर सके। तब दो, तीन, चार, पांच, छः और सात ऋचाओं से यत्न किया, परन्तु वह उनको इकट्ठा न कर सके। तब आठ ऋचाओं से यत्न किया तो उन्होंने सोम की बिखरी शक्तियों को प्राप्त किया। आठ को ('अष्ट' को) अष्ट इसलिए कहते हैं, क्योंकि इससे प्राप्ति होती है (अश्नुते)। .... इसीलिए कर्मों में आठ मन्त्रों का समुच्चय पढ़ा जाता है।... (ऐ.ब्रा. ३/१२) (आठ बिखरी शक्तियों को एकत्र करने वाली संख्या है, आधार है)

३. अष्टरात्रेण वै देवाः सर्वम् आश्नुवत (तांण्य ब्रा. २२/११/६)

४. षोडशकलं वै ब्रह्म (जैमिनीय उपनिषद् ३/३८/८)

५. षोडशकल प्रजापतिः (शत. ब्रा. ७/२/२/१७)

६. इन्द्रउवै षोडशी (कौ.ब्रा. १७/१,४) ऐ.ब्रा. (४/१)

७. तांण्य ब्राह्मण में षोडशी की महिमा (१२/१३/८) (६/१/५) (१८/६/२)

पांच :

१. पंच सम्वत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम् – वेदांग ज्योतिष प्रजापति पंच सम्वत्सर स्वरूप है – १. सम्वत्सर २. परिवत्सर ३. इदावत्सर ४. अनुवत्सर और ५. इद्वत्सर (सोमाकर द्वारा उद्धृत गर्गवचन)

२. पांक्तो वै यज्ञः (गो.पू. ४/२४) यज्ञ पांच प्रकार के हैं।

३. पांक्तः पुरुषः (कौ १३/२) पुरुष पंच रूप है

४. पंचवा ऋतवः (तै.ब्रा. २/७/१०) प्रमुख ऋतुएँ पांच हैं।

५. पांक्त पशुः (श.ब्रा. १/५/२/१६) पशु पांच प्रकार के हैं।

६. प्रजा पंचन्वूडाः (श.बा.८/६/१/१३) आदि वचन पांच को आधार मानते हैं।

संदर्भ सूची –

१. एक = √इ + कन्, √इ गतौ (सायण)

२. नख = (नख, नखि गत्यर्थौ (१/४४२))

३. द्वौ = द्रुततरा संख्या (निरुक्त ३/१०)

४. मह = √मह + अच्, उत्सव, वसन्तादि उत्सव,
उदाहरण – सखलुदूरवतोऽप्याति वर्तते मूहमसा विति बन्धुतयोदितः: (शि. ६/११)

६. राजृ दीप्तौ (पा. १/५६१)

७. त्रयः = √तृ
तृ संतरणयोः (पा. १/६९६)

८. त्रयः तीर्णतमा संख्या (नि. ३/१०)

९. तियल = त्रिगुण

१०. चत्वारः = चपि (चम्प) गत्याम् (पा. १०/८५)/ चत्वारः चलिततमा संख्या (नि.)

११. पतियन्ती = पति + क्यच, शतृ + डीप्, पतिं इच्छति।

१२. √पृ पालन पूरणयोः (पा. १/४५३) √पृची संपर्चने (पा. २/२३) संयोग करना पंच पृक्ता संख्या (नि. ३/८)

१३. सांख्यकारिका (ईश्वर कृष्ण) ९

१४. लटकः (पु.) = लट् + क्वुन्
लट = लट् + अंच् लट् – बाल्ये (पा. १/१९४)

१५. लट् + क्वन् = लट्व – वदमाश नचैया लड़का, लट्व + टाप् = लट्वा, पक्षी (गौरइया)

१६. लट् – बाल्ये (बालक्रियायाम् अव्यक्त ध्वनौ च) काशकृत्स्नधा पाठ – अष्टौ अश्नोते (संख्याओं में व्याप्त होता है आठ और पंचपृक्ता)

१७. यानी संख्या में संयोजित होता है (नि. ३/८)

– ५, नूतन विहार, टीकमगढ़ म.प्र. □

स्व. राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान २००२

बुन्देली विकास संस्थान, बसारी बुन्देली के रचनात्मक विकास में संलग्न साहित्य, संस्कृति, भाषा व इतिहास के क्षेत्र में सृजनरत विभूतियों को स्वर्गीय राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान देने का निर्णय विगत वर्ष से लिया गया। जिसके तहत २००२ में बुन्देली के वरिष्ठ कवि विंध्य कोकिल पं. श्री भैयालाल व्यास, छतरपुर को बुन्देली में रचनात्मक योगदान हेतु डॉ. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' उरई को बुन्देली में गहन आलोचना हेतु तथा 'चौमासा' के सम्पादक डॉ. कपिल तिवारी, भोपाल को बुन्देली में शोधपरक कार्य हेतु तथा श्री लक्ष्मण सिंह गौर, ओरछा को ऐतिहासिक तथ्यों को संजोने हेतु स्वर्गीय राव बहादुर सिंह बुन्देला बसारी सम्मान २००२ प्रदान किये गये। इसके तहत ११०० रु. की नकद राशि प्रशस्ति पत्र तथा शाल श्रीफल समिति द्वारा विद्वानों को प्रदत्त किये गये।

महिला संगठनन कौ महत्त्व

— कुन्ती व्यास

कौनऊँ बड़े महत्व के काम के लानै संगठन को होवौ जरूरी है। वौ काम चाये धर्म कौ होवै, समाज सेवा कौ होवै और चाये राजनीति कौ।

महात्मा गांधी नै हम जनियन की दसा सुधारवे खौं एक 'वस्त्र श्रमिक संघ' ठांड़ौ करौ हतौ। देर—सबेर बई खौं 'स्वरोजगार संघ' कौ नाव दै दओ तौ। नारी की बिगरी हालतन कौ सुधारवे के लैं समय—समय पै महापुरषन नै — जुग निर्मातन नै, सबई देसन में कोसिसैं करीं हैं। हर कऊं जई भाव सें महिलान के अनेकन रूपन में संगठन बनत आये हैं।

बापू की प्यारी बिटिया सी सिस्या श्रीमती प्रभावती जू (जो कै युगपुरुष जय प्रकाश नारॉन जू की धरमपत्नीई नई उनकी सांची जीवन संगनी सहयोगिनी हतीं) ने औरतन में सुधार के ल्यावे के लानै विहार में चरखा संघ बनाऔ हतौ। जामें महिलायें धुनाई कताई, बुनाई सीखत हतीं। वे फिर ऐसे काम सीख . ानै खर्चन की जरूरत खुद् पूरी कर लेत् हतीं। ऐसें वे घर स स्वतंत्र होकें समाज में सुधार के कामन में समय निकारन लगीं; उननै परदा कौ रिवाज, अंधविस्वास जैसी बुराइयन कौं, हम सब में सें दूर करवे के काम करे हैं और आजऊं कर रई हैं और जा संगठन कौ देस में बड़ौ नाव है।

भारत की नारियन के मुकावलैं दूसरे देसन जैसें अमरीका आद—आद की नारियन नै अपने हक्कन के लानें खूब लड़ाई करीं और आदमी के बिरोवर के अधिकारन कौं 'नेशनल विमिन सफरेज ऐसोशियेशन' कौ बनाऔ गओ। जाकौ काम औरतन के छोटे—छोटे संघ बनावौ और उन्हें अधिकारन कै लैं लड़वे कौ मजबूत बनावौ है।

मानव समाज कौ निरमान आदमी और औरतन के जुड़वां सहयोग सैं भओ है। जा समाज कौ पक्कौ बनावे और चलावे में जितनी जरूरत एक आदमी की है, उतनई बा सें कैऊ गुना जादां नारी की है। जो कऊं समाज कौ एक अंग कमजोर गैर पढ़ौ—लिखौ और पिछड़ौ होत है उतै समाज उन्नति नई कर पाऊत है।

पुराने समइया में नारी कौ गौरव और स्थान ऊँचौ होवै सें अनेकन विदुषी पैदा भई हैं जिनके नाव हमाई धरम की समाज की संस्कृति की पोथिन में मिलत है। जैसे सीता, अनुसुइया, मंदोदरी, मदालसा अरुन्धती आद—आद।

बीच के सामन्तवादी जुग में भोग विलास की आदतैं बड़न लगीं और तब महिलान कों सुख लिप्सा के लानै बनी मात्र जियत पुतरियन सी मानन जान लगौ। वे सजी सजायीं घूंघट में घरै—महिलन में परदा से बैठन लगीं। वे रसोइन—चौका बर्तन बारी घर की चौकीदारिन सी बन गईं। उनकौ पतन हो गऔ। सीता के देसकी महिलायें गिरी गुजरी सी हो गईं।

जब नारियन की ऐसी गिरी दसा दिखान लगी तब समै समै पै उद्धारकन नें अनेक उपाय करे। इन सुधार करबे वारिन में महान संत भगवान सबके नांव हैं — जैसे कृष्ण—बुद्ध — महावीर स्वामीदयानन्द, रामतीर्थ, विवेकानन्द, गांधी जी, महर्षि कर्वे, महात्मा फुले — हीरालाल शास्त्री आद खास गिने जा सकत हैं। इनकी कोसिसन सें अनेकान महिला संगठनन कौ जनम भऔ। नारी जात की तरक्की के लाने संघर्ष करनवारीं देवियां सोऊ आगैं आईं। जैसे ऐनीबैसेन्ट, सिस्टर निवेदिता, सरोजनी नायडू, मां कस्तूरवा, कमला नेहरू आद। विदेसन में सोऊ 'नारी उत्थान' के संगठन बनत—बिगरत और फिर बनत गये। उनकी बात तौ पाछें, पैले हम अपनै देसई की बात करैं। स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लैवे कौ जो संगठन बने उनमें सबसे पैलैं हम रानी लक्ष्मीबाई को नांव लैवौ जरूरी मानत हैं। वे अपनै देसकी वीर नारी और संगठन करवे वारी रई हैं। वे अपने महिलन के भीतर अपनी सभी दास—दासिन और दीगर—महिलान कौं समाज की शिक्षा के संगै—संगै हतयार चलावे की शिक्षा रोज देत रहत हतीं, जई सिखावन कों प्रभाव हतो कि झांसी की सन् १८५७ की लड़ाई में आदमियन की का कयें — झांसी की जनी मानसन् ने अंग्रेजन के छक्के छुड़ा दये ते। झलकारी कोरिन, सुन्दर—मुन्दर गोलन्दाज जैसी सिंहनियन कों को भूल सकत है। जैतपुर की रानी कौ जुद्ध में सैं अपने पति जगतराज को दुसमन की बीच सै बचा लैवो — रानी सारंधा का छत्रसाल की सुरक्षा की सोच कैं — आगे के लाने बुन्देलखण्ड के दुसमनन सें बदला लैवे को देस भक्त सिपाहियन कौ सौंप कै दुसमन से घिरे अपने वीर पति राजा चम्पतराय की आन बचावै कौ अपनी कटार से बलिदान की कथा गढ़वौ का कम है कै तब इनकों पूजैं और बुन्देलखण्ड का पूरे देसा के करखा गावैं।''

एक तरफ ऐसें संगठन तो दूसरी ओरें नरियन की माली गिरी हालत सुदारवे कौ उनै अपने पावन ठांडे होवे कौ आर्थिक संगठन सोई बनत गये। जैसे भवानीपुर की जनसेवी संस्था, मातृसमाज आद है। इन संस्थान सै लाभ उठा कैं अनेकन अनासिरत महिलान ने अपनी—अपनी तरां सैं काम हाथ में लये। जैसे पापड़ बनावौ, मसाले बनावौ, सीवो, काड़वौ, आद अनेकन काम करकै अपनी रोजी कमाई और काऊ की मौचिता न रैकें — इन संस्थान सैं अपने बल पै जीवें कौं पाठ पढ़ो।

महाराष्ट्र की एक संस्था और बताये बौ है — शोभा

समिति जाकौ काम घरे–घरें जाकें छोटी–छोटी टोली बनावों और उनके हातन गली–गली मुहल्लन में संगीत की शिक्षा–गावौ नृत्य बजावौ आदि खों बढ़ावो है।

संगठन कौनऊ होये, इनकौ काम पूरी नारी जात–समाज के रुख–रुच ऊँची करवो है। संगीत एक ऐसी कला है जाके जरिये सैं कौनऊ समाज में सुधार जल्दी सीदे–सादे तरीका सैं लिआऔ जा सकत है, हम सबई भऔ–वधाऔ आद उत्सव समैयन में अच्छे–अच्छे गीत गाऊत हैं और जा तरां से बुरे–गन्दे गीत–गारियन से बचन लग जात हैं। ऐसों सुधार संगीत शिक्षा में ही हो पाऊत है। अच्छे गीत गावे सुनवे की आदत होवे तो गन्दे असलील अपने आप हमारे मन से दूर होत जात हैं। हम सब ऐसौ कर पायें ता सब जागां–रुच कौ सुधार हो जैहै अच्छे गीत गवैं – बच्चा सुदरें बिटिया देवी बनै।

नई दिल्ली के गृह कल्याण केन्द्रन में काय जानवे करवे बारी महिलान नै बड़े सरावे जोग काम करे हैं। बड़ी उन्नत करी है। सरकारी नौकरन की घरबारीं खाली समैं में सीवो–पिरोवो को काम करती हैं, इनामें पाऊती हैं, पैसा मिलत है जैसे वे काम करती हैं कऊ सब जनन की घरवारी ऐसे काम करन लगै तो बड़ी बात बन जैहे, इनै मौका दये जायें, इनकी तारीफ करी जाय, उनै बुलाओ जाय। तौ ऐसी संस्थायं अपनी रीति–नीति का फैलाव करके ऐसाँ कर देहै कि सबई जनी काम के जोग हो जैहें।

जातरां की उधारन की संस्थायें अपने आसपास– जैसे दमोह की महिला उद्योग सहकारी संस्था भी गिनी जात है। जो संस्था सिलाई के केन्द्र चला रई है। जाकौ उद्देस निरासिरत विधवां अनाथ और गिरी जनियन कों रोजगार दिवावौ है और जातरां उनकौं नई जिन्दगी दैवौ है। महिला ससकतीकरन ऐंसौई उपाय अव करवे की आगे आरऔ है।

सुद्ध भारतीय सोच की झांकी कऊँ देखनै है तौ वर्धा (नागपुर) को आश्रम माता कस्तूबा की दैन है। इन्दौर के लिंगा माता कस्तूरवा ग्राम संगठन देखवे जोग हैं, जब हम महिलान के कल्यानन के समाज सेवा के संगठनन के नाव लेत हैं तौ 'नारी कल्याण समिति' और संत विनोबा भावे द्वारा बनो ब्रह्म विद्या मंदिर कौ नाव सोई लै हैं। कांए के ब्रह्म विद्या मन्दिर के सबई काम जैसे खेती, पसु पालन, बुनाई, कताई आद सब महिलाएं करती हैं। ई को संचालन करवे बारी सोऊ एक महिलाई है।

आज सैं कछू वर्ष पैलें एक और नारी संगठन 'महिला जागृति अभियान' हरद्वार के शांतिकुंज में बनौ है। हियां वालिकान कौ एक देश में सबई तरां के शिक्षण और प्रशिक्षण दये जात है। औरतन को तीन मइना कौ प्रशिक्षण चलत है। इतै शिक्षा पाकै बिटियां देस के कौने कौने में महिला जागरण कौ संख फूंकती हैं। वे भारतीय आत्मा कौ उजागर करती है, महिलान कौ उनके बल कौ याद कराके आदमियन की बराबरी पै ठांड़ौ कर देतीं हैं।

अपनै देस में ऐंसी अनेकन संस्थायें है कन्या गुरुकुल देहरादून वनस्थली विद्यापीठ जयपुर के नाव लैवें, तबई बात पूरी हुयै।

आज की नई चाल में रमीं हमाई देवियां सोई कऊं बनावै लगी हैं – वे हाऊजी किटी गन्दे सिनैमा जैसे जुआ मस्ती के लगाव छोड़ कें कऊ भारत की आत्मा के संगठनन में अपनौ समऔ–शिक्षा और पैसा लगावे तौ उन संगठन कौ बल हजारन गुना बड़ कै कितनौ सुधार कर सकत है सोचवे की बात है।

नारी जागरण में ऐसे संगठनन कौ महत्व भुलाओ नई जा सकत है।

अब जरूरी बात जा कै हम जागरन कै नाम पै आधुनिकता माने नये फैसन भोगवादी आदतें जैसी बातें बढ़ावे वारी संस्थान से बचकै नये सौकन में नये जागरन के नाव पै भटकनन में न फंसै, और नाही घर के भीतर परदा करवे बारी पुतरिया बनकै रै जायें, न ही मात्र रसोइन बनीरांय आज हमें महिला जागरण में संख फूंककें – भारत की नारी की तरां उभरनै है।

– नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर म.प्र. □

लघुकथा :

ग्यारा मइना ठाठ के

एक ज्योतिषी ने सेठ जी खाँ ठक्का–ठाई बता दओ कै ई साल कौ एक मइना तुमाये लाने भौतई कष्टदायक है बाकी ग्यारा मइना सो बड़े ठाट–बाट से कटनें। सेठ जी ने चालाकी दिखाई और कष्ट कौ एक मइना पैलई काट लेबे कौ मन बना लओ। बे खूबई काम में जुटे रान लगे। न खावे–पीबे की सुध न शरीर की सुध। कछुअइ दिनन में उनने खटिया पकर लई सो घर बारन ने सेठ जी खाँ अस्पताल में भर्ती करा दओ। जहाँ उनके बाकी ग्यारा मइना बड़े ठाट–बाट से गुजरे।

– निहालअहमद सिद्दीकी, छतरपुर

सूका कुगत करी जा सबकी, खुटी हुमस गई सबकी।
परो बिकातौ भारी ऐसौ, सुनतन नारी सटकी।
अब की खों को देय सहारौ, सबकी गाड़ी अटकी।
कत 'विवेक' अब बेई सहारे, जो जानत घट–घट की।
०० ०० ००
देखौ खेता इन्द्र देवता का, कऊँ बाड़ें कऊँ सूका।
कऊँ बै गये घर–दोर बाड़ में, कऊँ गरमी दयें कूका।
पानी के करतब देखें जे, मन में उठत भबूका।
कत 'विवेक' माया कलजुग की, धरम–करम कौ चूका।

– नारायण दास सोनी,
राजमहल के पास, टीकमगढ़ □

लोक संस्कृति के संरक्षण की दिशा

— अयोध्याप्रसाद गुप्त 'कुमुद'

सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक ज्वलन्त प्रश्न चर्चा का विषय है कि पाश्चात्य देशों द्वारा किये जा रहे सांस्कृतिक आक्रमणों का मुकाबला सफलतापूर्वक किस प्रकार किया जा सकता है? इसका उत्तर खोजने के लिये आक्रमणों का प्रयोजन भी जानना आवश्यक है। स्थिति बहुत साफ है। इन आक्रमणों का प्रयोजन है कि हम अपने 'स्व' को भूलकर आक्रान्ताओं के इच्छित मार्ग पर चलें। भारत का व्यक्ति और समाज अपने केन्द्र से हटकर नाभिच्युत हो जाय। इसका सीधा प्रभाव होगा — अपनी गौरवमयी परंपराओं, भाषा और अस्मिता के अस्तित्व का संकट।

इकबाल के शब्दों में — 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन — दौरे जहाँ हमारा।' इसमें यह 'बात' क्या है? यह है इस देश की विराट लोक चेतना, लोक का पारस्परिक जुड़ाव, सांस्कृतिक परंपराओं का निरंतर पोषण और संवर्द्धन इसे कह सकते हैं लोक–संस्कृति। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है अपने मूल चिन्तन और प्रवाह के अनुरूप मार्ग का निर्धारण। इसीलिये हर ओर से लोक संस्कृति के संरक्षण पर बल दिया जा रहा है। सवाल यह कि इस संरक्षण की दिशा क्या हो?

लोक का अर्थ है सामान्यजन। इनमें अनपढ़, असभ्य, दलित, शोषित से लेकर सुसंस्कृत समाज तक का समुदाय सम्मिलित है। चूँकि भारत के अधिकांश आबादी ग्रामों में निवास करती है तथा दलित शोषित अविकसित एवं अशिक्षित समुदाय बहुलांश है अत: आज के अनेक शिक्षित जन लोक संस्कृति या लोक जीवन को असभ्य ग्रामीणों, दलितों एवं शोषितों की संस्कृति से समझते हैं। संस्कार से रहित शिक्षा–प्रसार से कथित शिष्ट होते जा रहे जीवन में लोकसंस्कृति के मूलतत्व संकटग्रस्त होते जा रहे हैं। उनके स्थान पर पनप रही अपसंस्कृति पनप रही है। भारतीय संस्कृति में पुस्तकों का ज्ञान तथा भौतिकवादी वैभव हावी होता जा रहा है। आत्मीयता का ह्रास होता जा रहा है। इसीलिये लोक संस्कृति से संपुष्ट लोकजीवन का संरक्षण सामाजिक आवश्यकता है। लोक संस्कृति के नियामक तत्वों के मूलस्वरूपों का चिन्हांकन तथा लोक जीवन के गूढ़तत्वों की युग सापेक्ष व्याख्या से ही हमारे शिक्षित बन्धु इस बात से आश्वस्त हो सकते हैं। कि लोक चिन्तन में शाश्वत जीवन मूल्यों तथा भारतीय संस्कृति का पोषण एवं रागात्मक बोध है।

यहाँ की लोकधारा वैदिक स्मृति पुरातन काल में प्रवाहित एवं भारतीय मनीषा से अभिसिंचित होती हुई लोक संजीवनी शक्ति के माध्यम से सभी वर्गों में समरसता का वातावरण बनाती रही है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज व्यवस्था समन्वयवादी, पारस्परिक स्नेह एवं सम्मानवर्द्धक हैं। ब्राह्मण की पुत्री के विवाह में भी नाई का विशिष्ट स्थान है। सामाजिक एकता में सभी वर्ग अन्योन्याश्रित हैं। पारस्परिक सहयोग भावना लोक जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जन्म से मृत्यु तक पारिवारिक कार्यों में बुलौआ के माध्यम से प्रियजनों का एकत्रीकरण एवं आर्थिक सहयोग होता है। मिल बैठकर सामूहिक मंगल गायन के साथ हर कार्य अनुष्ठान का स्वरूप ले लेता है।

शौर्य और सदाचार की पूजा लोक जीवन का विशेष गुण है। वीरता और जनसेवा केवल बखानी नहीं जाती है, उसे देवत्व की प्रतिष्ठा दी जाती है। जब गांव या लोक का कोई लोकसेवी व्यक्ति लोकसेवी इतिहास बनाता है — तो वह सिद्ध बाबा, खैरबाबा, मनसिल माता कथरियादेवी आदि नामों से पूज्य बन जाता है। हरदौल तथा कारसदेव आदि ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने आदर्श के कारण मानव होकर भी देवत्व की गरिमा प्राप्त की। वे हर गांव में यत्र तत्र सर्वत्र पूजित हैं।

ज्योतिष की मान्यता लोक में विशेष रूप से है। सौर गणना पर आधारित पूर्णिमा और अमावस्या यहां के सदाबहार लोकपर्व है। अधिकांश लोकपर्व इन्हीं तिथियों से जुड़े हैं।

वैदिककालीन संस्कृति से न केवल संस्कार अपितु रीति रिवाज भी प्रभावित हैं उस समय बलिवैश्य देवयज्ञ एक नियमित आचरण था। इसके अंतर्गत पांच देवताओं गाय, चींटी, पक्षियों, श्वान तथा अग्नि को भोजन का प्रथम नैवेद्य समर्पित किया जाता था। सभी का प्रतीक अग्नि को मानकर प्रथम पक्वान्न अग्नि को समर्पित करते थे। आज भी चूल्हे पर बने भोजन की प्रथम लोई अग्नि को भेंट करने की परंपरा है। गाय कुत्ते को कौरा निकालने की परंपरा कई क्षेत्रों में है।

सभी संस्कार, रीतिरिवाज लोकाचार एवं दैनिक चर्चा के अनेक कार्य जिस वैज्ञानिकता का संदेश देते हैं उससे प्रतीत होता है। कि लोक अंचल के मनीषियों ने सामान्य जीवन को विज्ञान संगत एवं पर्यावरण–बोधक बनाने के लिये महती प्रयास किया था। पीपल, बरगद, आंवला, क्षेंकुर, तुलसी, केला आदि अनेक वनस्पतियों को पूज्य कोटि में रखा गया है। पर्वतों, नदियों, सरोवरों की पूजा की जाती है। उनके प्रति देवत्व की भावना उनकी रक्षा के प्रति समाज बोध जाग्रत करती है। भोजन बनने के पश्चात् तुलसीदल डालकर ठाकुर जी को प्रसाद लगाकर ही खाना तथा तुलसी के विरवें को नित्य जलदान करके पोषित करना उसकी महत्ता प्रमाणित करती है। यह तुलसी का वैज्ञानिक पक्ष है जो दैनिकचर्या के माध्यम से लोक

जीवन का अंग बना हुआ है। ऐसे अनेक विधान है जो लोक जीवन में वैज्ञानिक सोच को पुष्ट करते हैं किन्तु युगों के अन्तराल में अनेक रीतियों का लोकाचारों का स्वरूप विकृत हो गया अथवा वर्तमान समय में उनका पक्ष समझने में असमर्थ जन उन्हें ढकोसला, पुरानपंथी कहकर उनका उपहास करने लगे। जबकि वे शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है।

उदाहरण के लिये शिशु जन्म के कुछ दिनों बाद शिशु को घृत मधु स्वर्णकण आदि चटाने की परंपरा है। यह सभी पदार्थ शोधक विकारनाशक तथा देह पुष्ट करने वाले हैं। मुण्डन के पश्चात् बेसन की लोई सिर पर फेरने या लेपन करने की परंपरा है। मुण्डन के कारण से उत्पन्न घाव आदि के बचाव का यह लोक–विज्ञान है। प्रसूता को सौर में अजवायन का धुआं देने नीम या लोंग के जल से स्नाने कराने, पीपर का अति प्रयोग करने चरुआ के जल में वनस्पतियां डालकर उसका काढ़ा देने का विधान आयुर्वेद सम्मत है। चेचक निकली होने पर घर में सब्जियों का छौंका लगाने, नाई से बाल बनवाने, धोबी से कपड़े धोने हेतु देने का निषेध है। क्योंकि इससे इस संक्रामक रोग के कीटाणु अन्य स्थानों पर जाकर संक्रामकता फैला सकते हैं। अतः इनका वर्जन लोकहित में है इस दृष्टि से संस्कारों, लोकाचारों तथा रीति रिवाज का वैज्ञानिक अध्ययन एक स्वतंत्र शोध का विषय है।

इस दृष्टि से यह अपेक्षित है कि सम्पूर्ण देश को विभिन्न सांस्कृतिक अंचलों में विभाजित करके प्रत्येक इकाई के निम्नांकित पक्षों का गहन सर्वेक्षण किया गया।

(१) **संस्कृति पक्ष** — इसके अंतर्गत लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोककथायें, लोकगाथायें, लोकसुभाषित (कहावतें, मुहावरें, पहेलियां) रीतिरिवाज, पर्व, मेला, लोकदेवता आदि की चर्चा की जा सकती है।

(२) **कलापक्ष** — इसके अंतर्गत भूमिभित्ति अलंकरण, लोकशिल्प (मूर्तिकला, खिलौने, काष्ठशिल्प, धातुशिल्प, प्रस्तर शिल्प, वेश भूषा, आभूषण) तथा गोदना, मेंहदीरचना आदि पर चर्चा की जा सकती है।

(३) **सभ्यतापक्ष** — इसके अंतर्गत आवास–प्रवास, रहन–सहन, दैनिकचर्या, लोकाचार, टोटका, घरेलू, इलाज, भोजन व्यंजन, लोकरंजन, उद्यम, व्यापार आदि की चर्चा की जा सकती है।

उक्त आंचलिक इकाइयों के सर्वेक्षण से प्राप्त सामग्री का समग्रता (एकात्मता) की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है, इससे राष्ट्रीय लोक संस्कृति का एकात्म दर्शन हो सकेगा।

लोकगीतों के भावपक्ष को भलीभांति व्यापक संदर्भों में समझने की आवश्यकता है। एक बुन्देली लोकगीत गाने की परंपरा है —

सुगर बड़ैया राजा बड़ैया राजा बुलवाऔरे।
बीच में मड़वा गड़वाऔ रे।
चारऊ कोंनिन चार खंभ लगवाऔ रे।
गइया कौ गोबर मंगाऔ, ढिंग दै आँगन लिपाओ रे।
मुतियन चौक न पूजें मोरे बाबुल
चून को चौक पुराऔ रे
चंदन की पटली न पूजे मोरे बाबूल
चून को चौक पुराऔ रे
चंदन की पटली न पूजे मोरे बाबुल
छेउले की पटली मंगाओ रे।
कंचन कलश न पूजें मोरे बाबुल
माटी के कलश धराऔ रे।
सोने के गनेश न पूजें मोरे बाबुल
गोबर गनेश धराऔ रे।
इमरत अरध न पूजें मोरे बाबुल
जल कौ अरघ दिवाओ रे।

सामान्य दृष्टि से देखने पर इस लोकगीत में मण्डपाच्छादन तथा उसके नीचे होने वाले आचार विधान का वर्णन है। अर्थ इस प्रकार है — 'हे राजा! कुशल बढ़ई, राजा बढ़ई बुलवाओ। चारों कोनों पर चार खंभे लगवाओ। बीच में मण्डप गड़वाओ। गाय का गोबर मंगाओ। ढिंग देकर (किनारी सजाकर) आंगन लिपवाओ मेरे पिता मोतियों का चौक नहीं पूजते हैं — आटे का चौक (रंगोली) बनवाओ। मेरे पिता चंदन की पटली नहीं पूजते हैं। छेउले की लकड़ी मंगाओ। मेरे पिता स्वर्णकलश नहीं पूजते हैं, मिट्टी का कलश स्थापित कराओ। मेरे पिताजी सुवर्ण की गणेश प्रतिमा नहीं पूजते हैं, गोबर के गणेश स्थापित कराओ। मेरे पिता अमृत का अर्घ नहीं देते हैं जल का अर्घ दिलाओ।'

गरीब की कुटिया से जमींदार (शासक) तक सभी परिवारों में वैभव से दूर सामान्य परंपराओं का पोषण एवं जनसुलभ पदार्थों का उपयोग होता है। सामाजिक एकरूपता की स्थापना का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है? यही सच्चे अर्थों में जन संस्कृति है।

इसी प्रकार गड़रिया जाति में विवाह में समय एक कहावत कहने की परंपरा है यह कहावत पंचों द्वारा कहे जाने से विवाह संपन्न हो जाता है। कहावत इस प्रकार है —

झुमक तुरैया कैसी बैठ जा मौड़ी ऐसी।
भूरा कुमड़ा कैसों, बैठ जा मोड़ा ऐसौ।

वहां उपस्थित कोई भी व्यक्ति इसका अर्थ जानने का प्रयास नहीं करता है। उपस्थित जन मात्र इतना समझते हैं कि विवाह पढ़ा जा रहा है। इस कहावत का सामान्य अर्थ इस प्रकार है —

लड़की! तू इस तरह (सिमटकर) बैठ जैसे तुरइया की झुमक बेल (बेल की मर्यादित सघनता) में तुरइया। लड़का! तू इस तरह बैठ जैसे (ऊपर से अलग दिखाई देने वाला) भूरा कुम्हड़ा। इस कहावत के सही अर्थ तक पहुंचने के लिये यह समझना आवश्यक है कि तुरईया की बेल की सघनता के बीच

तुरइया मर्यादित सी ढंकी हुई रहती है। ठीक उसी तरह भारतीय समाज की व्यवस्था में एक विवाहिता से मर्यादा अपेक्षित है। दूसरी ओर सफेद कुम्हड़ा (फल) अपने परिवेश की हरीतिमा में दूर से अलग दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार वर से वह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज (बहिर्जगत) में अपनी स्पष्ट पहिचान स्थापित करें। इस कहावत से एक जाति विशेष की परंपरा और संस्कृति को समझने में मदद मिलती है।

यह तो उदाहरण मात्र है ऐसे पारंपरिक लोक साहित्य में सभी आंचलिक लोक संस्कृतियों को समझा जा सकता है। शर्त यह है कि हम ठेठ गांव में जाकर देवेन्द्र सत्यार्थी और रामनरेश त्रिपाठी की भांति यायावर जीवन बिताकर लोकमुक्ता ढूंढकर लायें।

लोकगीतों का भावपक्ष समझना ही पर्याप्त नहीं है इनकी पारंपरिक धुनों का संरक्षण भी आवश्यक है इनकी गेयता की परंपरा की सुरक्षा के लिये इनकी स्वरलिपि बनाना आवश्यक है। लोकगीतों की पारंपरिक धुनों अथवा शास्त्रीय गायन में मूलाधार चक्र से सहस्त्रार तक विभिन्न अंग उपांगों के मंथन एवं षटचक्र जागरण से समाधि तुल्य आनन्द प्राप्त होता है। इससे तन मन प्रमुदित होता है।

इसी प्रकार नृत्यों की विभिन्न मुद्राओं एवं भंगिमाओं से विभिन्न योगमुद्राओं का सृजन होता है। इन सब पर योगशास्त्र के सापेक्ष अध्ययन की आवश्यकता है। इस दृष्टि से मूल नृत्य संरचना तथा भाव–भंगिमाओं का अभिलेखीकरण वीडियो द्वारा करके नृत्य के मूलस्वरूप को संरक्षित किया जाना अपेक्षित है। इससे इसकी वैज्ञानिकता समझने का अवसर मिलेगा।

निष्कर्षत: लोक संस्कृति के संरक्षण की दिशा में सार्थक प्रयास करना होगा कि विभिन्न विधाओं के मूल स्वरूपों के अभिलेखीकरण तथा उनकी सम्यक् व्याख्या लोक परंपराओं के वैज्ञानिक अनुशीलन द्वारा ही की जाय।

— मण्डपम्, राठ रोड,
उरई उ.प्र. □

बुन्देली लटके

— माधव शुक्ल 'मनोज'

बुन्देलखण्ड में लटके की कहन उसकी सहज–सरल लटक एक व्यंगात्मक संवाद है, जो अपनी लय में कहीं तुकान्त कहीं अतुकान्त होकर अपने मौलिक प्रतीकों–भावार्थों शब्दों में मन की सोच–समझ को व्यंग में उछालती है। जैसे बुन्देली एक बहुचर्चित लटका उदाहरणस्वरूप दृष्टव्य है —

गुर हो तौ —
गुलगुला बनाऊते
लेते कनक उधार
अकेलो–तेलई नईयाँ।

बा–भई–बा तो फिर आप के पास क्या था? फिर भी इस लटके के आटे–तेल में गुलगुलों का स्वाद अपने आप महसूस कर उन्हें चखा जा सकता है और एक ठहाका देकर हँसा भी जा सकता है। ये लटके नटखरी दिमाग में उपजते हैं जो आसपास एक हलचल सी छोड़ कभी गहरे में डुबाते और समय की लहरों में तैराते भी हैं। लटकों से प्रभावित हो मैने उनकी शैली को अपनाया है। मेरे प्रकाशित बुन्देली काव्य संग्रह– 'धुनकी रुई पै पौआ' में वे देखे परखे जा सकते हैं। जिनमें मैंने आज के यथार्थ की स्थितियों–परिस्थितियों एवं उसके वातावरण को सत्य की साक्षी देते हुए पिरोया है — जो तुलसी रुद्राक्ष की माला जैसी नहीं। वे अलग नये स्वरूप में आज की जन–मानसी भावनाओं को लेकर गूंथे गये हैं। अब आगे कुछ और मौलिक समसामयिक लटके आज के समय की उड़ती धूल–बहते पानी में गरमाये हैं। ऐसे ही कुछ लटकों की ताप–तपन आप के सामने हैं —

जा–सांस
कबहुँ–कबहुँ
अपनी चन्द्रबिन्दी
बाहर निकार कें
कोनऊँ लजवन्ती बहू की
बन जात है — सास।
जा — सांस।।१।।

इते–जमना
उते–गंगा
वे आयते–सपरबे
सो रिपट परे...
लगीती काई।
पता नहीं वो घाट
कौन कौ हतो
चुप्पी साध गओ हैं
महादेव — बजरंगबली
देई–माई।।२।।

इनें–उनसें
उने–हमसें
का–का–कई
बहरा ने गूंगा सें जा कई —
ककई तो बाजार में बिकत है
जाओ लय–आओ।
ज्यादां ने बतयाओ।।३।।

बा–रस्सी
बहुतई–कच्ची
कोई कौ फन्दा–फांसी
हाय–दैया।
ऐसी मौत के मकरजारे में
फंस नें जइयो–भइया।।४।।

उनके–कितनऊँ
पांव–लागो
बैठो–उठो–झुको
पांव परो–पईयाँ।
पथरा की जात
पानी पे उतरात नईयाँ।।५।।

मौसम–मौका–औसर
वे का जानें–पहिचानें
जिनें एकई सो दिन
अुर–रात है।
बारहों–महिना —
टपटपात बरसात है।।६।।

अपनी धरती
अपनी नदी
फिर काय इन ओठों पे
माटी सी पपटया जात है–प्यास
कहबे खों कहत है —
आशा कौ आसमान है
तरईयाँ देखत कब लौं —
टंगी रह है जा आश।।७।।

रेलगाड़ी तो चलत
ठाँडी होत
भकभकात दिखात है।
जा धकधकात–धड़कन
कौन सी गाड़ी है —
जो खुदई खों नई दिखात है।।८।।

राम–रहीम के काज में
इन्सानियत–हैवानियत में
काय, बदल गई है
जो कैसो अनहोनो झकोरा।
अल्ला के गांव में कांटे
अुर भल्ला की झुपड़िया में
सूखी पत्तियाँ–बेर–मकोरा।
जा कैसी खलबली।
कहूँ–अली–अली।।
कहूँ–बजरंगबली।।९।।

भलेंई–टपटपात रहबें
उनके बाग–बगीचा के
पके मीठे–रसीले आम।।
वे तो अपनी धुन में
फक्कयात् चले जात हैं।
झोलियों में भरें —
काजू–किसमिस–बादाम।।१०।।

खरचा कैसें चले राम जी
धेला–पईसा की तंगी।
इतनई पे वे कहें ठाट सें
हम तानसेन के भाई–भतीजे
सुरतानों में चौरंगी।
फटे बांस से बेसुर गावें —
लै हाथों में सारंगी।।११।।

नें हल्ला नें गुल्ला
गूँगा–बहरा–निठल्ला
काय, लगत है जो पल–छिन।
ऐ–भैया–हम पूँछत हैं तुमसें
सच्ची कहियो–बतईयो
जा रात आय कै दिन।।१२।।

इते–उते की बातें–बतियाबे खों
ठिकानोई नईयाँ
कोऊ नें कहाँ का–कही।
इन अँखियन की डिबिया में
काजर सी जमी रात
दूध सो फटो दिन–दही।
वो को आय–हाथों में लएँ मथानी
भाँऊत है — मही।।१३।।

वे तो कविता खों
भुरता सी मींथत हैं
तुकौ कौ लगाऊत हैं तेज बघार।
मिरची कौ देत है — धाँसो
परसत हैं भाव–मसालेदार।
ठसका–मसका लगा–लगू कैं
अपनी लौंग–खुआऊत पान।
छूवे खों आकाश उड़त वे —
कोरे ठड्डा और कमान।।१४।।

—हाइसिंग बोर्ड कॉलोनी,
एम.आई.जी ४२
कविता नगर, अवन्तिविहार,
तेली बांधा, रायपुर (छत्तीसगढ़)

बुन्देली लोकगीतों में दलित चेतना

— डॉ. आर.बी. पटेल

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लोकसाहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, यहाँ तक कि सुदूर अतीत के आदि मानव की उत्पत्ति के साथ ही लोक—साहित्य का आविर्भाव माना जाता है और जिस प्रकार मानव परम्परा अपने नाना रूपों में नित्य नवीन परिवर्तन, परिवर्द्धन करती अक्षुण्ण है, उसी प्रकार लोक साहित्य (लोकगीतों) की धारा भी अविरल गति से प्रवाहमान है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी साहित्य के अध्ययन से समकालीन समाज की परम्पराएँ, रीति—रिवाज, रहन—सहन, खान—पान, वेश—भूषा, जातिपांत और सामाजिक व्यवस्था आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत वर्ग भेद, जाति भेद आदि देखने को मिलता है। बुन्देली लोकसाहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। लोकगीत लोकसाहित्य के प्राण कहे जाते हैं, क्योंकि लोकगीत मानव के संस्कारों से जुड़े एवं मानव हृदय के उद्गार है। इन उद्गारों में 'दलित चेतना' का संचरण भी उभरकर सामने आया है।

बुन्देलखण्ड का एक दलित किसान अनावृष्टि से परेशान है। इस व्यस्था से पीड़ित किसान अपनी परिस्थितियों का उल्लेख करता हुआ, लगने वाली तिहाई का वास्तविक चित्रण गीत के माध्यम से कर रहा है —

हमाई कैसे चुकत तिहाई।
मैंड़न मैड़न हम फिर आये डीमा देत दिखाई।
छोटी छोटी बाल कड़ी है, कूरा रओ फरई।
जिमींदार कौ आओ बुलउआ, को आकरत सहाई।
टलिया बछिया साउकार लई, रै गई पास लुगाई।।
हमाई..........

सरकार द्वारा इस वर्ग की उपेक्षा की गई है साथ ही वह जिस समाज में रहता है उस समाज के उच्चवर्गीय व्यक्तियों द्वारा भी उसका शोषण किया जाता है। शोषण की शिकार महिला अपनी व्यथा गीत के माध्यम से कुछ इस प्रकार व्यक्त करती है —

चैता के चरेरे धाम काये के उड़ना करलौं।
जो रसिया बलम मोरे घरै होते, वे बिसा कें चुनरी देते उड़ाय।
जो ससुरा मोरे घरै होते, वे बिसा कें चुनरी देते उड़ाय।

कुछ ऐसे ही भाव निम्न गीत में एक महिला द्वारा व्यक्त किए गए हैं —

खेती बारे खाँ बड़ौ है गुमान, लाल दिन, डूब गयो छोड़त नइयाँ।
अरे हाँ रे लाल दिन, डूब गओ छोड़त नइयाँ।
सबकी तौ गैयां बंध गई,
मोरी दोरे मा ठाड़ी रभाँय लाल दिन डूब गयो छोड़त नइयाँ।।
सबके तौ दियला उजर गये,
मोरौ आरे मा धरौ है ललाय, लाल दिन डूब गयो छोड़त नइयाँ।

दलित महिला की इस याचना से सम्पन्न किसान याचना को नकारते हुए और अधिक कटाई के लिये लंबी माँग (पंक्ति) भरा लेता है। यथा —

अरे हाँ हो दिन डूबे भरा दई लंबी मांग किसान भइया,
बेरा रे भई घर जावे की।
मोरी धरी रे पछताय, बेरा भई घर जावै की।।

कृषि कार्यो के अलावा दलित वर्ग से सेवा के कार्य भी कराये जाते हैं। चाहे घर की साफ सफाई हो, चाहे पानी भरनें का काम हो, बरतन साफ करने या किसी को बुलौआ भेजने का काम हो। एक गीत दृष्टव्य है जिसमें एक माली जाति की महिला को फूल लाने के लिये आदेशित किया गया है —

मलिनियां फुलवा ल्याव नदन बनके।
बीन बीन फुलवा लगाई बड़ी रास, उड़ गये फुलवा रै गई बास।।

इसी प्रकार का एक आदेश नाई जाति की औरत के लिये किया गया है। जो इस प्रकार है —

करकै सबुर मनइँ—मन मुखिनी ने नाइन बुलवाई,
दैन बुलौआ गाँव भरे में तुरत ताय पौंचाई।।

गांव या शहर की सफाई का काम भी दलित वर्गीय व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। जिसका उल्लेख एक उच्चवर्गीय महिला द्वारा स्वयं गीत के माध्यम से किया गया है —

अरे मोरौ कलुआ मैंतर आव रे नगर में, कलुआ मैंतर आव रे।
अमाउस पूने रोटी कौ लैवो, हरदम काम खों आव रे।
जूंठन जांठन घरई खों लै गऔ, द्वारे पै नई खाओ रे।
जौ कऊं कलुआ द्वारे पै खावै भरकें नोन भंजाव रे।
अंगला बंगला झारत फिर रऔ, खोरन खोरन धाव रे।।

बुन्देली साहित्य में दलित वर्गीय खान—पान, रहन—सहन आदि के संकेत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। एक दलित वर्गीय व्यक्ति अपने खान—पान के संबंध में कह उठता है —

कउआ के बोलें मउआ भूंजे, भर दुपरै लटन की मार।
दिन डूबें डूबरी चढ़ी, भोर मची ज्योनार।
काउयै कठेला अरे दो दो दये, काउयै दये दो चार।
घर कौ बूड़ौ अरे भिल्सया गऔ, हंडिया लै गऔ तला की पार।।

दलित वर्ग अपना गुजारा कैसे करता है, इसी का एक

रूप दृष्टव्य है —

लेलौ हरे घांस कौ गट्ठा।
एक मुठी कौ पूरा बांदे, डेड़ मुठी कौ गट्ठा।
गैल गली में ररियाँ कर रऔ, धरैं मुड़ी पै गट्ठा।
चुनी भुसी की रोटी खाऔ, पिऔ पेट भर मट्ठा।
पौंदन पाछूं हसियाँ खोंसे, जोरौ बनो दुपट्टा।
मो गरीब पै औ मालिक, जिन करौ कोउ रे ठट्ठा।

बुन्देली साहित्य दलित वर्गो की सामाजिक स्थिति का ज्ञान भी कराता है। यथा —

पच्छियन में कउआ, औ आदमियन में नउआ।
बाप भरे काउ कौ, हंड़िया टांगै नाऊ कौ।

ऐसी ही एक कहावत अहीर जाति के सम्बन्ध में कही गई है—

जौ अहीर पिंगल पढ़ै, एक भूत लागो रये।

इस कहावत से अहीर जाति की सामाजिक स्थिति उजागर होती है। एक स्थान पर कुम्हार जाति के सम्बंध में भी कहा गया है—

कुम्हार की बऊ खों का देखने,
घूरन घूरन कन्डी बीनत फिन्नें।।

बुन्देली की एक कहावत में तेली जाति के लोगों को देखना भी अपशकुन माना गया है —

तेली दिखानों तो सो बनतइ काम बिगड़ गऔ।।

इतना ही नहीं बुन्देली साहित्य में तो जातीय स्वभाव के सम्बंधों में कहा गया कि दलित वर्गीय व्यक्ति डाँट—फटकार व मारपीट से ही ठीक ढंग से काम करते हैं। यथा —

ठाकुर जात पुटयायें से, बामुन जात जिमाये सें।
मानत कायस्थ लये दयें से, और जात जुतयाये सें।।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बुन्देली साहित्य में 'दलित चेतना' का पर्याप्त भण्डार भरा हुआ है, जिसके अध्ययन से दलित वर्गों के जन्म से लेकर मरण तक के कार्य व्यापारों की जानकारी उपलब्ध है अर्थात ''बुन्देली साहित्य और दलित चेतना'' पर अनेकों शोधकार्य किये जा सकते हैं।

— शास० हाई स्कूल, बमनौराकलाँ
जिला छतरपुर म.प्र. □

बुंदेली जिंकड़ी भजनों की कथात्मकता एवं दार्शनिकता

– डॉ. सुश्री शरद सिंह

जब कोई व्यक्ति किसी त्रासद स्थिति से गुज़र रहा हो तो ऐसे समय में उसे उस व्यक्ति की तलाश रहती है जो उसके दुख–दर्द सुने और उसकी त्रासदी का उन्मूलन करके उसे आंतरिक एवं बाह्य पीड़ा से छुटकारा दिलाए। त्रासदी के समय ढाढ़स पाने के लिए व्यक्ति को आवश्यकता होती है एक अतिविश्वस्त सहारे की और ऐसा सहारा कभी उसे ईश्वर में दिखाई पड़ता है, तो कभी किसी महानायक में दृष्टिगत होता है जोकि उसके आराध्य के समान हो। अपने इसी अतिविश्वस्त सहारे से अपना दुख–दर्द कहने, उसे सहायता के लिए पुकारते हुए उसकी प्रशंसा करने तथा उसके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करने की लयात्मकगेय शैली ही वस्तुतः भजन है। विश्व की प्रत्येक भाषा एवं प्रत्येक बोली में भजन गाए जाते हैं। बुंदेलखण्ड में भी भजनों के आगार अपनी मौलिक विशिष्टताओं के साथ विद्यमान हैं।

सुमरनी, भक्तें, पुंवारे, आरती, मंगल आदि के ही क्रम में अद्भुत दार्शनिकता एवं कथात्मकता से परिपूर्ण हैं जिंकड़ी भजन। इसे लावनी की भांति गया जाता है। इसीलिए इन भजनों के गायन के स्वरों का सुंदर उतार–चढ़ाव सुनने को मिलता है। जिंकड़ी भजनों के गायन में टेक का बहुत महत्व है। लगभग प्रत्येक चार–पांच पद के बाद टेक का प्रयोग किया जाता है।

जिंकड़ी भजनों में विषय की विविधता मनोदशा पर निर्भर रहती है। जिस समय मन शांत है और अपने आराध्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहता है उस समय भजन में आराध्य की स्तुति एवं प्रशंसा की प्रधानता रहती है। उदाहरणार्थ –

१. *दीनबंधु भगवान महाबल जानियो।।*
जाके कोऊ ने होय, ऊपर दल साजो।
लयो समुन्दर सोख, निपूतो टीटई काजो।।...

२. *जिनको गनेश हैं प्यारे, बे कभऊ नइयां हारे।।*
प्रथम सुमरि गनपति खों गायें, ताके काम सिद्ध हो जायें।
अंत समय गति देत हैं बेई, चंदा–सूरज उनपै वारे।
सदा करे मूसा पे सवारी, देत दात दीनन हितकारी।
बेई पार लगाबे वारे, बेई तो हैं जग रखवारे।।
जिनको गनेश.........।।

आराध्य की प्रशंसा एवं विनती का सम्मिलित स्वरूप जिंकड़ी की कथात्मकता में देखने को मिलती है। यह कथात्मकता कभी–कभी 'हनुमान–चालीसा' की भांति आराध्य के द्वारा किये गए जनकल्याण के कार्यों एवं शौर्य गाथा के रूप में उद्घाटित होती है। जैसे –

१. *लाज मोरी राखो गिरधारी आज सभा के बीच।*
असुआं ढारत कहे द्रौपदी, सुनियो श्री महाराज।
जब भक्तन पै भीर परी, तुमई संवारे काज।
मारे लंका के रावन खों, दिये विभीषन राज।
ध्रुव प्रहलाद हरीचंद राजा, सबकी राखी लाज।।...

२. *भेजा तपसी ने हनुमान जब संजीवनी लैवे खों।।*
कालनेमि सुनि बात मेरी चित लाके
मारग में माया रचो अभी तुम जा के
चोरी से ले गये बैद यहां से आ के
तुमई हो मीत भारी, जे लाने अरज गुजारी
रखियो मोरी लाज सिद्ध कर काज
लंका में तोसा नई बलवान।। भेजा तपसी ने हनुमान।।

३. *मोरी अरज सुनो सरकार, मोरी नैया कर देओ पार।।*
राम नाम से लगो लओ भगत प्रहलाद ने ध्यान
हिरनाकुस को मारो, प्रभु खम्बा में से निकले आन
जूठे फल सबरी सें खाये, सोई सुदामा के तन्दुल भाये।
जरजोधन के मेवा त्यागे, जिन ने उनखों प्रेम से ध्याये।
मोरी अरज सुनो......।।

जिंकड़ी भजनों में पूरी की पूरी राम–कथा भी गाई जाती है। इनमें भगवान राम के जन्म से लेकर रावण के संहार तक बड़ा रोचक वर्णन रहता है। वाल्मीकि रामायण अथवा तुलसीदास की रामचरित मानस के समान रसों, संवेगों एवं भावनात्मकता का सुन्दर समावेश मिलता है। जिंकड़ी भजनों की राम–कथा के राम जहां अद्भुत शक्तियों के धनी हैं वहीं एक साधारण मानव की भांति परिस्थितियों के विषम प्रभाव से प्रभावित होते हुए दिखाई पड़ते हैं। जैसे लक्ष्मण को शक्तिबाण लग जाने के उपरान्त श्रीराम की विह्वलता के वर्णन की कुछ पंक्तियां देखिए–

बोलो बचन बिसार, बसाना पार
हुआ लाचार, भ्रात के कहां लगो है बान।।
धर घुटनों पे शीस, कहै जगदीश
सुनो मोरे भाई, अब तुम बिन वीरन
कौन जो लड़है लड़ाई
राम दल नैनों भर रोया, भाई लछमन कैसे सोया
पूछेगी दुनिया सारी, मोरे नगर के नर औ नारी
मोरी सुमित्ता महतारी, मर जेहै मार कटारी
पूछेंगी जब बे हाल, कहां गओ लाल
लखन कहां छोड़े कृपानिधान।। मन में सोच करत।।

जब जीवन में असत् के ऊपर सत् की विजय होती दिखाई देती

है तो व्यक्ति स्वयं ही सत् और असत् के बीच चुनाव करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है और तब वह दूसरों को भी उपदेशात्मक वचन बोलने लगता है। इन वचनों में यथार्थ जीवन दर्शन निहित रहता है —

मनुष तन पाके भज ले सीता—राम।।
बालापन गए बीत, ज्वानी रस की छाई
निगत में निरखे देह, ने सूझे तनकऊ भाई
इते उते छलिया बन डोले
परनारी देख मुस्कयावै।। मनुष तन पाके।।
ज्वानी जो गई बीत, बुढ़ापा आन तुलानो
कांपन लागी देह, निंगत में पांव पिरानो
नैंनन नीर ढलक रये री माया।
मुख सें नईं कै पाये राम।। मनुष तन पाके।।

बुन्देली जिंकड़ी भजनों में कथ्य का अनगढ़ स्वरूप होते हुए भी चिन्तन की गहराई पाई जाती है ये जीवन क्या है? इस जीवन को सद्‌गति कैसे दिलाई जाए? अपने आराध्य के प्रति अपने समर्पण को कैसे स्पष्ट किया जाए? ये तमाम गंभीर प्रश्न जिंकड़ी में सहज भाव से गायन के रूप में व्यक्त कर दिये जाते हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज बनावटी लोकगीतों की भीड़ में जिंकड़ी जैसे विशुद्ध मौलिक भजनों का गायन कम हो चला है। आज यह बुंदेलखण्ड के सुदूर ग्रामीण अंचलों में ही गाया जाता है। भजन की यह अनुपम विधा यदि इसी प्रकार उपेक्षा की शिकार रही तो एक दिन यह भी विलुप्त हो जाएगी और जिंकड़ी भजनों के गायक भी अपने स्वर भूल जाएंगे।

— एम/१११, शांतिविहार,
रजाखेड़ी, सागर म.प्र. ☐



चित्र—सरोजा रावत, भोपाल

आज काहे के लाने अबेर कर दई

— कमल सिंह सोलंकी 'शिक्षक'

आज काहे के लाने अबेर कर दई।
घुप्प अंधेरो भओ है कबको
खा पी के सोनो हो रओ सबको
फिर पीने के लाने का देर कर दई।
आज..........।।

अच्छे समझ के तो मैं आई थी
नहीं पीने की कसम खाई थी
फिर पी के आये अन्धेर कर दई।
आज..........।।

धन को नाश होत है तन को
ऐसो तो अच्छो लगे नहीं मनको
कंचन सी काया जा ढेर कर लई।
आज..........।।

हममें बताओं काहा कमी है
हमसे तुम्हारी गिरस्थी थमी है
सई साँझ से मैं तो खूब टेर रई।
आज..........।।

मैं न चाहूँ सोने चाँदी के गहने
मोड़ा तो फटो पुरानों पहने
नोन मिरचा से मैं तो बसर कर रई।
आज..........।।

पीने की गल्ती कभी मत करियो
मेरी बात कान पे धरियो
नई माने तो जा घर आग धर दई।
आज काहे के लाने अबेर कर दई।

— जासलपुर, होशंगाबाद, म.प्र. ☐

चौकड़ियाँ

— लल्लूमल चौरसिया

जौलौ पर असरेउ रैहौ, सब के धक्का खैहौ
तनक बातखां सबके मौके, तरफ देख घिघियेहौ
पेट पालवे दो रोटिन खां, ऊँच नीच सब सैहौ
मान मिलै तब गुइयां जब खुद, अपनौ करकें खैहौ।

आंसे पर असरेउ रैबौ, उल्टी सीदी सैबौ
जानमान झूठी बातन में, हांजू हांजू कैबौ
मन खां मार अनीत अनर्गल, कामन में संग दैबौ
पीर मिटै पीरा में पीड़ित, सीक लेय संग दैबौ

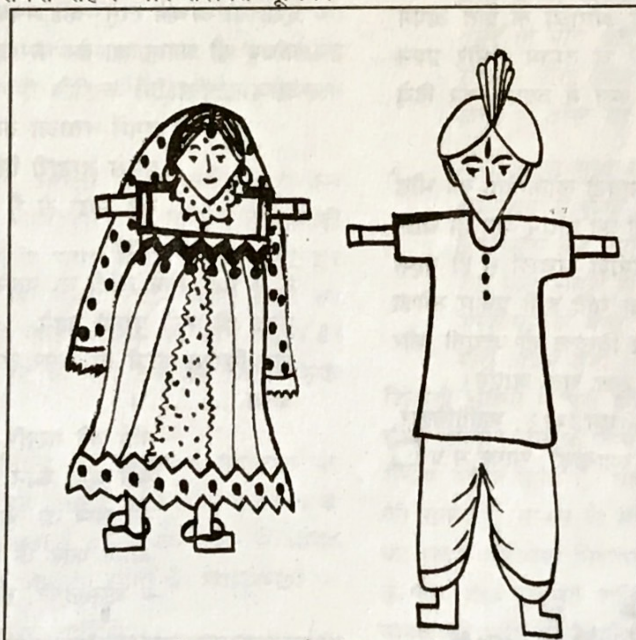
— सीताराम कॉलोनी, छतरपुर म.प्र. ☐

लोक जीवन में लोकोत्सवों का महत्व

— सुधा रावत 'क्षमा'

प्रत्येक समाज का अपना एक बहुत ही निजी जीवन होता है। अपनी अलग बोली अलग रहन–सहन और अलग संस्कार होते हैं। जो एक साथ मिलकर लोक–संस्कृति कहलाते हैं लोकोत्सव इसी लोक–संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। दूसरे शब्दों में कहें तो लोकोत्सव वह दर्पण हैं जिसमें लोक–जीवन और ग्रामीण संस्कृति की सम्पूर्ण झांकी प्रस्तुत करने की क्षमता है।

तीज–त्योहारों और संस्कृति के धनी बुन्देलखण्ड के पास अपने भावों और संस्कृति को व्यक्त करने के जो विविध माध्यम हैं उनमें लोकोत्सव सबसे सहज और सशक्त भूमिका निभाते हैं। ये लोकोत्सव ही हैं जो नई पीढ़ी को संस्कारवान बनाते हैं और उनमें नैतिक शिक्षा और व्यवहारिकता का बीज बोते हैं। इन लोकोत्सवों का उद्देश्य मात्र हर्षोल्हास मनाना या खेल खेलना ही नहीं वरन् जीवन को सुव्यस्थित और सुचारु रूप से चलाना भी है। बच्चों में जो प्रारम्भिक शिक्षा, व्यवहारिक ज्ञान और नैतिकता इन लोकोत्सवों के माध्यम से विकसित होती है। वह बड़े–बड़े शहरों की पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने से भी नहीं हो सकती।


अक्ती के गुड्डा–गुड़ियाँ (चित्र – सरोजा रावत)

समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है नारी। जो समाज के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान देती है। जिस समाज की नारी मानसिक रूप से विकसित और बौद्धिक रूप से स्तरीय और जागरूक होती है वही समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है और यह गुण कोई भी नारी अपने जन्म के साथ लेकर नहीं आती यह सब तो वह अपने आस–पास के वातावरण से सीखती है। और बुन्देलखण्ड में तो ऐसे लोकोत्सवों की भरमार है जो बालिकाओं को संस्कारवान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अकती, मामुलिया और नौरता ऐसे ही लोकोत्सव हैं जो खेल–खेल में ही बुन्देली बालिकाओं को भावी जीवन की योजनायें समझाने का कार्य बड़ी कुशलता से करते हुये उनके भविष्य को उज्जवल बनाने का कार्य करते हैं। ऐसे उत्सवों के प्रचलन से हमारे पूर्वजों की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है। इन सारगर्भित और शिक्षाप्रद उत्सवों को अनिवार्य करना वास्तविक रूप से समाज के निर्माण का एक महत्वपूर्ण व ठोस कदम है। अब एक–एक बालिका को अलग–अलग व्यवहारिक ज्ञान और नैतिक शिक्षा देना दुर्लभ नहीं तो कठिन कार्य अवश्य था। अतः इसी समस्या के समाधान के लिये अकती, मामुलिया और नौरता जैसे उपयोगी और ज्ञानवर्धक उत्सवों का आयोजन किया गया होगा। जहाँ सामूहिक रूप से बुन्देलखण्ड की बालिकायें सुसंस्कार ग्रहण करती थीं।

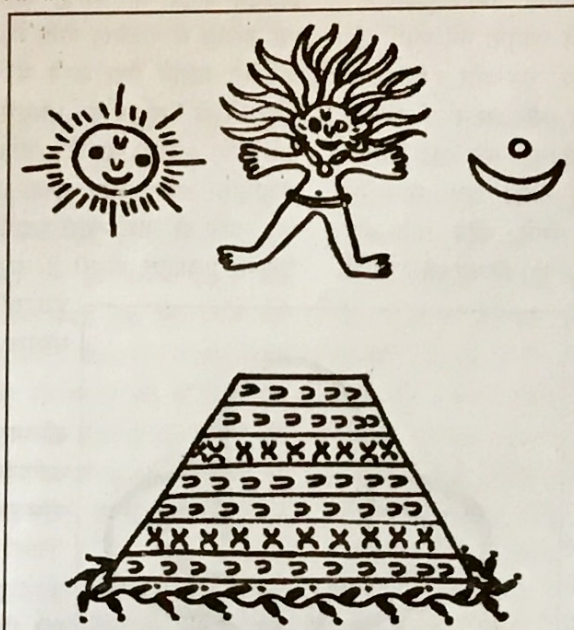
अब 'अकती' को ही लीजिये वैसाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया अर्थात् 'अक्षय तृतीया' को ही बुन्देलखण्ड में 'अकती' के नाम से जाना जाता है। यूँ तो देखने में यह मात्र गुड्डा–गुड़ियों का खेल है किन्तु इस खेल की वास्तविकता समझें तो यह लोक जीवन का यथार्थ है। बुन्देलखण्ड में गुड़िया को 'पुतरिया' और गुड्डे को 'पुतरा' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। यहाँ की बालिकाओं का इन पुतरियों से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है। घर के बड़े–बुजुर्ग अपनी बिटिया को स्नेह से पुतरिया कहकर ही बुलाते हैं उनका व्यवहार और दुलार उनके साथ ठीक वैसा ही होता है, जैसे बेटियों का अपने गुड्डा गुड़ियों के साथ होता है, वह अपनी बेटियों को संकेत देते रहते हैं कि वह भी उनके लिये इन पुतरियों जैसी ही है जैसे पुतरियों को अकती के दिन बड़ के पेड़ के नीचे जाना पड़ता है वैसे ही एक दिन उनकी बेटी को भी अपना घर छोड़ कर पराये घर जाना पड़ेगा।

लोक साहित्य में लोकगीतों के माध्यम से कवियों ने भी बेटी की विदाई के समय गुड्डा–गुड़ियों से विछुड़न का बहुत ही मार्मिक दृश्य खींचा है – ''गैला में मिल गये बरेदी भैया, मइया से कइयो सुनाये मोरे लाल'' यह गीत सुन कर कौन

पत्थर दिल होगा जिसकी आँखें नहीं छलक पड़ेंगीं। गुड्डा—गुड़ियों का बनाव—सिंगार करते समय सजने संवरने का ढंग और विवाह—शादी रचाते समय विवाह जैसे संस्कार और रीति—रिवाजों को सहज ही सीख जाती है बालिकायें। आपसी ताल—मेल, लेन—देन, बोल—चाल, चूल्हा—चौका, सिलाई—कढ़ाई आदि से लेकर सभी व्यवहारिकतायें सहज ही उनके व्यवहार में समाहित होती जाती है। विषम परिस्थितियों और विवशताओं को सहजता से दरकिनार करने का अस्त्र है। हँसी—ठिठोली और यथा समय इसका उपयोग करते हुये हर समस्या का समाधान निकालना उनका चुटकियों का काम है। इसका अन्दाजा — 'अकती खेलन कैसें जाऊँ री बरा तरें मेले लिबउआ' जैसे गीतों से लगाया जा सकता है। इसी कड़ी में दूसरा लोकोत्सव है 'मामुलिया' यह अविवाहित कन्याओं द्वारा खेले जाने वाला अनुष्ठान परक खेल है। अश्वनि मास में किसी भी दिन यह खेला जा सकता है। इसके लिये कोई विशेष तिथि निश्चित नहीं है मेरे ख्याल से यह अपने तरीका का एक अलग ही खेल है जो बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त और कहीं नहीं खेला जाता। काँटेदार झाड़ी को फूलों से सजाकर खीरा के छल्ले व जलेबियाँ लगा कर उसे लाल चुनरी उड़ा कर नारी की तरह बना कर लड़कियाँ घर—घर, द्वार—द्वार घूमते हुये गाती है —

मामुलिया के आ गये लिवउआ झमक चली मामुलिया'
ल्याओ धीया तुरइया के फूल सजाओ नौनी मामुलिया।

अकती की तरह मामुलिया भी निरुदेश्य नहीं है। यह एक अनुष्ठान परक उत्सव है क्वाँरी लड़कियाँ विवाह का अनुष्ठान करते हुये ये खेल खेलती है। यह खेल शिक्षाप्रद तो है ही साथ ही इसमें जीवनोपयोगी अनेक संदेश छुपे हुये हैं। काँटों को दुःख और फूलों को सुख का प्रतीक माना गया है। मानव—जीवन में सुख:दुख दोनों का महत्व है और दोनों ही बारी—बारी से मनुष्य को प्रभावित करते हैं। परन्तु काँटों के ऊपर फूल लगाकर ये बालिकायें इस उत्सव के माध्यम से मुसीबतों से मुकाबला करने की हिम्मत का संदेश देती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य में सच्ची लगन है तो वह थोड़े से परिश्रम द्वारा दु:ख रूपी काँटों को सुख रूपी पुष्पों में परिवर्तित कर सकता है। बेटी की यह बहुत बड़ी शिक्षा देता है कि विवाहोपरान्त आने वाली परेशानियों व उलझनों से उसे कैसे डटकर मुकाबला करना है।



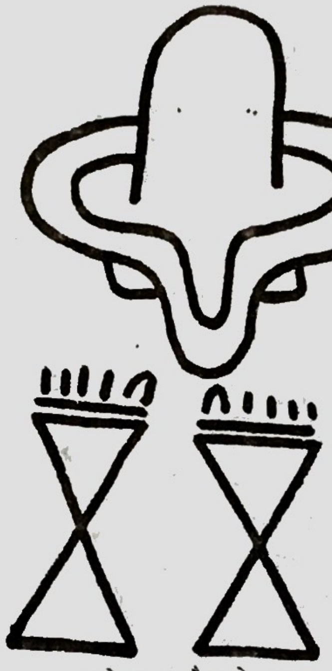
सुअटा राक्षस व सूरज चंदा तथा नौरता का चबूतरा
(चित्र — सरोजा रावत)

कुछ विद्वानों ने तो 'मामुलिया' को लड़की के जीवन का पर्याय बताया है। जिस तरह मामुलिया को सजा संबार कर अन्त में नदी—तालाब में विसर्जित कर दिया जाता है। उसी तरह लड़कियों को भी एक दिन सजा—संवार के ससुराल रूपी सागर में उतार दिया जाता है। बिल्कुल अकेले डटकर मुसीबतों का सामना करने के लिये। लेकिन मामुलिया जैसे लोकोत्सवों से शिक्षा लेकर बुन्देली बालायें हर तूफान का सामना करते हुये अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींच ही लेती है।

कुछ लोगों ने मामुलिया का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा से भी जोड़ा है। मामुलिया की तरह एक दिन इस जीवन को भी विसर्जित होना पड़ता है। इसके साथ ही समय की पकड़ और उसकी पहचान का संदेश भी देती है मामुलिया। जिस तरह इसको सजाने के लिये दिन में कुछ घंटे का समय ही मिलता है। इस निश्चित समय में जो अपनी मामुलिया को नहीं सजा पातीं वे बाद में पछतातीं रह जाती हैं। यह बात जीवन को सीधा संदेश देती हैं कि मनुष्यों को भी जीवन काल में एक निश्चित अवधि दी गई है और जो मनुष्य उस अवधि में अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं कर पाता वह हाथ मलता रह जाता है।

इसी तरह एक और उत्सव होता है जिसे नवरता, नौरता अथवा नारे सुआटा के नाम से जाना जाता है। अश्वीन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होने बाला और नवरात्रि के साथ—साथ नौ दिनों तक चलने बाला यह लोकोत्सव बुन्देलखण्ड में बहुत ही प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है। नौरता के इन नौ दिनों में पूरी लोक संस्कृति मानों एक चबूतरे पर सिमट कर आ जाती है। बुन्देली नारी का जीवन, उसकी दिनचर्या उसके कार्यकलाप किसी को जनना समझना हो तो नौ दिन तक चलने वाले इस लोकोत्सव में शामिल हो जाये। इससे बेहतर मंच मेरी नज़र में नहीं। सुबह—सुबह उठना घर—बाहर की साफ सफाई। उसके बाद चबूतरे की सफाई लिपाई और फिर उस पर अल्पना और कला के सजीव नमूने सचमुच वातावरण को सुखद और सलोना बनाते हैं, नन्हें—मुन्हें हाथों से अपने ही द्वारा बनाये गये रंगों के कलात्मक प्रयोग बड़े—बड़े चित्रकारों और कलाकारों को चुनौती देते हैं। जितने चाव से चित्रकारी बनाई जाती है उतना ही डूब के गौर को सजाया जाता है और पूरे मनोयोग से शिव जी की 'पंथोला' रूप में और पार्वती जी की 'गौर' रूप में पूजा अर्चना की जाती है। इसके साथ—साथ चन्दा सूरज के रूप में

प्रकृति पूजन और सुअटा राक्षस का गोबर द्वारा स्थापित मूर्ति पूजन भी किया जाता है। और परम्परानुसार 'हिमान्चल की कुँअर लड़ायतीं नारे सुअटा, गौरा बेटी नौरता अनायें सुआ —' गा कर सम्पूर्ण नारी जाति की सुरक्षा की कामना की जाती है। नौरता में गीतों की भरमार है। तरह तरह की धुन और तरह—तरह के भाव इन लोक गीतों की विशेषता है और ध्यान से सुने तो हर गीत संदेश और शिक्षा से भरा पूरा है। गौर की झाई दिखाने के माध्यम से नारी श्रृंगार का अपूर्व वर्णन इन्हीं गीतों में मिलेगा। एक तरफ गौर से अपने जैसा श्रृंगार, गहने, पति और पुत्र माँगने की अभिव्यक्ति है — 'गौरा अपनो सिंगार गौरा मोइये दियो' तो दूसरी तरफ गौर को कुछ देने का उपक्रम भी है। 'जेई मोरे भैया लुबाउन जैहै' जैसे मार्मिक और भावुक गीत हैं तो दूसरी ओर हास्य गीतों की बहार भाई—बहन में आपस में स्नेह बना रहे इसलिये बहनों को यह अहसास दिलाया जाता है कि यह तुम्हारा छोटा भाई दिखने में भले छोटा है मगर यही तुम्हारी लाज का रखवाला और भावी कर्णधार है। कल को जब तुम ससुराल जाओगी तो वही तुम्हें वहाँ से लाने का कार्य करेगा और भाइयों को भी बताया जाता है कि कल तुम्हें इतना सक्षम और समर्थ बनाना है कि दूर परदेश में बैठी बहना को न सिर्फ लेने—पठाने जाना है बल्कि उसकी ससुराल के मार्ग में कुआँ, तालाब, बाग, बावड़ी बनवाना है। छाया और फलदार बृक्ष भी लगवाना है। यहाँ स्वार्थ और संकुचित दायरे से निकल कर दृष्टिकोण कितना उदार और विस्तृत हो जाता है। जिस मार्ग में से सारी सुविधायें दी जायेगी उसका लाभ सिर्फ उसकी बहन को ही मिलेगा ऐसा तो है नहीं यहाँ तो स्वार्थपरता से परे जनहित और जन कल्याण की भावना है।



पन्थोला व गौरा के चरण
(चित्र — सरोजा रावत)

बहन को लेने जाते समय निराश्रित को आश्रय देना भूखे को भोजन कराना, गरीब कन्याओं का विवाह कराना जैसे कार्यो की प्रेरणा देकर अबोध बालक के मन में बाल्य काल से ही दया करुणा और कर्मठता के बीज बो दिये जाते हैं। इस तरह ये लोकोत्सव बालक—बालिका दोनों को सुसंस्कारी बनाने का कार्य करते हैं। क्योंकि बचपन में बालक—बालिकायें सभी एक साथ मिलकर ही खेल और उत्सवों का आनंद लेते हैं। मामुलिया बहने सजातीं हैं तो भाई उनमें लगी जलेवी और खीरा लूट—लूट कर खाते हैं। अकती को बहनों की गुड़ियाँ छुपा कर भले ही माँ की डांट खाते हों ये बालक मगर नौरता की झिंझिया फोड़ने का आनंद लूटना भी ये नहीं भूलते।

नौरता भी अनुष्ठान परक उत्सव है इसे क्वांरी कन्याओं द्वारा ही खेला जाता है। शादी के बाद जब तक नौरता का अन्तिम पूजन नहीं किया जाता तब तक नव विवाहितायें भी इस उत्सव में शामिल होतीं है। बालिकाओं में कार्य और कला के प्रति रुझान पैदा करने में सहायक यह खेल नारी सुलभ सद्गुणों के विकास का माध्यम भी है। इसी तरह 'हप्पू' का जो कार्यक्रम अष्टमी के दिन होता इसमें हर जाति, हर वर्ग की लड़कियाँ भाग लेकर छुआ—छूत की भावना को विसरा कर एक दूसरे के साथ खाद्य पदार्थ आपस में बाँट कर प्रेम की जो त्रिवेणी प्रवाहित करती हैं उसमें सारे समाज की वर्ष भर की बुराइयाँ घुल जाती हैं। और आपसी सम्बन्ध और प्रगाढ़ होते हैं।

नौमी के दिन सर्वे भवन्तु सुखनः की भावना लेकर द्वार—द्वार झिझिंया घुमातीं बालिकायें आशीर्वादों सुख—समृद्धि और शुभकामनाओं की झड़ी लगा देती है — 'जितने अक्षत भौजी भू परे नारे सुअटा उतने दुलइया तोरे पूत', इन लोकोत्सवों की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन चंद पृष्ठों पर मुश्किल हैं। इसका सच्चा और पूर्ण आनंद लूटने के लिये तो आपको इन खेलों के बीच जाकर अवलोकन करना पड़ेगा। किन्तु अफसोस के साथ लिखना पड़ रहा है कि आज कल इन लोकोत्सवों को अधिक महत्व नहीं दिया जा रहा है। शहरों और कस्बों में तो यह लगभग समाप्त ही हो गये हैं। सिर्फ कुछ गाँव ही बचे हैं जहाँ यह लोक संस्कृति खेली या सहेजी जा रही है। इसे पुर्नजीवित करने के लिये ग्रामीण जनों के साथ—साथ बुद्धि जीवियों को भी प्रयास करने होंगे। बालक बालिकाओं को इन लोकोत्सवों की ओर आकर्षित करने के लिये इनके विस्तृत आयोजन करने होंगे और इस मौखिक लोक साहित्य को लिखित बनाकर जन जन तक पहुँचाने की पहल करनी चाहिए।

प्राचीन काल में राजाओं की पुत्रियों के भी इन आयोजनों में सक्रिय भागीदारी के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिये नौरता का प्रचलन राजा हिमान्चल की पुत्री गौरा के जन्म की कथा से जुड़ा हुआ है और गीतों में भी उसकी झलक मिलती है। इन लोकोत्सवों को पुनः गाँव—गाँव और शहर—शहर में स्थापित और महिमामण्डित करने के प्रयास आवश्यक हैं। ताकि नई पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता और आधुनिकता की अंधी दौड़ से निकलकर अपनी सारगर्भित और शिक्षा पूर्ण संस्कृति की ओर अग्रसर हो और समाज का सही दिशा में निर्माण हो। □

— मैदा मिल के सामने, भोपाल

एक लोकखेल : तूरमार

— साकेत सुमन चतुर्वेदी

हमारे पूर्वजों ने अपने देश की प्रकृति, मिट्टी, हवा, पानी और जलवायु को ध्यान में रखकर अपने अथक परिश्रम, तप, साधना एवं अनुभवों—खोजों के आधार पर, मानव को सुखमय जीवन व्यतीत करने कुछ उपयोगी पद्धतियाँ एवं क्रीड़ाएं बनाई। व्यक्ति के स्वास्थ्य और मनोरंजन हेतु इन लोक खेलों का प्रादुर्भाव हुआ। ये लोक खेल परम्परागत तौर से आज भी ग्रामीण अंचलों में (खासकर इन्टीरियल क्षेत्रों में) देखने मिल जाते हैं। इन खेलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रयुक्त खेल—सामग्री और उपकरण इस मंहगाई के दौर में भी निःशुल्क सुलभ हैं। अर्थात बुन्देली कहावत — 'हर्र लगें न फिटकरी रंग चोखौ हो जाये' इन लोक खेलों के संदर्भ में पूर्णतः चरितार्थ होती है।

इन लोकखेलों से लोगों को सिर्फ स्वास्थ, मनोरंजन और खेल—खेल में शिक्षा का ही लाभ नहीं मिलता वरन् उनके माध्यम से जन अपनी बोली, मिट्टी, प्रकृति और आम जन से बड़ी आत्मीयता से जुड़ता है, जिससे व्यक्ति के हृदय में एकता, प्रेम, सौहार्द्र, सद्भाव, परमार्थ, त्याग, शांति, परिश्रम और आत्मनिर्भरता के भाव जन्म लेते हैं, फूलते—फलते हैं। उससे व्यक्ति और समाज का चहुमुखी विकास होता है।

प्राकृतिक सम्पदा के भरपूर उपयोग से जन्मी ये लोक पद्धतियाँ और लोकक्रीड़ाएँ अपनी लचीली प्रकृति के कारण समय के अनुसार दूसरी अच्छाइयों को अपने में समाहित करने की पक्षधर रही हैं। इसी कारण इनका महत्व एवं स्थान आज भी बरकरार है।

इन्हीं बुन्देलखण्डी लोक—खेलों में बहुत ही लोकप्रिय खेल है — तूरमार। जो आज भी बुन्देलखण्ड में ग्रामीण अंचलों में कई जगह खेला जाता है, चूंकि ग्रामीण अंचलों में कई जगह खेला जाता है चूँकि बुन्देलखण्ड में कुछ कोस पर पानी और बानी बदल जाते हैं। अतः यह हो सकता है कि 'तूरमार' खेल को अन्य जगहों पर अन्य किसी नाम से जाना जाता हो।

तूरमार खेल में प्रयुक्त वस्तुएं : (१) मिट्टी या रेत का तूर (भदूना जैसा) (२) लकड़ी का एक मजबूत डंडा (३) कपड़े की बनी गेंद।

वर्षा ऋतु में गीली मिट्टी या रेत को दोनों हाथों से इकट्ठा करके एक फीट की लगभग ऊँचाई का एक ढ़ेर बनाते है। इस छोटे टीला स्वरूप गोल मिट्टी के ढेर को तूर कहते हैं। हाथों से थाप थापकर तूर को मजबूती प्रदान की जाती है। कभी—कभी किसी मिट्टी या सीमेंट की दीवार पर चौकोर या गोल खड़िया से आकार में भी तूर बनाया जाता है। ऐसा तूर वर्षा ऋतु के अलावा अन्य ऋतुओं में भी बनाया जाता है। तूर के सामने तीन या चार फीट की दूरी पर एक आड़ी रेखा खींची जाती है पुराने कपड़ों को हाथों से कसकर गोलाकार एक गेंद का स्वरूप प्रदान किया जाता है और उसे लोहे के बने सूजे से सुतली की सहायता से बुना जाता है जिसके फलस्वरूप वह एक मजबूत गेंद बन जाती है। पेड़ की किसी डाल से शाखा को तोड़कर तीन फीट के लगभग एक डंडा बना लेते हैं यह डंडा सूखी लकड़ी का भी हो सकता है।

खेल में प्रयुक्त 'पिद्दू' शब्द का आशय : पिद्दू शब्द की उत्पत्ति पिदाने (छकाने) से हुई है। जिसमें वैटिंग कर रहे खिलाड़ी द्वारा फील्डिंग कर रहे खिलाड़ी को खेल में खूब पिदाया (छकाया) जाता है। पिद्दू को वैट्समैन का डबलरॉल (अमूर्त रूप में) भी कहा जा सकता है जो खिलाड़ी के एक बार आउट होने पर उसे (पिद्दू के कारण) दूसरी बार खेलने का अवसर प्रदान करता है। वास्तव में एक पिद्दू खिलाड़ियों द्वारा खेल के पूर्व की गई डंडों की नाम संख्या है। जैसे १०० डंडो की नाप संख्या के बराबर एक पिद्दू। खिलाड़ियों द्वारा एक या दो पिद्दू की संख्या खेल के पूर्व निर्धारित कर ली जाती है। पिद्दू एक या अधिक हो सकते हैं। वास्तज में पिद्दू डंडे के नाम की संख्या है जो फील्डिंग कर रहे खिलाड़ी द्वारा मैदान में लुढ़कती गेंद को रोकने के स्थान से तूर के मध्य की दूरी के बराबर होती है। किसी वैटिंग कर रहे खिलाड़ी के आउट होने पर पिद्दू उसे एक बार फिर से खेलने का अवसर देकर जैसे पुर्नजीवन खेल में देता है।

तूरमार खेल की विधि : यह लोक खेल वर्तमान में विश्व प्रसिद्ध और लोकप्रिय खेल क्रिकेट से मिलता जुलता है। एक खिलाड़ी (वैट्समैन) एक हाथ में डंडा और दूसरे हाथ में गेंद ढोकर तूर (विकेट) के पास खड़ा होता है। उसकी स्थिति तूर के सामने खिची आड़ी लाईन (क्रीज) के अन्दर होती है। आड़ी रेखा के बाहर सामने की तरफ मैदान में अन्य खिलाड़ी फील्डिंग करने के उद्देश्य से गेंद रोकने या कैच लेने के लिए आपस में कुछ दूरी बनाकर खड़े हो जाते हैं। क्रिकेट से इसका थोड़ा सा अन्तर यह है कि उसमें बॉल (गेंद) फेंकने कोई वॉलर नहीं होता। यह कार्य वैट्समैन को स्वयं गेंद टपकाकर (हाथ ऊँचाकर गेंद जमीन की ओर छोड़कर) करना पड़ता है। वेट्समैन गेंद वाला हाथ आसमान की ओर उठाकर गेंद जमीन की ओर छोड़ता है और दूसरे हाथ में पकड़े डंडे (बल्ले) को तत्क्षण गेंद को निशाना बनाकर फूर्ती से गेंद पर मारता है। इसमें शर्त यह है कि गेंद के जमीन में स्पर्श करने के पूर्व अधर की स्थिति में ही उसका डंडा गेंद पर पड़ जाना चाहिए यदि उसका निशाना चूक जाता है और गेंद जमीन को छू लेती है तो उसका चान्स

समाप्त हो जाता है। इस तरह के एक या अधिक चान्स के बाद आउट माने जाने वाली बात खेल के पूर्व तय खिलाड़ियों में हो जाती है। और उतने चान्स खोने के बाद वैट्समैन आउट माना जाता है। बाद में वह अपना डंडा और गेंद फील्डिंग करने वाले किसी खिलाड़ी को वैटिंग करने का अवसर देकर फीडिंग करने चला जाता है। जब गेंद पर खिलाड़ी का डंडा जोर से पड़ जाता है तो गेंद फील्ड की ओर जाती है तब क्रिकेट की तरह यदि गेंद डन्डे से चोट खाकर धरती को बिना स्पर्श किये फील्ड की ओर जाती है और फील्डिंग कर रहे किसी खिलाड़ी द्वारा लपक (कैच) ली जाती है तो वैटिंग कर रहा खिलाड़ी आउट माना जाता है। यदि गेंद धरती पर लुढ़कती हुई फील्डिंग कर रहे किसी खिलाड़ी द्वारा जब रोक ली जाती है तो वह खिलाड़ी रोके गये स्थान से तूर पर निशाना साधकर गेंद वहीं से तूर पर फेंकता है। यदि उसकी गेंद तुर (विकेट) में लग जाती है तो डंडाधारी खिलाड़ी (वैट्समैन) आउट माना जाता है। यदि गेंद तूर में नहीं लगती और निशाना चूक जाता है तो फील्डिंग कर रहे उस खिलाड़ी के स्थान से तूर के बीच की दूरी वैट्समैन के डंडों से नापी जाती है और वैट्समैन पुन: खेलने लगता है वह आउट न होने तक की स्थिति तक पूर्वविधि के अनुरूप खेलता है। और पिद्दू बनाता है। जैसे पहली बार ५० डंडे की नाप, दूसरी बार ५० डंडो की नाप संख्या वैट्समैन खेल में प्राप्त करता है और १०० डंडों की नाप संख्या के बराबर खेल में एक पिद्दू निर्धारित है तो वह कुल डंडों की नाम संख्या = ५० डंडे + ५० डंडे = एक पिद्दू (१०० डंडे की नाप संख्या) होगा। जैसा पहले उल्लिखित किया गया है कि पिद्दू एक या दो हो सकते हैं। इन डंडो की नाप संख्या को हम क्रिकेट की भाषा में रन कह सकते हैं। यहाँ इस खेल का क्रिकेट से यह अन्तर है कि क्रिकेट में पिद्दू नहीं होता। इन सबका खेल में रिकार्ड रखा जाता है। जब तक पिद्दू समाप्त नहीं हो जाते और पिद्दू के बाद वह स्वयं आउट नहीं हो जाता है तब तक वह फील्डिंग कर रहे खिलाड़ियों को पिदाता रहता है। आउट होने पर बैटिंग करने वाला खिलाड़ी फील्डिंग करने चला जाता है और क्रमानुसार एक के बाद दूसरे खिलाड़ी फील्ड से वैटिंग करने आते जाते रहते हैं। सम्पूर्ण फील्ड से वैटिंग करने आते जाते हैं। सम्पूर्ण खिलाड़ियों के द्वारा वैटिंग करने के साथ साथ आउट हो जाने पर खेल समाप्त माना जाता है। क्रिकेट की भांति इस खेल में दो टीमें नहीं होती। वैट्समैन आउट होने पर स्वत: फील्डर और फील्डर खेलने (वैटिंग) करने पर वैट्समैन बन जाता है।

समय के साथ साथ नये खेलों की उत्पत्ति और बदलते हुये खेलों के स्वरूप के कारण ये लोक खेल धीरे–धीरे लुप्त से होते जा रहे हैं। अफसोस की बात है कि आज के मंहगे खेलों का अजगर हमारे तूरमार जैसे अनेक लोक खेलों (नि:शुल्क, मनोरंजक, स्वास्थ्यवर्धक एवं शिक्षा देने वाले) के सुन्दर शावकों को सतत् निगलता जा रहा है। सरकार का ही नहीं हम बुन्देलखण्ड वासियों का परम कर्त्तव्य है कि हम इन सस्ते एवं परम्परागत लोक खेलों को संरक्षण प्रदान करें। जन जागृति से लोगों की इन खेलों में रुचि बढ़ायें। इनको प्रचार प्रसार से ही नहीं, जीवन में अपनाकर इन्हें दुनिया में पुर्नस्थापित करें। इन्हें समाज में मान्यता एवं गौरवपूर्ण स्थान दिलायें तभी हम सच्चे बुन्देलखण्डी–सपूत सिद्ध होंगे।

— ७२१, ऐबटगंज, चित्रा चौराहा, झांसी, उ.प्र. □

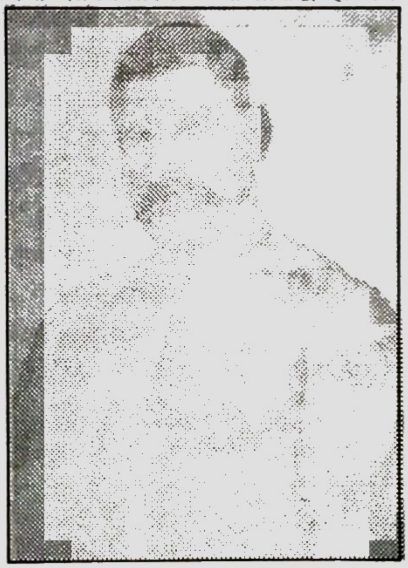
बुन्देलखण्ड का गौरव :

महाबली गामा

— डॉ. परशुराम शुक्ल

बुन्देलखण्ड की धरती अपने बलिदान, शौर्य, पराक्रम और वीरता के लिए विश्वविख्यात है। यह तुलसी, केशव, वृन्दावन लाल वर्मा तथा मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्यकारों व लक्ष्मीबाई एवं आल्हा ऊदल जैसे पराक्रमी वीरों की कर्मभूमि रही है। इसी धरती पर आज से एक सौ वर्ष पहले एक और महामानव जन्मा था — गामा। गामा, जिसने अपनी शारीरिक शक्ति एवं सौष्ठव के बल पर विश्व विजेता की पदवी प्राप्त की।

बुन्देलखण्ड का एक छोटा सा जिला है — दतिया। दतिया का अपना पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। कहते हैं कि इसकी स्थापना दन्तवक्र नामक एक अत्यन्त शक्तिशाली दैत्य ने की थी। जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने छल से मारा था।



दतिया की पहलवानी का इतिहास भी दतिया के समान प्राचीन एवं गौरवशाली है। यहाँ के राजा विजय बहादुर स्वयं तो पहलवान नहीं थे, किन्तु उन्हें कुश्ती देखने का बड़ा शौक था। एक बार असनय के अखाड़े में उन्हें एक तरुण पहलवान भा गया। उन्होंने उसे गोद ले लिया। आगे चलकर यही भवानीसिंह दतिया के शासक बने।

भवानीसिंह ने अपने शासन काल में पहलवानी को बहुत प्रोत्साहन दिया। उनके समय में पहलवानी दतियावासियों का शौक बन गया। कुछ लोगों ने इसे अपना व्यवसाय बना लिया। हजारों दण्ड बैठक लगाना, नाल उठाना, तरह—तरह के करतब दिखाना तथा गाँव—गाँव में जाकर कुश्तियाँ लड़ना जीविकोपार्जन का साधन बन गया। महाराज भवानी सिंह की ओर से दतिया में प्रतिवर्ष सावन के महीने में विशाल दंगल का आयोजन होता था, जिसमें दूर दूर के नामी पहलवान आते थे। योग्य तथा होनहार पहलवानों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। उन्हें नकद तथा अन्य रूपों में भवानीसिंह सहायता देते थे। अत: शीघ्र ही दतिया के पहलवानों के साथ ही साथ पहलवानों को संरक्षण देने वाले भवानी सिंह की ख्याति भी दूर—दूर तक फैल गयी।

दतिया में एक नामी पहलवान थे—नून। वे महाराज विजयबहादुर के समय पर दतिया आकर बसे थे। विजय बहादुर उन्हें बहुत पसन्द करते थे। अत: उन्होंने उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। नून पहलवान के एक लड़की थी। वह लड़की अवश्य थी किन्तु शरीर सौष्ठव व शक्ति में पुरुषों से भी बढ़ कर थी। महाराज उसे अपनी पुत्री के समान स्नेह करते थे। जब वह बड़ी हुई तो उसके विवाह के लिए वर की तलाश आरम्भ की गयी। किन्तु उस महाशक्तिशाली युवती के लिए बहुत प्रयास करने पर भी कोई योग्य वर नहीं मिला।

इसी मध्य कश्मीर में कुछ अनबन हो जाने के कारण वहाँ के एक प्रसिद्ध पहलवान हबीब मियां दतिया आ बसे। उनके बाद उनका बेटा अजीज बक्श भी दतिया आ गया। अजीज बक्श ने थोड़े समय में ही पहलवानी के क्षेत्र में काफी नाम कमा लिया था तथा वे 'जीजा पहलवान कश्मीरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

महराजा भवानी सिंह को अजीज बक्श जैसे पहलवान की तलाश थी। उन्होंने नून पहलवान की बेटी का अजीज बक्श से विवाह करा दिया।

इन्हीं अजीज पहलवान के बेटे थे — गामा।

गामा का जन्म २ अगस्त सन् १८८९ में होलीपुरा स्थित अपने पैतृक निवास में हुआ था। वे चार भाई बहन थे। एक बहन गामा से बड़ी थी तथा एक बहन और एक भाई छोटा। गामा के छोटे भाई इमामबक्श ने भी बड़े होकर पहलवानी के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की थी।

गामा का बचपन बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण बीता। जब वे चार वर्ष के थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। उनके अनुज इमामबक्श का जन्म पिता की मृत्यु के तीन माह बाद हुआ। पिता की मृत्यु के बाद गामा का लगाव अपने ननिहाल की तरफ अधिक बढ़ा। वे अपने नाना नून पहलवान के तलैया स्थित निवास के सामने भाई बहनों व दोस्तों के साथ दिन भर खेलते रहते। बचपन से ही खेल के साथ उन्हें पहलवानी से भी लगाव था। वे नियमित रूप से कसरत करते थे। गामा प्रतिदिन प्रात: काल के पूर्व ही घर से निकल जाते और दीनअली के तकिये के अखाड़े में कसरत करते थे। इसके साथ ही उन्हें तैरने का भी बहुत शौक था।

गामा को पहलवानी तो अपनी माँ से विरासत के रूप में मिली थी। उनके नाना तथा दोनों मामा पहलवान थे। उनके दोनों सगे मामा ईदा पहलवान तथा मुहम्मददीन पहलवान ने उन्हें बचपन में प्रशिक्षण दिया। उनके एक अन्य मामा छुट्टन् पहलवान

अपने समय के नामी पहलवान थे। उन्हें महाराजा भवानीसिंह की तरफ से खुराक मिलती थी। लेकिन वे गामा को इतना प्यार करते थे कि अपनी खुराक उन्हें खिला देते थे। शायद उन्हें गामा के भविष्य का अन्दाज बचपन में ही हो गया था।

गामा अभी छः सात वर्ष के थे कि एक दिन उन पर भवानीसिंह की दृष्टि पड़ी। वे उनकी रियाज तथा पहलवानी के प्रति लगन और उत्साह देखकर बहुत प्रभावित हुए।

भवानीसिंह स्वयं अच्छे पहलवान तथा पहलवानों के पारखी थे। उन्हें भी गामा में एक होनहार पहलवान के लक्षण दिखे। अतः वे स्वयं किले भीतर फूलबाग स्थित अखाड़े में गामा को पहलवानी के दांव—पेंच सिखाने लगे। इसके साथ ही गामा को राज्य की ओर से खुराक न वजीफा मिलने लगा। इसी बीच अपने समय के प्रख्यात पहलवान जयपुर के श्री माधौसिंह दतिया आ बसे तथा महाराज भवानी सिंह के अनुरोध पर गामा के प्रशिक्षक बन गये।

गामा का शरीर इकहरा, गौरवर्ण तथा कद लगभग पांच फुट दस इंच था। इनके छोटे भाई इमाम बक्श उनसे अधिक लम्बे चौड़े तथा शक्तिशाली थे। किन्तु गामा में चुस्ती, फुर्ती तथा दांव—पेचों की कला अधिक थी।

गामा ने अपने जीवन में लगभग पचास कुश्तियाँ लड़ीं। इनमें इन्दौर के अली सांई, जूनागढ़ के रहीम पहलवान, पटियाला के पीटरसन तथा इंग्लैंड के जैविस्को के साथ लड़ी गयी कुश्तियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं।

सन १९१० में जॉन बुल वर्ल्ड रेस्लिंग चैम्पियन शिप के आयोजकों ने लन्दन में एक अंतर्राष्ट्रीय कुश्ती का आयोजन किया। इस कुश्ती में लगभग साढ़े चार सौ पहलवान सम्मिलित हुए। भारत से गामा, इमाम बख्श तथा अहमद बख्श को भेजने का निर्णय लिया गया। बंगाल के श्री शरत कुमार ने इन पहलवानों के आने जाने की व्यवस्था की। तीनों भारतीय पहलवानों की टीम मिस्टर बैंजामिन के साथ लन्दन पहुंची। किन्तु वहाँ पहुंचने पर कुश्ती के आयोजकों ने तीनों भारतीय पहलवानों को यह कहकर प्रतियोगिता में सम्मिलित करने से इन्कार कर दिया कि उनका कद् तथा वजन आवश्यकता से कम है। तथा वे अन्य पहलवानों के सामने टिक नहीं पायेंगे। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले जैविस्को, गेलर मॉरिस जैक, डैरियज आदि पहलवानों के सम्मुख भारतीय पहलवान वास्तव में बहुत हल्के थे।

आयोजकों के इस निर्णय का पता जब गामा को चला तो उन्हें गहरा आघात लगा। गामा को अपनी शक्ति, चुस्ती और फुर्ती पर पूरा विश्वास था।

गामा ने प्रतियोगिता में सम्मिलित होने का भरसक प्रयास किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्होंने सभी पहलवानों और आयोजकों के सामने दो चुनौतियां दीं। पहली जो भी पहलवान अखाड़े में मेरे सामने पांच मिनट तक खड़ा रह सकेगा उसे मैं पाँच पौंड इनाम दूंगा, तथा दूसरी मैं इंग्लैण्ड के बीस पहलवानों को एक घंटे के भीतर चित कर सकता हूँ। जो भी चाहे मुझसे मुकाबला करके आजमा ले।

गामा की चुनौती का आयोजकों तथा अधिकांश पहलवानों ने पहले तो मजाक उड़ाया किन्तु गामा ने खुलेआम चुनौतियाँ दी थी। अतः उन्हें गम्भीरता पूर्वक सोचना पड़ा। गामा की चुनौतियाँ स्वीकार कर ली गयीं। पहले दिन ही तीन पहलवान अखाड़े में उतरे। गामा ने तीनों पहलवानों को चित कर दिया। दूसरे दिन बारह पहलवान मुकाबले के लिये आये। गामा ने उन्हें भी एक एक करके धराशायी कर दिया। इनमें से किसी भी पहलवान को चित करने में गामा को दो या तीन मिनिट से अधिक नहीं लगे।

गामा की असाधारण शक्ति और दाँव—पेंच देखकर आयोजकों को गामा का नाम प्रतियोगिता में सम्मिलित करना पड़ा। आयोजक, पहलवान तथा दर्शकगण सभी गामा से प्रभावित थे अतः प्रतियोगिता का आरम्भ गामा और जैविस्को की कुश्ती से किया गया। गामा और जैविस्को पूरी तैयारी से अखाड़े में उतरे। यह कुश्ती पूरे तीन घंटे चली। पर हार जीत का फैसला न हो सका। इस कुश्ती में गामा निरन्तर जैविस्को पर हावी रहे। जैविस्को पूरे समय अपने को बचाता रहा। गामा ने जैविस्को को तीन बार अखाड़े की धूल चटाई। जैविस्को ने भी गामा पर हमले किये किन्तु वह हर बार असफल रहा। अन्त में जैविस्को को पटक कर गामा उस पर सवार हो गय। इस समय तक जैविस्को बुरी तरह थक चुका था। अतः उसने गामा के नीचे पड़े रहने में भी अपनी भलाई समझी।

प्रतियोगिता के आयोजकों ने जब देखा कि कोई भी निर्णय नहीं हो पा रहा है तो उन्होंने कुश्ती अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दी। किन्तु जैविस्को गामा से इतना भयभीत हो चुका था कि अगले दिन वह मुकाबले के लिए आया ही नहीं। अतः गामा को विश्व विजेता घोषित कर दिया गया। इस तरह जैविस्को को परास्त कर गामा विश्वविजेता बने। इसके साथ ही उन्होंने इंगलैण्ड की धरती पर सबसे अधिक खतरनाक पहलवान रोलर को हराया। गामा से परास्त होने के बाद जैविस्को पूरी लगन और जोश के साथ अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिए रियाज में जुट गया और अठारह वर्ष बाद भारत आकर उसने गामा को कुश्ती के लिए ललकारा। गामा उस समय पटियाला में थे। २८ जून १९२८ को पटियाला में एक बार फिर गामा और जैविस्को का मुकाबला हुआ। किन्तु इस कुश्ती में गामा ने जैविस्को को तीन सैकेण्ड में चित कर दिया। कुश्ती देखने वालों ने गामा को अखाड़े में उतरते देखा और जैविस्को को गिरते देखा। गामा ने अपनी चुस्ती फुर्ती व दांव—पेंच की कला से यह कुश्ती कैसे जीती, लोग देख ही नहीं सके।

अनेक बड़े—बड़े पहलवान गामा से कुश्ती लड़ने की हसरत पूरी नहीं कर सके। जब कभी कोई पहलवान गामा को

कुश्ती के लिए ललकारता तो उनके छोटे—भाई इमामबक्श सामने आ जाते और कहते कि — ''पहले मुझसे लड़ लो, फिर गामा से लड़ना'' इस तरह इमाम बक्श से हार जाने के बाद पहलवानों को अपनी हसरत अधूरी ही लेकर लौटना पड़ता।

गामा अपने जीवनकाल में कभी कोई कुश्ती नहीं हारे। उनके मुकाबले में हमेशा उनकी दुगनी शक्ति के पहलवान अखाड़े में उतरे, किन्तु सभी को मुंह की खानी पड़ी। इस सम्बन्ध में दतिया में एक किंवदन्ती प्रचलित है।

बुन्देला राजाओं में महाराजा वीर सिंह जू देव को एक महान, पराक्रमी राजा के रूप में जाना जाता है। इन्होंने अपने जीवनकाल में मुगल और राजपूत मिश्रित शैली के बावन भवनों का निर्माण कराया। इन भवनों में सर्वोत्तम कृति है — दतिया का 'वीरसिंह जू देव महल'। इस सतखण्डे महल को पुराने महल के नाम से जाना जाता है। यह महल आरम्भ से ही अभिशप्त रहा तथा निर्मित होने के बाद इसमें कभी कोई रह नहीं सका। इस महल की छठी मंजिल पर एक अखाड़ा है तथा यहीं पर पीर वली का मजार है। युवावस्था में गामा प्रतिदिन प्रातःकाल यहाँ कसरत करने आते थे। वे नियम से कसरत करते और लौट जाते। एक बार उनकी नींद आधीरात में टूट गयी। उन्होंने समझा कि प्रातः काल होने को है। अतः वे हमेशा की तरह पुराने महल के अखाड़े में जा पहुंचे। किन्तु गामा को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उनसे पहले एक पहलवान अखाड़े में आकर कसरत कर रहा था। उसने गामा को देखकर उन्हें कुश्ती के लिए ललकारा। गामा ने अपने इष्टदेव को याद किया और इस अजनबी से भिड़ गया। दोनों में बड़ी देर तक कुश्ती होती रही। गामा ने कई बार पूरी शक्ति से अजनबी पहलवान को दूर फेंका। किन्तु वह गेंद की तरह उछल कर खड़ा हो जाता और गामा से भिड़ जाता। धीरे—धीरे कई घण्टे हो गये और सूर्य की लालिमा प्रकट होने लगी। दोनों की कुश्ती का अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ था। अचानक अजनबी पहलवान गामा से अलग हुआ और उन्हें अजेय रहने का वरदान दे कर अंतर्ध्यान हो गया। कहते हैं कि पीरवली स्वयं मानव शरीर धारण करके गामा को कुश्ती के दांव पेंच सिखाते थे।

बचपन में गामा का उनके नाना तथा मामाओं ने पूरा ध्यान रखा तथा उनके खाने पीने की अच्छी से अच्छी व्यवस्था की। इसके बाद महाराजा भवानी सिंह ने अपने जीवन काल में गामा को पूरा राजकीय प्रश्रय दिया। युवावस्था में गामा प्रतिदिन सवा सेर बादाम, तथा पांच सेर दूध लेते थे। रोटी, दाल, चावल जैसे सामान्य भोजन की मात्रा आधा सेर से अधिक नहीं होती थी। किन्तु सूखे मेवे, फल तथा कीमती शर्बतों का उन्हें विशेष शौक था। सन् उन्नीस सौ चौदह में उनकी खुराक पन्द्रह बीस रुपये में पूरी हो जाती थी।

चार अगस्त उन्नीस सौ सात को महाराज भवानीसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र गोविन्द सिंह गद्दी पर बैठे। उन्हें पहलवानी से विशेष लगाव नहीं था। अतः उन्होंने गामा को दी जाने वाली राशि बन्द कर दी। इसी समय गामा को पटियाला नरेश महाराजा भूपेन्द्र सिंह का निमन्त्रण मिला। गामा पटियाला चले गये और वहीं बस गये।

धीरे—धीरे मँहगाई बढ़ती गयी और गामा की जो खुराक सन् उन्नीस सौ चौदह में पन्द्रह बीस रुपये में पूरी हो जाती थी, उसके लिए सौ डेढ़ सौ रुपये भी कम पड़ने लगे। महाराजा पटियाला ने भी कुछ समय बाद उन पर ध्यान देना बन्द कर दिया। अतः सन् उन्नीस सौ पैंतालिस में गामा सपरिवार पुनः दतिया लौट आये। इस समय दतिया में महाराजा गोविन्द सिंह का शासन था। गामा महाराज गोविन्द सिंह से मिले। गोविन्द सिंह ने उनकी कला की सराहना तो अवश्य की। किन्तु महाराज भवानी सिंह की तरह प्रश्रय देने से इन्कार कर दिया।

गामा की आयु छप्पन वर्ष की हो चुकी थी। उन्हें पहलवानी छोड़े एक लम्बा समय बीत चुका था। फिर भी हजार पांच सौ दण्ड बैठक लगा लेते थे। आर्थिक विपन्नता के कारण वे अक्सर परेशान रहते थे। दतिया के इकारा गांव में उनकी थोड़ी बहुत खेती की जमीन थी। जिससे किसी तरह काम नहीं चल पा रहा था। उनका पारिवारिक जीवन भी सुखी नहीं था। गामा के दो बेटे तथा दो बेटियाँ हुई। किन्तु दोनों बेटों की असमय मृत्यु से गामा को भारी आघात पहुंचा। वे अपने भतीजे भोलू तथा असलम को बहुत चाहते थे। उन्होंने अपनी दोनों लड़कियों का विवाह भी इन्हीं के साथ कर दिया।

गामा बड़े सरल, उदार तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे चाहते तो अपनी कला के बल पर बहुत धन इकट्ठा कर सकते थे। किन्तु इस ओर उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया। अपने एकांकी जीवन तथा आर्थिक परेशानियों से घबरा कर उन्होंने उन्नीस सौ छियालिस के अन्त में फिर दतिया छोड़ दिया। देश की स्वतंत्रता के बाद वे पाकिस्तान चले गये। सन् उन्नीस सौ तिरेपन में गामा गम्भीर रूप से बीमार पड़े। इस समय उनके छोटे भाई इमाम बक्श उनके पास ही रहते थे। उन्होंने गामा की बड़ी सेवा की। छः साल की लम्बी बीमारी के बाद तेईस मई उन्नीस सौ साठ को गामा का निधन हो गया।

गामा अपने काल के एक महान व्यक्ति थे। पहलवानी के क्षेत्र में जितनी ख्याति गामा को मिली, उतनी अभी तक किसी पहलवान को भी नहीं मिली। आज भी भारतवासी गामा पहलवान को सम्मान और श्रद्धा से याद करते हैं।

— अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी उ.प्र. ☐

अब नई मिलत पियें खाँ ओंटी, सौंट पीपरें छोंटी।।
चुनी चनन की कोऊ न जानें, खायं न भाजी खोंटी।।
काजर सुरमा परै न घर में, हिरा गई कजरोंटी।
पनघट मरघट पैंचे घर घर, लग गई नल की टोंटी।।
निज सुविधन की पकर 'मनोहर' हमने गरदन घोंटी।।

— डॉ. कुंजी लाल पटेल, बसारी ☐

बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक युद्धों में :

जानवरों की भूमिका

— जगदीश किंजल्क

प्राचीनकाल के युद्धों में, महान योद्धाओं की विजय का एक तिहाई श्रेय उनके उपयोग में लाये जाने वाले जानवरों को भी जाता है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। इतिहास में अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं, जहां जानवरों ने अपने मालिकों को गम्भीर संकटों एवं विपरीत परिस्थितियों से उबारा है। यूं तो सभी राजाओं की सेनाओं में जानवर होते थे। हाथी घोड़ों के अलावा जासूसी कुत्ते भी रखे जाते थे। परन्तु कुछ जानवरों की बहादुरी, वफादारी और सूझबूझ के कारण, उनके नाम इतिहास में आ गये। वे आज भी वीर योद्धाओं की तरह स्मरण किये जाते हैं।

१५७६ ई. में हल्दी घाटी का ऐतिहासिक युद्ध हुआ। यह भयंकर युद्ध मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बादशाह अकबर और महाराणा प्रताप के बीच लड़ा गया था। राणा प्रताप ने अकबर की अधीनता अस्वीकार कर दी तो सम्राट अकबर ने आमेर के राजा मानसिंह तथा सरदार आसफ खां के नेतृत्व में एक विशाल शाही फौज भेजी। राणा प्रताप ने बड़ी बहादुरी से इसका मुकाबला किया, परन्तु पराजय होना सुनिश्चित थी। राणा प्रताप ने भाग कर पहाड़ियों में शरण ली। वे पहाड़ियों पर मारे मारे फिरते रहे। कन्द मूल फल खाकर अपनी जीविका चलाते रहे और स्वतंत्रता का युद्ध जारी रखा। १५९७ ई. में मृत्यु से पूर्व अपने कुछ मजबूत गढ़ों को उन्होंने फिर से अपने अधिकार में कर लिया। राणा प्रताप के समक्ष इतने संकट आये, अनेक बार उन्हें मृत्यु से मुकाबला करना पड़ा, परन्तु उनका साथ किसने दिया? उनका साथ देने वाला उनका घोड़ा था 'चेतक', जो आज महाराणा प्रताप की ही तरह इतिहास में अपना महत्वपूर्ण अस्तित्व रखता है। जब भी राणा प्रताप का नाम लिया जाता है, चेतक का नाम स्वत: ही स्मरण हो आता है। यूं तो चेतक असामान्य कद काठी का घोड़ा नहीं था परन्तु उसके अन्दर दो विशेषताएं थी। पहली यह कि वह पूर्णत: राणा प्रताप के इशारों पर काम करता था। दूसरी बात यह है कि थोड़ी बहुत सूझ बूझ उसके अन्दर अवश्य थी। इन्हीं गुणों के कारण वह सामान्य घोड़ों से हटकर था। राणा प्रताप ने जैसे भी दिन देखे और जिन गम्भीर परिस्थितियों में वे रहे, चेतक ने उनका पूरा पूरा साथ दिया। आज 'चेतक' लोकगीतों से लेकर फिल्मी गीतों तक में स्थान पा गया है और वह भी राणा प्रताप की तरह अमर है।

राजस्थान के बाद बुन्देलखण्ड ही ऐसी भूमि है जहां अनेक युद्ध लड़े गये हैं। इस धरती पर सदैव युद्ध होते रहे। यहां राजाओं और रजवाड़ों की संख्या बहुत अधिक रही। यहां कभी सीमा विवाद को लेकर, कभी किसी सुन्दरी को लेकर और कभी अहं की टकराहट के कारण युद्ध होते रहे। बुन्देलखण्ड के युद्धों में हाथी पश्चावद और घोड़ा पपीहा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और यही कारण है कि इन दोनों को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। घोड़ा बेंदुला और घोड़ा हरनागर के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। बेंदुला, आल्हा का घोड़ा था और हरनागर ऊदल का। ये घोड़े सामान्य घोड़ों से ज्यादा हृष्ट पुष्ट, शक्तिशाली और सूझबूझ वाले थे। आल्हा ऊदल ने इन्हें ऐसा प्रशिक्षण दिया था कि वे रणकौशल में दक्ष हो गये थे। इनके खान पान और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आल्हा काव्य में इन घोड़ों की अनेक बार चर्चा आई है। प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं चित्रकार अम्बिका प्रसाद दिव्य ने अपने बहुचर्चित कला ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड चित्रावली' में भी इनका उल्लेख किया है। इसी ग्रंथ में हाथी पश्चावद् और घोड़ा पपीहा पर एक एक अध्याय देकर, दिव्यजी ने इनके योगदान को ऐतिहासिक मान्यता प्रदान की है। दिव्य जी ने लिखा है *'मनुष्य के विकास में हाथी और घोड़े का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दोनों ही यात्रा के प्रमुख साधन रहे, और युद्धों में तो मनुष्य के साथ साथ कटे मरे। वे मनुष्य की सम्पत्ति थे, शक्ति थे। उन्हें विविध प्रकार का प्रशिक्षण भी दिया जाता और उसे वे ग्रहण करते थे। जैसे वे भी युद्ध में कुछ बुद्धि रखते हों आज भी मनुष्य उनसे कुछ न कुछ काम लेता है।*

हाथी पश्चावत : इतिहास प्रसिद्ध हाथी पश्चावद्, दस्सराज का हाथी था। दस्सराज दसरापुर के जागीरदार और महान योद्धा आल्हा के पिता थे। हाथी पश्चावद की मान्यता एक महान सेनानायक की तरह थी। मांडू के राजकुमार करंगाराय ने एक बार दसरापुर पर हमला किया था और बहुत सारा सामान लूट कर ले गया था। उस लूट के सामान में हाथी पश्चावद भी था। उसे पाकर करंगा राय बहुत प्रसन्न हुआ था। पश्चावद् हाथी की विशेषताओं के विषय में दिव्य जी ने बुन्देलखण्ड चित्रावली में लिखा है, जब आल्हा ऊदल ने करंगाराय से बदला लेने के लिये मांडूगढ़ पर आक्रमण किया, पश्चावद हाथी को भी युद्ध में मार डाला। हाथियों को युद्ध में सांकल घुमाना सिखाया जाता था। जो भी उस सांकल की लपेट में आ जाता था। काल का ग्रास बन जाता था। पश्चावद भी सांकल घुमाने में प्रशिक्षित था। जब करंगाराय ने ऊदल से पार न पाते देखा, उसने पश्चावद को सांकल दी।' आल्हा काव्य में इस प्रसंग का रोचक वृतांत दिया हुआ है —

यह गति देखी है करिया ने, करिया गया क्रोध में छाय।
सांकर दे दई पश्चावद को, हथिया सांकर रहा फिराय।
पश्चावद ने साकर फेरी, ऊदल गये लपेटा खाय।

चोट न आई बघ ऊदल को, लीन्हा हाथी बीच उठाय।
यह गति रुपनावारी देखी, रुपना तमुअन पहुचा जाय।
कही हकीकत सब रुपना ने, सुनतहि चले बनाफर राय।
दिवला पहुंची पश्चावद ढिग, ओ दिवला ने कही सुनाय।
जुल्म गुजार दये पश्चावद, पासी नौन दिया बिसराय।
भूल गया है सुध महुबे की, करिया लायो होय चुराय।
शीश काट तेरे स्वामी कौ, करिया कोल्हू दिया पिराय।
सिगरी खबर भूल गई तोकों, बांधे कुंवर उदय सिंह राय।
इतनी बात सुनी हाथी ने, देवला देखी नजर उठाय।
देवला को देखो हाथी ने, छोड़े तुरन्त उदय सिंह राय।
सांकर डार दई हाथी ने, देवला मस्तक रही खुजाय।

अर्थात् हाथी पश्चावद ने सांकल घुमाई। दुर्योग से ऊदल ही उसकी लपेट में आ गये परन्तु उन्हें कोई चोट नहीं आई। पश्चावद हाथी ने उन्हें ऊपर उठा लिया था। रुपना नाम के वारी ने जब यह दृश्य देखा तो वह तत्काल तम्बू की ओर भागा। आल्हा काव्य में ऐसा प्रसंग है कि आल्हा ऊदल की मां रानी देवला भी मांडूगढ़ के आक्रमण में सेना के साथ गई थीं। रुपना वारी से सारा हाल सुन कर वे तुरन्त हाथी पश्चावद के सामने जा पहुंचीं और बोली, रे पश्चावद तू कितना जुल्म कर रहा है। तू हमारे नमक पानी को सब भूल गया। क्या तुझे महोबा की सुध भूल गई। करंगाराय तुझे वहां से चुरा कर लाया था। तेरे स्वामी का सिर काट लाया था और उसके शरीर को कोल्हू में पिरवा दिया था। तुझे सब कुछ भूल गया। तूने कुंवर उदय सिंह राय (अर्थात् ऊदल) को बांध रखा है? हाथी पश्चावद ने जब रानी देवला की बात सुनी और उसकी नजर उससे मिली तो उसने तत्काल ऊदल को छोड़ दिया और सांकल नीचे डाल दी।

इस तरह हाथी पश्चावद ने आश्चर्य में डाल देने वाले कार्य किये। हाथी पश्चावत् की ऊँचाई सामान्य थी। लम्बाई थोड़ा कम थी। शरीर गठा हुआ था और देखने में बहुत खूबसूरत था। जनश्रुति है कि पश्चावत हाथी पन्द्रह पन्द्रह दिनों तक भूखा प्यासा रह सकता था, जरूरत पड़ने पर। उसने अनेक बार युद्धों में इसी तरह के कर्तव्य दिखाये और इतिहास में अपना नाम दर्ज कराया।

घोड़ा पपीहा : प्राचीनकाल के युद्धों में घोड़ा सैनिकों का अनिवार्य अंग रहा है। मनुष्यों के साथ ही साथ उसने भी सभी तरह की यातनाएं सही हैं। अपने मालिक के इशारों पर वह कटा मरा, उछला कूदा, आगे पीछे दौड़ा और अपने मालिक की प्राणों की रक्षा की।

घोड़ा पपीहा, जो कि आज इतिहास प्रसिद्ध है, दसरापुर के जागीरदार, आल्हा के पिता दस्सराज की सेवा में रहा है। मांडू के राजकुमार करंगाराय ने जब दसरापुर पर हमला किया था और लूटपाट का बहुत सा सामान ले गया था तो उसके साथ ही साथ हाथी पश्चावद और घोड़ा पपीहा भी लेता गया था। आल्हा काव्य में इसका उल्लेख मिलता है —

आल्हा ठाड़ भयो डयोढ़ी पै, मन की मन में रही समाय।
और पपैया घुड़ला देखा, पश्चावद गज परयो दिखाय।।

बुन्देलखण्ड चित्रावली में स्व. श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य ने लिखा है, मांडूगढ़ से जब पपीहा घोड़े को वापस ले आया गया, वह अधिकतर रूपना वारी की सवारी में रहा। झूनागढ़ नरेश के पास रूपनवारी का सामान लेकर वह पपीहा घोड़े पर ही बैठकर गया और भी विवाहों में वह पपीहा घोड़े को ही ले गया।

दतिया राज्य में एक सुन्दरगंज नाम का हाथी था वह बहुत मस्त और उदण्ड था। अपराधियों को अथवा राजा जिस पर क्रोधित होते थे उसे उस हाथी के सामने छोड़ दिया जाता था। परन्तु पखावज के प्रसिद्ध वादक कुदऊँ महाराज के गजपर्ण वादन के समक्ष इसने अपना माथा टेक दिया था, तभी से यह इतिहास में स्थान नहीं पा सके, परन्तु उनके कर्तव्य महत्वपूर्ण रहे। यह शोध का विषय है।

— संपादक 'दिव्यलोक'
सी/५, रेडियो कॉलोनी, सिविल लाइन्स
सागर म.प्र. ४७०००१

कार्तिक स्नान : परंपरा और विधि

— कु. रामकिशोरी गुप्ता

बुन्देलखण्ड में स्थित कोई नगरीय क्षेत्र हो, चाहे दूरस्थ अंचल में स्थित कोई छोटा सा ग्राम कार्तिक माह में सूर्योदय से पूर्व, समूह में, कृष्ण भक्ति से ओत–प्रोत कार्तिक गीत गाती हुई महिलाओं का मधुर संगीत आपको आनंद विभोर कर देगा। ब्रह्म–मुहुर्त में गृह कार्यो से निवृत हो अड़ोस–पड़ोस की महिलाएं एकत्र हो समूह गायन करती हुई बसाहट के बाहर स्थित किसी नदी, नाला, तालाब अथवा कूप की ओर (कार्तिक) स्थान हेतु अग्रसर होती हैं। उनका यह क्रम निरन्तर पूरे कार्तिक माह में चलता है। इसी क्रिया को कार्तिक नहावो तथा स्नान करने वाली महिलाओं को कतकारी/कतक्यारी कहा जाता है।

पद्य पुराण में कार्तिक स्नान एवं उसके महात्म्यम् का वर्णन किया गया है —

यथा :— *कार्तिके मासि ये नित्यं तुलासंस्थे दिवाकरे। प्रातः स्नास्यन्ति ते मुक्ता महापातकिनोऽपि च ।।१२।। स्नानं जागरणं दीपं तुलसीवन पालनम्। कार्तिक मासि कुर्वन्ति ते नरा विष्णु मुर्तयः।।१३।। संमार्जनं विष्णुगृहे स्वस्तिकादि निवेदनम्। विष्णोः पूजां च ये कुर्युर्जीवन्मुक्तास्तु ते नराः।।१४।। इत्थं दिनेत्रयमपि कार्तिके ये प्रकुर्वते।। देवानामपि ते वन्द्या किं चैवाजन्मतः कृतम्।।१५।। (द्वितीय अध्याय)*

कार्तिक स्नान की इच्छुक महिलायें शरद पूर्णिमा के पूर्व से ही परस्पर सम्पर्क कर एक समूह का गठन कर लेतीं हैं। एक समूह में कितनी ही कतकारी हो सकती हैं गिनती का बन्धन नहीं है। समूह में शमिल महिलायें सखियां कहलाती हैं। कार्तिक स्नान का निश्चय हो जाने पर उसकी पूर्व तैयारी के रूप में पूजन सामग्री एवं भोजन सामग्री की व्यवस्था की जाती है। भोजन में दिन में केवल एक बार गेहूँ, जौ अथवा चावल से निर्मित खाद्यान्न ही लिया जा सकता है। शाक–सब्जी के रूप में नौरपा, रजगिरा की भाजी, अरइ या शकरकंद लिया जा सकता है। घी, दूध, दही, शक्कर आदि एवं सेंधा नमक लेनें की मनाही नहीं है। दो दलीय अन्न तथा बहुबीजीय फल वर्जित होते हैं।

स्नान का क्रम शरद पूर्णिमा से ही आरंभ हो जाता है। कार्तिक स्नान के संकल्प के रूप में कार्तिक कृष्ण पक्ष चौथ को गौधूलि बेला में गनेश पूजन कर एक श्वेत वस्त्र के आयताकार के छोटे से टुकड़े में सैगी सुपाड़ी, हल्दी की गाँठ, लौंग, इलायची, जौ, पंचरत्नी, कनेर के फूल की बौंड़ी एवं सवा रुपया रखकर उसमें गांठ लगा दी जाती है। इसे स्नान का संकल्प लेना या गाँठ बाँधना कहा जाता है अर्घ एवं पूजन हेतु धातु का एक नया पात्र भी क्रय कर लिया जाता है जिसे घट कहा जाता है। नदी, नाला, तालाब अथवा कूप के घाट के समीप की भूमि को साफ सुथरा कर वहाँ मिट्टी से एक छोटी वेदिका देवस्थापना हेतु निर्मित कर ली जाती है जो चौतरिया कहलाती है।

कार्तिक कृष्ण पंचमी से नियमित रूप से कतकारी अपने अपने समूहों में हर स्थिति में सूर्योदय से पूर्व कृष्ण की लीला सम्बन्धी गीत गाते हुए स्नान करने हेतु गन्तव्य स्थान को प्रस्थान करने लगती है। नदी तालाब में थोड़े चावल छोड़ती हुई स्थान कर गीले वस्त्रों में सर्वप्रथम घट गाँठ सहित सूर्य नारायण को अर्घ देकर फिर बदलकर विधिवत् यमुना जी का पूजन अर्चन कर दीपदान करती हैं।

अब पूरा समूह अपनी पूर्व निश्चित वेदिका के समीप एकत्र हो जाता है। एक सयानी महिला वेदिका पर वस्त्र का चौकोर टुकड़ा फैलाकर उस पर रेणुका (गंगा जी की बालू) से राधाकृष्ण की आकृति बनाना प्रारंभ करता है। समूह — 'उठो मोरे किशना भये भुनसारे....' गीत का गायन प्रारंभ कर देता है। आकृति निर्मित हो जाने पर विधिवत् धूप, दीप, पुष्प आदि से पूजा अर्चना होती है। नैवेद्य लगाते समय — 'धर्म शिला पर बैठी, जसौदा, अपने कनैया जू खौं रचती कलेवा' गीत गाया जाता है। आरती के साथ — 'मंगल माधौ तेरो जस गाओ, सबइ सुख पायौं'.... गीत गाया है। अक्षत हाथ में लेकर 'ऊ में चंदा उमैं सूरज गौआ बंधन खोलियों' गीत गायन होता है। अपने घट को हाथ में लेकर वेदिका पर बने राधाकृष्ण की आकृति के चारों ओर घूमते हुए कहतीं हैं — 'कामधाम सब छोड़न दो, कनैया से नातो जोड़न दो'.... गीत पूरा होने पर हाथ के अक्षत आकृति पर चढ़ा, चरण स्पर्श कर बैठ जाती हैं।

पूजन–अर्चन पश्चात् कथा सत्र आरंभ होता है। प्रतिबार (दिन) की एक–एक कहानी पूर्व निर्मित है। जिस दिन जो बार होगा उसी वार की कहानी कही जायेगी। इसके अतिरिक्त एक धार्मिक कोई अन्य सखी कहेगी। कहानियाँ समाप्त होने पर वेदी वेदिका की परिक्रमा करते हुई गाती हैं — 'इन पाउन परकम्मा करये। आशा पूजै मोरे मन की, दुविधा कब हुये हैं मन की'। परिक्रमा पश्चात् सभी श्री राधाकृष्ण की आकृति वाले वस्त्र के चारों ओर सावधानीपूर्वक खींचकर वेदिका के ऊपर से उठातीं हैं और उसे झूलना झुलाती हैं। झूलना गीत — 'अपने गोपाल जू खौं पलना झुला दउरी'...। झूलना की क्रिया समाप्त होने पर वस्त्र को स्थिर कर दिया जाता है और यह कल्पना की जाती है कि भगवान की कृष्ण रथ में बैठकर चल दिये हैं। उन्हें रोकने हेतु गीत गाया जाता है — 'रथ ठाड़ों करियो हो वंशी के बजइया'

अब सभी सखियाँ उस वस्त्र के विसर्जन हेतु वट की ओर बढ़ते हुए गाती हैं — 'यमुना में कूद परे कनैया मोरे, बूढ़त

काउ न लखै'....। विसर्जन पश्चात् पुनः वेदिका के पास आकर अपनी–अपनी हथेली पर जल छोड़ते हुए गाती हैं – 'डारो ढेली, उठ हवेली, अन्तकाल न जाऊँ अकेली....।' पूरा समूह प्रस्थान कर गीत गाता हुआ अपने–अपने घर वापिस आकर तुलसी पूजा परिक्रमा कर पारिवारिक कार्यों में संलग्न हो जाती हैं। यह क्रम द्वादशी तक निरंतर चलता है।

धन्वन्तरी त्रयोदशी से भगवान हिरा (खो) जाते हैं। उनकी खोज में समूह सर–सरिता के तट पर निरंतर पाँच दिनों तक भटकता रहता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत – 'जिनके हम दासी बेइ न मिले...' तथा 'तोरे लाने श्याम, हम भये रन–बन के....' आदि। खोये हुए कार्तिक श्याम कार्तिक शुक्ल तीज को काल्पनिक रूप में पाँच दिन बाद उन्हें पुनः प्राप्त हो जाते हैं। इसी अवधि में कतकारियों के समूह को मार्ग में गोपी रूपी पुरुष समूह दधि मांगने हेतु छेंकता (रोकता) है। महिला समूह को रोककर पुरुषों का गोपी रूपी समूह महिलाओं पर आक्षेप करता है। यथा –

१. *देव–देव दधि दान खड़ी बातों में क्यों बहलाती हो*
चोरी–चोरा बेच–बेच सुनें में कड़ जाती हो
आज मिलीं मग बीच लली अब काहे को पछताती हो।
देव–देव............।

२. *भर–भर मटकी दहिया बेचो छाछ हमें बतलाती हो*
चंचल चतुर चाल चटकीली बातें बहुत बनाती हो
रस गोरस में नीर मिलाकें ताही से गाढ़ो करती हो
नैन वान से तान प्यारी चित्त की ओर जुराती हों।
देव–देव............।

महिला समूह की ओर कोई एक महिला उत्तर देती हुई कहती है–

१. *झगड़ो न श्री कृष्णराय, मैं छेड़ो न पर नारी हूँ*
बरसाने से आई गुजरिया नन्दगांव को जा रही हूँ
आना जाना लगो रहत नित ये ही डगर हमारी है।
झगड़ो न श्री कृष्ण राय...........

२. *बचपन में बहु दही चुराये सो सब गम्में खाई हूँ*
ग्वाल–बाल सब संग में लेके छेड़त हो परनारी।
झगड़ो न श्री कृष्ण राय...........

३. *यही सिखायो जसोदा मैया बिगड़ी चाल तुम्हारी है*
छीन लीन तुम्हरी प्रेम पिछोरी मुरली मधुर सुहाई है।
झगड़ो न श्री कृष्ण राय...........

४. *जाय कहूँ मैं कंस राय से पड़ जै है मुश्किल भारी*
उतर जाय हल मस्ती तनकी और गरूरी छाई है।
झगड़ो न श्री कृष्ण राय...........

इस भांति कभी–कभी तो घण्टों महिला समूह एवं पुरुष के मध्य सूर, रसखान आदि प्राचीन कवियों से लेकर अर्वाचीन कवियों के छन्दों के माध्यम से प्रश्नोत्तरी का क्रम चलता रहता है। निरक्षर महिलाओं को श्रुत परम्परा से प्राप्त अनेक ऐसे छन्द याद होते हैं जिन्हें किसी पुस्तक में नहीं खोजा जा सकता है। अन्त में महिला समूह द्वारा दधिदान के रूप में पुरुष मण्डली को कुछ द्रव्य देकर छुटकारा पाया जाता है।

हिराने हुए भगवान मिल जाने पर कार्तिक शुक्ल तीज से कार्तिक पूर्णिमा तक पुनः पूर्ववत स्नान एवं वेदिका पर भगवान श्री कृष्ण की आकृति निर्माण, पूजन अर्चन, कथा–कहानी श्रवण आदि का कार्यक्रम निरंतर चलता रहता है। इसी अवधि में कतकारी अपने–अपने घरों में सुविधानुसार राइ–दामोदर (राधा दामोदर) के रूप में ब्राह्मण पति–पत्नि को आमंत्रित कर उनका वस्त्राभूषण से श्रृंगार कर भोजन कराकर विदाई दी जाती है। इस अवसर कतकारी समूह की सभी महिलाओं को आमंत्रित कर भोजन कराये जाते हैं।

कार्तिक माह में कुछ विशेष तिथियों पर विशेष प्रकार के कार्यक्रम होते हैं। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी (नरक चउदश) को करइ तुमरिया तथा अद्दाझारें हाथ में लेकर दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके खड़ी होकर तुमरिया तथा अद्दाझारें के पौधा को अपने ऊपर चारों ओर घुमाई हुई कहती हैं – अद्दाझारों, करइ तुमरिया, रोग दोष लै जाय दिवरिया कहकर उसे तालाब में फेंक देती है।

कार्तिक शुक्ल नवमी (इच्छा नौमी) को पूरे नगर, ग्राम की गरिमा करना होती है जिसे राछरी फेरना कहते हैं। परिक्रमा पश्चात् पुनः तालाब पर जाकर अपनी डलिया टिपरिया छीप आदि को धोती हैं तथा बाल धोकर स्नान कर वेदिका के पास छोटे–छोटे गड्ढा खोदकर जबा और धान भरकर ऊपर से मिट्टी डालती है जिसे खोड़ियाँ गाड़ कहते हैं। दोपहर बाद आंवले के वृक्ष के नीचे सभी कतकारी एकत्र होकर पूजन करती हैं। विशेष रूप से १०८ बाती जलाकर पूजन तथा आरती सुहाग का सामान चढ़ाकर १०८ परिक्रमा लगाती हैं सभी इच्छा भोजन करती है। कार्तिक शुक्ल दशमी (तुलसी दशमी) को लाड़ले पाननै होते हैं। सेंधा नमक खाने का यह अन्तिम दिवस होता है। इसके पश्चात् अन्न का भोजन एवं सेंधा नमक का प्रयोग पूर्णतः बन्द हो जाता है। तुलसी दशमी को तुलसी के घरुआ में हल्दी या पीले रंग से राधा कृष्ण की आकृति बनाकर पूजन सुहाग सामग्री तथा परिक्रमा करने के पश्चात् भोजन भी तुलसी की छाया में बैठ कर सकते हैं।

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णमासी तक पांच दिनों की अवधि में फलाहार कर व्रत किया जाता है इन्हें पचभीखें कहा जाता है। अन्तिम तिथियों में कृतिका नक्षत्र आ जाने पर कृतिका का व्रत निराहार एवं निर्जला के रूप में किया जाता है। कृतिका नक्षत्र समाप्त होने पर स्नान करने का चुन्ना–पुन्ना की बुड़की लेना कहा जाता है। स्नान पश्चात् स्वामी कार्तिकेय का दर्शन कर उन्हें खिचड़ी चढ़ाई जाती है। चुन्ना–पुन्ना की बुड़की लेते समय एक पपड़िया पर सूखा आटा रख उसे सर पर कर बुड़की लगाते समय कहती हैं – चुन्न चुन्न तुम लो, पुन्न–पुन्न (पुन्य) हमें दो।

कार्तिक स्नान की निरंतर एक माह से अधिक चलने वाली साधना महिलाओं में एक नई शक्ति एवं सामर्थ उत्पन्न कर देता है। वे पुनः अगले कार्तिक आने की प्रतीक्षा करना प्रारंभ कर देती हैं।

– कटरा बाजार टीकमगढ़ □

बल्देवगढ़ की विन्ध्यवासनी देवी

— रमेश शंकर सक्सेना

बुन्देलखण्ड वीर भूमि है, वीर प्रसूता है। यहाँ के कण–कण से साहस और शौर्य की अमर गाथायें जुड़ी हैं। यहाँ का जन–जन अपने स्वाभिमान और स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग करने को सदैव तत्पर रहता है। प्रकृति का वरद्–हस्त पाकर बुन्देलभूमि ने जहाँ माँ–भारती के काव्य भंडार को अपने लड़ैते–लालों द्वारा निरन्तर समृद्ध बनाया वहीं आन–वान और शान के पक्के, बुन्देला वीरों ने अपनी विजय पताकायें भी शान से फहराई। क्या साहित्य, संगीत और कला के साधक, और क्या हाथ में नंगी तलवार ले साहस और शौर्य के आराधक सभी भारतीय इतिहास में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। बुन्देला वीरों की शौर्य–गाथायें सुनकर आज भी बाहें फड़कने लगती हैं। चेहरा तमतमा उठता है, और शरीर में शक्ति की ज्योति प्रज्वलित होने लगती है।

शक्ति का शाब्दिक अर्थ है — सामर्थ्य। प्रकृति का वह तत्त्व जो समस्त सचराचर को शक्ति देता है सामर्थ्य देता है, आदि शक्ति कहलाता है, ब्रह्मा, विष्णु, और महेश भी जिस तत्त्व से शक्ति पाकर संसार का सृजन, पालन और संहार करते हैं यह तत्व देवी या दुर्गा के नाम से कहा जाता है। ''या देवी सर्व भूतेषु शक्तिरुपेण संस्थिता'' — जो देवी सभी प्राणियों में शक्ति के रूप में स्थित है। उसे नमस्कार है। संस्कृत साहित्य में शक्ति स्वरूपा देवी की विभिन्न लीलाओं और उनके स्वरूपों का वर्णन किया गया है। जिस लीला स्वरूप में देवी ने प्रकट होकर आर्त्तजनों की रक्षा की, दुष्टों का संहार किया' — भक्त लोग उसी स्वरूप से देवी माँ को पुकारने लगे। दुर्गासप्तसती का एक श्लोक है —

''सृष्टिस्थिति विनाशानां शक्तिभूते सनातनि
गुणाश्रये गुणमये, नारायणी नमोऽस्तुते।।''

संसार का संहार और पालन करने वाली, सभी भूतों अर्थात् जीवधारियों में शक्ति के स्वरूप में स्थित सनातनी, गुणमयी, नारायणी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं ही क्या, यह तो पावन बुन्देल–भूमि है, यहाँ का जन–जन शक्ति की आराधना करता है शौर्य की साधना करता है। पराक्रम के पेंगें बढ़ाता है। यही कारण है कि वीर प्रसूता बुन्देलवसुन्धरा में देवी की पूजा, शक्ति की उपासना बिना किसी प्रकार के भेद–भाव के सभी लोग करते हैं। क्या हरिजन और क्या सवर्ण, क्या डाकू और क्या साहूकार, क्या राजा और क्या रंक, माँ अम्बा के द्वार सभी के लिए समानरूप से सदैव खुले हैं। बुन्देलखण्ड के प्राय: प्रत्येक गाँव में 'माई कौ दिवालौ' — देवी का मंदिर होता है। यही नहीं बुन्देलखण्ड में अनेक सिद्ध शक्तिपीठ हैं। जहाँ जन–जन की आकांक्षाओं की पूर्ति होती है। मनोभावनायें पूर्ण होती हैं। दुर्वलताएं दूर होती है और मिलती है आशा की एक किरण, सुख की अभिलाषाओं को संवल। दतिया का पीताम्बरा पीठ, आल्हा ऊदल की कुलदेवी–मैहर की शारदा, बुन्देलों की आराध्य विन्ध्यवासनी देवी बल्देवगढ़ में सेवढ़ा की काली देवी, चंदेरी की नयना देवी, झाँसी की लहर की देवी, मऊरानीपुर की चण्डिका देवी, छतरपुर में वाघराजन माता, अवार माता, दूवदेई माता, पृथ्वीपुर की अद्यरू माता, गढ़कुण्डार की गिड़वासनी देवी, महोवा के मनियादेव इत्यादि प्राचीन सिद्ध स्थानों के अतिरिक्त दमोह, छतरपुर, सागर, टीकमगढ़ के गायत्री शक्तिपीठ, प्रभूति ऐसे जागृत शक्तिपुंज स्थल है, जहां से जन–जन जुड़ा है। अपनी भक्ति और भावना के अनुरूप फल प्राप्त करता है। वस्तुत: माँ विन्ध्यवासनी देवी की कृपा के फलस्वरूप ही बुन्देला शक्ति का अभ्युदय इस भू–भाग पर हुआ। विन्ध्यवासनी देवी का आदि शक्तिपीठ विन्ध्याचल में मिर्जापुर से सात किलोमीटर दूर है। देवी के १०८ शक्ति पीठों में यह स्थान प्रमुख शक्ति पीठ माना जाता है। तांत्रिकों के पाँच सिद्ध शक्ति पीठों में तो यह प्रमुख है ही, और सद्य: फलदायी भी है। यहाँ आदि शक्ति तीन स्वरूपों में विराजमान् हैं। विन्ध्याचल स्थित मंदिर में विन्ध्यवासनी देवी, अष्टभुजा में महासरस्वती और काली खोह में महाकाली के रूप में हैं। इस त्रिकोण यात्रा में अन्य अनेक छोटे–छोटे मंदिर है। वैसे तो पूरे वर्ष भर यहाँ यात्रियों और ताँत्रिकों का आना–जाना लगा रहता है, किन्तु नवरात्रि में तांत्रिकों की भीड़–भाड़ ज्यादा बढ़ जाती है। इन्हीं विन्ध्यवासनी देवी की कृपा से बुन्देलों को विन्ध्यभूमि की शासन–सत्ता मिली थी और उन्होंने अपनी जीत का परचम फहराया था। फलस्वरूप बुन्देला राजा माँ विन्ध्यवासनी देवी की सतत् उपासना करते रहे और नवदुर्गा में शक्ति की साधना करते रहे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. के.पी. त्रिपाठी लिखते हैं कि — ''हेमकर्ण जो काशी राज्य से अपने भाइयों से निष्काषित थे, ने अपने पुरोहित की मंत्रणा के अनुसार विन्ध्याचल स्थित माँ विन्ध्यवासनी की भक्ति भाव से निरन्तर उपासना की और अनुष्ठान किये। पाँचवे अनुष्ठान के पश्चात् देवी प्रसन्न हो गई। और उन्होंने हेमकर्ण को पंचम की उपाधि और विन्ध्यभूमि पर राज्य करने का वर दिया। हेमकर्ण पंचम विन्ध्येला कहे जाने लगे, जो कालान्तर में बुन्देला कहलाये।

बुन्देला राजाओं का आदि स्थान व प्रमुख राज्य ओरछा है। एक अन्य स्थान पर डॉ. के.पी. त्रिपाठी जी लिखते हैं कि ओरछा राज्य के नरेशों की मुद्रा में लिखा जाता था — 'श्री सूर्य कुलवंश काशीश्वर पंचम ग्रह निवार विन्ध्येलखण्ड मण्डलाधीश्वर

श्री महाराजधिराज ओरछा नरेश।' समय और परिस्थितियों के कालचक्र से प्रभावित होकर दूरदर्शी ओरछा नरेश विक्रमाजीत सिंह ने अपनी राजधानी ओरछा से टेहरी (वर्तमान टीकमगढ़) नामक स्थान पर स्थपित की। उन्होंने भगवान श्री कृष्ण के नाम पर टेहरी का नामकरण टीकमगढ़ किया। टीकमगढ़ से लगभग २० किलोमीटर दूर पूर्व दिशा में मदन वर्मा नामक चंदेल नरेश द्वारा निर्मित विशाल ग्वालसागर तालाव, साधी, सपाट दीवाल सी तनी खड़ी पर्वत श्रृंखलायें, सघन वन और अत्यन्त शान्त व सुरम्य निर्जन सा स्थान देखकर ओरछा नरेश विक्रमाजीत सिंह ने यहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया, जो सैनिक छावनी के रूप में प्रयुक्त किया गया और इस स्थान का नाम 'बल्देवगढ़' कर दिया गया। बल्देवगढ़ पुराने अभिलेखों के अनुसार 'बलदाऊ–गढ़या' जो कालान्तर में बलदोगढ़, बलदेवगढ और अब बल्देवगढ़ हो गया। ठीक भी है श्री कृष्ण की सेना के सेनापति–बड़ेभैया बलदाऊ ही तो थे। इसी बल्देवगढ़ नगर से २ किलोमीटर दूर विन्ध्यवासनी देवी का मंदिर है जो छतरपुर–टीकमगढ़ राजमार्ग पर एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है। पहाड़ी के नीचे 'बहेरिया' नामका नाला बहता है। लगभग सौ–सवा सौ सीढ़ियाँ चढ़कर देवी के मंदिर पर पहुँचा जा सकता है। बीच में लगभग १०० सीढ़ियों के पास मारुति नंदन–हनुमान जी की एक विशाल मूर्ति है जो पूर्वाभिमुखी है। मूर्ति अत्यन्त सौम्य और भव्य है तथा भक्तों को अभीष्ट फल देने वाली है। इन हनुमान जी महाराज के अनेक चमत्कारपूर्ण कथानक लोक जीवन में प्रचलित हैं। जिससे इस स्थान के सिद्धतथा सद्य फलदायी होने का प्रमाण मिलता है। जनश्रुतियाँ अतिरंजित तो हो सकती है, किन्तु वह सत्यता का दामन नही छोड़ती। सत्यता पर आधारित होती है।

हनुमान जी के दर्शनों के पश्चात् १५–२० सीढ़ियां और चढ़ना पड़ती हैं, तब विन्ध्यवासनी देवी के मुख्य मंदिर पर पहुँचते हैं। मंदिर के बाह्य प्रांगण में खड़े होकर जब हम आसपास के द्रश्य को देखते हैं, तो मन हर्षित हो जाता है। यहाँ का प्राकृतिक सुरम्य और मनोहारी दृश्य वरवस ही मन को मोह लेता है। विन्ध्यवासनी देवी की मूर्ति का दिव्य आभामय तेज और उनके मुखमण्डल से प्रस्फुटित होती ममतीली मुस्कान दर्शनार्थियों को अपनी ओर सहज ही आकर्षित करती है। उनकी शरण में पहुंचे मानवों के पाप और ताप को हरकर एक नई ऊर्जा देती है। शक्ति देती है। वस्तुत: मंदिर का सतोगुणी रम्य वातावरण एक अनिवर्चनीय सुख और शान्ति का संचार करता है। विन्ध्यवासनी देवी की प्रतिमा बलुई पत्थर की है, जो लगभग तीन साढ़े तीन फीट् ऊँची और दो–सवा दो फुट चौड़ी है। मूर्ति के चेहरे पर सहजता और सौम्यता तो है ही अद्‌भुत दिव्य ओज भी है। चार भुजायें हैं और सिंह की सवारी है। कुछ विद्वान देवी की प्रतिमा को चंदेल कालीन मानते हैं, और छतरपुर जिलान्तर्गत अवार माता की मूर्ति से समानता बतलाते हैं। जबकि मेरा मानना है कि चंदेलों के समय तो मूर्तिकला का इतना विकास हो गया था कि मूर्तियाँ अत्यन्त कलात्मक और उनके अंग–प्रत्यंग बारीकी से उकेरे जाने लगे थे, जो इस मूर्ति में नहीं है। जो कुछ भी हो इसे इतिहासकार ही जाने मूर्ति चंदेलकालीन है या चंदेलों से भी पहले की, अथवा बुन्देलों के समय की है–हम तो इतना ही जानते हैं कि मूर्ति में एक ऐसा चुम्बकीय आकर्षण और सहज भोलापन है कि मन–प्राण उल्लसित हो उठते हैं। आनन्द की अनुभूति होती है। इसी प्रचीन मूर्ति के बगल में संगमरमर की एक अष्टभुजी सुन्दर प्रतिमा है, जिसकी चीनी आक्रमण के समय कुण्डेश्वर निवासी ब्रह्मचारी जी में स्थापना कराई थी। मंदिर की परिक्रमा पथ से बाहर निकलकर एक छोटी सी मड़िया में काली देवी है। मंदिर के पीछे एक छोटी सी गुफा है, जिसे लोग 'शेर की चुल' कहते हैं। इस मंदिर की सबसे बड़ी विशेषता है कि मंदिर पर शिखर नहीं है, जो प्राय: सभी हिन्दू मंदिरों में होते हैं। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि मंदिर के पीछे जो गुफा या शेर की चुल है उसका सम्बन्ध बल्देवगढ़ के किले से है। यह एक गुप्त मार्ग से जुड़ा है। परिक्रमा–पथ और मंदिर की सम्पूर्ण बनावट कुछ ऐसी है कि यह संभव भी हो सकता है और इसे मात्र कपोल–कल्पना भी कह सकते हैं। पहाड़ी के ऊपर ही अब विन्ध्यवासनी देवी निर्माण कमेटी के प्रयास से एक बड़ी दालान और कुछ कमरों का निर्माण हो गया है। तीन–चार वर्ष से सतत अखण्ड रामधुन भी होती रहती है। दस पच्चीस भक्तजन व साधु सन्यासी यहाँ सदैव रहते हैं, जिनके भोजन–भंडारे की व्यवस्था क्षेत्रीय ग्रामों के सहयोग से स्थापित अन्नकोष द्वारा होती है। पहाड़ी के नीचे अनेक समाज के लोगों द्वारा अपनी–अपनी धर्मशालाएं बनवा दी गई हैं।

विन्ध्यवासनी देवी की पहाड़ी और नाले के बीच के मैदान में प्रतिवर्ष यहाँ चैत्र नवरात्रि के समय पन्द्रह दिन तक मेला लगता है, जिसमें क्षेत्रीय लोक–जीवन के काम में आने वाली वस्तुओं की विक्री होती है। गत् वर्ष २००१ में अयोध्या धाम की भक्तमाल के संत श्री दामोदर दास जी के द्वारा एक विशाल नौ कुण्डीय शतचण्डी यज्ञ का आयोजन किया गया था जिसमें लाखों लोगों की उपस्थिति और गरिमामय भागीदारी आंकी गई। यज्ञ के समय लोक–मानस का उल्लास और उमड़ाव देखते ही बनता था। अब यह जिज्ञासा होना स्वभाविक है कि शक्ति स्वरूपा मां देवी की यह कौन सी लीला का कथा प्रसंग है जब देवी ने दुष्टों का नाश करके भक्तों की रक्षा की और 'विन्ध्यवासनी देवी' के नाम से पुकारी जाने लगीं। विन्ध्यवासिनी देवी का सीदा–सादा अर्थ–विन्ध्याचल पर निवास करने वाली देवी। देवी विन्ध्यवासिनी के आविर्भान की अनेक लीला कथाऐं हैं। इनकी महिमा और कृपा लीला विलक्षण है। इनका कृपामय श्री विग्रह भक्तों के लिए परम आराध्य है। देवी की लीला कथाओं में एक कथा है –

'मार्कण्डेय पुराण जो भगवती परम्बा की महिमा एवं आराधना में पर्यवसित है, उसके देवी महात्म्य में स्वयं भगवती अपने

आविर्भाव के विषय में देवताओं को बताती हुई कहतीं हैं कि — ''देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य महादैव्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोप के घर में उनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से अवतीर्ण हो विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी और उन दोनों असुरों का नाश करूँगी'' —

'वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ।।४१।।
नन्दगोप गृहे जाता यशोदागर्भ सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी।।४२।।'

(श्री दुर्गा सप्तशती ११/४१—४२)

भगवती नन्दा के श्री अंगों की कान्ति कनक के समान उत्तम है। वे सुनहरे रंग के सुन्दर वस्त्र धारण करतीं हैं। उनकी आभा सुवर्ण के समान है तथा वे सुवर्ण के ही उत्तम आभूषण धारण करतीं हैं। उनकी चारों भुजाऐं कमल, अंकुश, पाश और शंख से सुशोभित रहती हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्मावुजासना (सुवर्णमय कमल आसन पर विराजमान्) आदि नामों से पुकारी जाती हैं।

श्रीमद्भागवत् में वर्णित है कि कंस के भय से त्रस्त वसुदेव जी भगवान श्री कृष्ण को लेकर नन्दगोप के घर में गये। वहाँ बालक को यशोदा के समीप सुलाकर देवी यशोदा की कूख से आविर्भूत कन्या को लेकर मथुरा चले आये और पूर्व प्रतिज्ञानुसार कंस को सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्या को मारने के लिए उद्यत् हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथ से छूट कर आकाश में विराट रूप में स्थित हो गई। विराट् रूपा उन देवी योगमाया ने दिव्य वस्त्रालंकारों को धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नों से जलिट थे। उनकी आठ भुजायें थीं, जिनमें वे धनुष, वाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाश में एक दिव्य तेजो मंडल से व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशायें प्रकाशमान हो रहीं थी। समस्त देवता, सिद्ध, गंधर्व, विधाधर, एवं ऋषि, महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट् रूप वसुदेव—देवकी के लिए तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद् था किन्तु कंस को वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलाई पड़ रहीं थीं। उस योगमाया ने आकाशवाणी में कहा 'अरे मूर्ख कंस। तू मुझे क्या मारेगा? तुझे मारने वाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है। अपना भला चाहता है तो भगवान की शरण ले और अब निर्दोष बालकों की हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गई और विन्ध्यपर्वत पर जाकर स्थित हो गई।'... अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायिका राज राजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासनी का स्थान विन्ध्यपर्वत पर है। यह देवी का जागृत शक्तिपीठ है। इनकी करुणा की कोई सीमा नहीं है।

(कल्याण वर्ष ४२— भगवल्लीला डांक पृ. २०१—२०२)

इन्हीं माँ विन्ध्यवासनी देवी की कृपा से हेमकर्ण को विन्ध्यक्षेत्र का राज्य मिला और निरन्तर प्रगति के सोपान अपनी तलवार की नोक से बनाते रहे। नव दुर्गा के समय चाहे वह शारदीय नवरात्रि हों या चैत्र की नवरात्रि विन्ध्यवासनी देवी के पूजन का एक सैलाव सा उमड़ पड़ता है। मानो भक्ति सरोवर का बाँध फूट गया हो। ढोलक, मंजीरा, खंजड़ी व अन्याय वाध्यों के सहारे अथवा बिना वाद्यों के रंग—विरंगे पट पहिरें, छला, चूरा, विजुल्ला और पाँव में डेढ़—डेढ़ किलो चांदी के पैजना छनकाती बुन्देली युवतियों के समूह ट्रैक्टरों में भर भरकर या पैदल चलकर उल्लसित मन से हाथ में लोटा ले जल चढ़ाने की उतावली में लगभग दौड़ सी लगाती हैं। देवी के गीतों की छुअन से गूँजती स्वर लहरी ''कैसे के दरसन पाऊँरी, मैया तोरी ऊँची अटरियाँ'' या फिर ''मोय आवें लहरियाँ वेला वाग की हो माँ ''गाती ग्राम—वधूटियों के झला के झला अब निकलते हैं तो उनका भक्ति भाव देखकर रोमांच हो जाता है। फिर सिद्ध शक्तिपीठ विन्ध्यवासनी देवी के प्रांगण का तो कहना ही क्या? जो सहज, सरल, कृपालु और दयामयी है। परम भोली, ममतीली और करुणामयी है। उनके यहाँ तिल रखने को जगह नहीं मिलती। मानव—समुद्र का एक ऐसा सैलाव जो भक्ति भाव में डूबा हुआ है। एक ऐसा जनरव जो ''जै—माई विन्ध्यवासिनी'' के बोलों से तरंगायित है।

इतना ही नहीं आपका मन कितना ही व्यग्र हो, अवसाद में आकंठ डूबा हो, दुख और पीड़ा से त्रस्त हो। निःसंतान हों, निराश हों, सांसारिक आधि—व्याधि के कुचक्रों से निकलने का मार्ग नहीं सूझ रहा हो। कोई सहारा देने वाला न हो। हताशा और निराशा ने घेर लिया हो — आप निःसंकोच बल्देवगढ़ स्थित माँ विन्ध्यवासिनी देवी के चरणों में जाकर बैठ जायें। माता से अपनी पीड़ा कहें, आपदा सुनायें मेरी मान्यता है कि आपको एक सहारा मिलेगा, दिशा मिलेगी, आशा की जोत जगेगी, प्रकाश की किरन मिलेगी। विन्ध्यवासनी देवी परमदयालु और मरुणामयी है। साधारण मां जब अपने बेटे के दुख को नहीं देख पाती; वह करुणा विगलित हो उठती है — तो फिर यह तो जगद्जननी है। अत्यन्त दयालु परम ममतीली और करुणामयी। भला वह अपने बेटे का दुख कैसे देख पायेगी। माँ हर दुख दूर करतीं हैं। शतशः कथानक लोक—जीवन में प्रचलित हैं जब विन्ध्यवासिनी देवी ने लोगों की पीड़ा हरकर उन्हें सुखी बनाया और मन की मुराद पूरी की। यह स्थान अत्यन्त तेजस्वी है, ओजस्वी है और प्राणवान है। यहाँ सतोगुणी तेजस की ऐसी प्राणवाम विद्युत तरंगे सतत् प्रवाहित होतीं हैं। जिनसे मन को एक चेतना मिलती है, शक्ति मिलती है। सुख और शान्ति का बोध होता है।

अंत में — ''सर्व मंगलमंगल्ये शिवे, सर्वार्थ साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।।''
''देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवी चराचरस्य।।''

(श्री दुर्गा सप्तशती ११/३)

— पंकज पुल के पास, बल्देवगढ़,
जिला टीकमगढ़ म.प्र. ☐

छतरपुर जिले का -

मध्ययुगीन रीतिकाव्य और ललितकलाओं का अन्तर्सम्बन्ध

– श्रीनिवास शुक्ल

स्वभाव से मनुष्य सौंदर्य प्रेमी है। सौंदर्य में एक विशेष प्रकार का आकर्षण है, मधुरिमा है, रस है। काव्य के नव–रसों में से श्रृंगार–रस का तो यह मानो उद्रेक और परिपाक–तत्व है, उसका कार्य कारण बीज भी है। यद्यपि सौंदर्यबोध प्रत्येक रस की अनुभूति में भिन्न–भिन्न परिवेश में न केवल सहायक अपितु अनिवार्य तत्व है किन्तु श्रृंगार रस में इसका मूर्त और अमूर्त्त स्वरूप समान रूप से आकर्षक है, मनोरम है। भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में तथा अन्य काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार रस को रसराज की संज्ञा दी है। श्रृंगार में आश्रय, आलम्बन और उद्दीपन एक रस हो जाते हैं उनमें परस्पर साधारणीकरण हो जाता है, द्वैतभाव का अभाव होकर अनन्य रस का संचार होता है। स्थायी भाव या सात्विक भाव का उत्कर्ष भी श्रृंगार रस में ही अधिक संभवनीय है। फिर कला तो सौंदर्य एवं श्रृंगार की केन्द्र है। और जब तक कला के शास्त्र या ज्ञान–विज्ञान को भली भांति आत्मसात नहीं किया जाता तब तक कला–रस को गूंगे के मीठे फल–रस की अनुभूति भले ही कह लें किन्तु उसकी मुखर और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति नहीं कह सकते। इसलिये कला की सही पहचान और विशुद्ध एवं परिपूर्ण रसानुभूति के लिये कला–शास्त्र और कला मीमांसा भी एक अपरिहार्य शर्त है।

रीतिकाल को अथवा रीतिकाव्य को आचार्यों ने कलाकाल, श्रृंगारकाल और अलंकारकाल कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी रीतिकाव्य के लिये इन विशेषणों की सार्थकता का समर्थन किया है और उन्होंने अपना अभिमत व्यक्त किया है कि रीतिकालीन काव्य में हिन्दी कविता ने प्रौढ़ता प्राप्त की है। यद्यपि रीतिकाव्य पर बोझिल–शास्त्रीयता और अति ऐहिकता अथवा स्थूल–वासनातिरेक का लांछन भी खूब लगा है किन्तु यदि उस काव्य पर समग्र रूप से दृष्टिपात किया जाए तो हम इसे काव्यसौष्ठव से लबालब भरे रसामृत का सदा–पूर्ण–कुंड के रूप में ही पायेंगे। स्मरण रहे कि इस युग में केवल श्रृंगार ही नहीं वीररस–प्रधान और भक्तिपरक रचनायें भी हुई हैं।

हर युग अपना स्वतंत्र गुण–स्वभाव लेकर पदार्पण करता है। यद्यपि वह अपने अतीत से सर्वथा असम्पृक्त होकर, उससे टूट कर अपनी पृथक सत्ता स्थापित नहीं करता किन्तु अपना अस्तित्व–बोध अवश्य कराता है। वह विगत की प्राणवत्ता से ऊर्जा तो ग्रहण करता है किन्तु अपने वैशिष्ट्य की पहचान अवश्य बनाता है। उसके अपने स्वीकार अस्वीकार होते हैं, अपनी प्रकृति, रुचि–अभिरुचि, अपनी चेतना, अपना चिंतन, अपना परिवेष, अपना चरित्र होता है जिसे समेटे हुए वह उतरता है। रीति कालीन काव्य भक्तियुगीन काव्य की अध्यात्मप्रधान भावभूमि और सात्विक मानसिकता से बचकर शुद्ध कला–प्रधान रस सृष्टा के रूप में उदित हुआ है।

हिंदी साहित्य के आचार्यों ने हिंदी–काव्य की विभिन्न धाराओं का काल–निर्धारण करते हुए रीति–काव्य को प्रायः विक्रम सम्वत् सत्रह सौ से सम्वत् उन्नीस सौ तक की समय सीमा में बांधा है। छतरपुर जिला के मध्ययुगीन रीतिकाव्य पर दृष्टिपात करते समय इस काल–मर्यादा को शिथिल करके चलने में अधिक लाभ–लक्षित होता है क्योंकि वर्तमान में छतरपुर जिला की बिजावर तहसील में रीति–परम्परा का एक ऐसा रस–सिद्ध आचार्य कवि हुआ है जिसकी चर्चा किये बिना यह आलेख अधूरा रहेगा। और वह आचार्य कवि है कविराज बिहारी नाम से प्रसिद्ध बिहारी लाल जी भट्ट।

छतरपुर जिला की मध्य युगीन साहित्य परम्परा का उदय छत्रसालकाल अर्थात् विक्रम सम्वत् सत्रह सौ के प्रथम चरण से ही चला था। अलीपुरा (छतरपुर) के कवि महबूब छत्रसाल के समय में हुए। शिवसिंह 'सरोज' में इनका काव्यकाल सं. १७६२ बताया गया है। जबकि स्व. पं. गौरीशंकर द्विवेदी के बुंदेल–वैभव के अनुसार इनका जन्म सं. १७०७ और रचना काल सं. १७९० मान्य किया गया है। किन्तु अनेक संदेह मिश्रित आश्चर्य अवश्य होता है कि छत्रसाल के समकालीन होते हुए भी न तो इनकी रचनाओं में कहीं भी छत्रसाल जैसे तेजस्वी एवं यशस्वी व्यक्तित्व का और न ही उनकी रचना धर्मिता का उल्लेख है तथा छत्रसाल के शताधिक आश्रित कवियों में महबूब जैसे कवि का नाम नहीं है, न ही छत्रसाल की रचनाओं में अथवा मान–सम्मान प्रसंग में इनका नामोल्लेख हुआ है। इस प्रकार इनके जन्म और रचना काल के परिप्रेक्ष्य में प्रामाणिकता पर प्रश्न–चिन्ह तो लगता ही है। किन्तु काल–निरूपण को गौण मानकर इनके काव्य का मूल्यांकन करना हो तो उसे रीति–प्रभाव का काव्य कहना होगा।

छतरपुर जिले के मध्ययुगीन साहित्याकाश में दो ऐसे जाज्वलयमान नक्षत्र हैं जिनके काव्य की चमक इस क्षेत्र की भास्वर–निधि है। ये हैं ग्राम खड़गांय के खुमान कवि और ग्राम महेबा के कवि गुमान। खुमान का जन्म विक्रम सम्वत् १८०० के आस–पास कहा जाता है और मृत्यु संवत् १८७८ से १८८२ के बीच। खुमान की रचनायें तीन भागों में बांटी जा सकती हैं – प्रथम पौराणिक काव्य जिसमें नृसिंह चरित और नृसिंह पचीसी है, द्वितीय श्रेणी हनुमंत–पचासा, लक्ष्मण–शतक, राम–रासो, रामचंद्र नख–शिख और गंगा–यात्राष्टक नामक रचनायें जो धार्मिक पक्ष पर आधारित हैं और तृतीय श्रेणी में

समकालीन इतिहास प्रधान काव्य कृतियों का समावेश होता है जिनमें 'नीति—निधान' 'अष्ट—याम' और 'समर—सार' है। अमर—प्रकाश के रचनाकार भी खुमान ही माने जाते हैं।

'नृसिंह चरित' एक सम्पूर्ण महाकाव्य है। इसमें सात काण्ड हैं। इसका रचनाकाल सम्वत् १८३९ है। इसके कथानक में हिरण्यकश्यप को पाशविक—वृत्ति के प्रतीक रूप में और प्रहलाद को मानवीय एवं सात्विक प्रवृत्ति का प्रतिमान तथा नृसिंह को समन्वित वृत्ति के उदाहरण रूप में रेखांकित किया गया है। कवि ने अपने राम—काव्य में राम को आलौकिक एवं अवतारी पुरुष के स्थान पर इस धरती के लौकिक महामानव के रूप में चित्रित किया है जो कवि का अपना वैशिष्ट्य है। उसमें राम—कथा—मूलक रचनायें सं. १८५२ से सं. १८६५ के बीच में की हैं। खुमान कवि के इष्ट थे हनुमान। 'नीति—निधान' नामक रचना तत्कालीन अनेक ऐतिहासिक प्रश्नों का समाधान देने वाली रचना कही जा सकती है। खुमान का एक अन्य वैशिष्ट्य यह भी है कि श्रृंगार—प्रधान रीति युग की उपज होते हुए भी खुमान ने श्रृंगार से अछूते रहकर वीर—रस प्रधान ओजस्वी काव्य का प्रणयन किया। उनकी रचनाओं में विशुद्ध बुन्देली शब्दों का सार्थक विन्यास और भाषा के ओज का एक उदाहरण प्रस्तुत है —

'बार डार बैरिन को मार डार मूढ़न को
जार डार जोगिन को झार डार बल को।
चोरन चखल डार खेंच कै खखल डार
अखल—बखल डार द्रोहिन के दल को।
वीर हनुमंत दौर दुष्टन दवाय डार
चुगलै चबाय डार गंज डार गल को।
लाय डार लोभिन, हलाय डार हूणन को
खाय डार खोपड़ी, खवाय डार खल को।'

कवि के भाषा—सौष्ठव और विम्ब—प्रस्तुति की यह उत्कृष्ट बानगी है। कृष्णायन नामक काव्य के रचयिता खुमान को ही माना जाता है। कवि खुमान रियासत चरखारीनरेश खुमान सिंह के राज कवि थे। सम—नामधारी होने के कारण अपने आश्रय दाता महाराज खुमान सिंह के अनुरोध पर उन्होंने अपने नाम के प्रथम अक्षर 'खु' का लोप कर लिया था और तभी से मान कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि हुई।

खुमान कवि के अनुज गुमान त्रिपाठी थे। इन्होंने अपना परिचय अपनी प्रसिद्ध रचना कृष्ण—चंद्र—चंद्रिका में दिया है। इस काव्य के प्रथम प्रकाश के अनुसार ये महेवा (छत्रसाल की प्रथम राजधानी) निवासी परम भागवत् श्री गोपाल मणि त्रिपाठी के चार पुत्रों में एक थे। सबसे बड़े भाई दीपसाहि, दूसरे (नृसिंह चरित, नीति—निधान, समर—सार, अमर—प्रकाश, कृष्णायन आदि के रचयिता) खुमान, तीसरे पुत्र स्वतः गुमान और चौथे थे द्वितीय खुमान। गुमान त्रिपाठी ने सम्वत् १८३८ (सन् १७८१) वैशाख सुदी १३ गुरुवार को कृष्ण—चंद्र—चंद्रिका की रचना की—

बसु गुन बसु शशि ठीक दयै, इक सम्वत् निरधार।
मधु माधव सित पक्ष को, त्रियोदशी गुरुवार।
ताही दिन नद नंद पद, बंदि महा आनंद।
कृष्ण—चंद्र की चंद्रिका, रची सुमति बहु छंद।।

महाकवि केशव की रामचंद्रिका को आदर्श मानकर कवि गुमान ने कृष्ण—चंद्र—चंद्रिका की रचना की। केशव ने 'रामचंद्र की चंद्रिका वरनत हौ बहु छंद' कहा है तो गुमान ने 'कृष्ण चंद्र की चंद्रिका रची सुमति वहु छंद' कहकर रामचंद्रिका के अनुरूप विविध छंदों में कृष्ण—चंद्र—चंद्रिका की रचना की। छंदों की विविधता के अतिरिक्त अन्य विशेषतायें इस काव्य में हैं। इसमें श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध की कथावस्तु का प्रामाणिक अंकन है। वर्णन शैली अत्यन्त सरल, सरस और रोचक है। प्रकृति चित्रण स्वाभाविक है। आचार्य कवि केशव के लदाऊ अलंकार—मोह से मुक्त शैली में गुमान कवि का प्रकृति चित्रण है। इस कारण वह अधिक मनोरम है।

कवि के छंद और भाषा सौष्ठव, शिल्पकौशल और भाव—लालित्य के दो एक उदाहरणों में रसास्वादन कीजिये — मोहन की वांसुरी का सम्मोहन प्रभाव देखिये —

''खग मोहे, मृग मोहे, नर मोहे, नाग मोहे
पन्नग पताल मोहे धुनि सुनति जासुरी
सुर मोहे, पुर मोहे, सुरन सुरेश मोहे
मोहि रहे सुनि कै असुर गुर—आसुरी
भनक गुमान कहौ मोहिवे की कहा वानि
चर और अचर मोहि उमगी हुलासुरी
गोपिन के वृंद मोहे आनंद मुनिंद मोहे
मेरु मोहे, मेरु के कुरंग मोहे वांसुरी।

इसी प्रकार मोहन की मोहक छवि—छटा का चित्र इस छंद में देखिये —

झुकि रहो मुकुट रही है झूमि मोती माल
चूमि रहे कान नैन नौक अनियारे की
कलित कपोल छवि हौ रहे रहन चात
च्वै रही सुघर अरुनारे अभिसारे की
भनत गुमान वा शोभा छहराई रही
कऊं फहराई रहै छोर पट न्यारे की
दूरि रहे मोतन गुविंद धेनु फेरि रहे
कूलनि कलिंदजा कदंब तरे प्यारे की।

गुमान की कृष्ण चंद्र चंद्रिका का सर्व प्रथम प्रकाशन सन् १९३५ में हरचन्द्र लक्ष्मण दास सैधनिट्टा लाहौर ने किया यद्यपि इसका सम्पादन दस वर्ष पूर्व सन् १९२५ में अपनी साहित्य सेवा के प्रथम चरण में हिंदी के जाने माने नाटककार पं. उदय शंकर भट्ट (जो छतरपुर रियासत के प्रभावी अधिकारी पं. श्याम सुंदर और पं. राधेलाल भट्ट परिवार से सम्बन्धित थे) ने किया था। इसमें उदयशंकर भट्ट की भूमिका और हिंदी के प्रसिद्ध लेखक एवं समालोचक बाबू गुलाबराय (तत्कालीन रियासत छतरपुर महाराज विश्वनाथ सिंह के सेक्रेटरी) का प्राक्कथन है।

मध्य युग की इस रीति–धारा में भक्ति–रस–संगम भी कम नहीं है। इस धारा के रचनाकार श्री जगन्नथ रिछारिया उपनाम शिवदास रिछारिया तनय श्री जुगल दास रिछारिया हुए हैं। इनका जन्म सम्वत् १८२० में छतरपुर में हुआ। इन्होंने सम्वत् १८४५ में कृष्णायन की रचना की जो खुमान कवि की कृष्णायन से भिन्न है। इसमें सात काण्ड हैं जो इस प्रकार हैं– १. बाल–कांड, २. वृंदावन कांड, ३. रहस कांड, ४. मथुरा कांड, ५. द्वारिका कांड, ६. उषा–अनिरुद्ध कांड और ७. तार्थ कांड। रचना के प्रारंभ में इन्होंने अपना परिचय निम्न पंक्तियों में दिया है –

नग्र छतरपुर अति सुख खानी
निस दिन बरसत अमृत वानी।
जुगल किशोर निकट मम वासा
वर्ण वर्ण पैरे नित आसा।।
द्विज रिछारिया सेव जू, कौशिक अहौ वखान।
कृष्णायन भाषा करी, लिखी प्रीत उर आन।।

इसी युग में इसी भूमि के श्री अमर सिंह कायस्थ ने सम्वत् १८६५ में सुदामा–चरित्र लिखा और इनके समकालीन श्री देवी प्रसाद कायस्थ ने दूसरे सुदामा चरित्र का प्रणयन किया।

छतरपुर जिला की उत्तर मध्य युगीन काव्य धारा में छतरपुर के प्रतिभावान् लोकप्रिय लोककवि स्व. गंगाधर व्यास हैं। जिनकी बहु–आयामी प्रतिभा में आचार्यत्व–विभूषण भी था। इनका जन्म छतरपुर में सम्वत् १८९९ में साधारण सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। इन्होंने जहां एक ओर सहस्रों सैरें, फागें, ख्याल–लावनी और धनाक्षरी की रचनायें कीं वहीं रीति–परम्परा में नायिका–भेद, की अनूठी कृतियां जड़ीं हैं। गोमाहात्म्य, विश्वनाथ पताका, व्यंग्यार्थ पताका, जामवती–विवाह, भरथरी चरित्र, सत्योपाख्यान इनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। ये छतरपुर और बुन्देलखण्ड में सैरों की साहित्यिक प्रतिद्वंद्विता अथवा फड़–परम्परा के प्रवर्तक थे और व्यास–दल के नाम से एक साहित्यिक अखाड़ा खड़ा हो गया। इनका प्रतियोगी दल पांडे दल था। इसके नायक पं. परमानंद एवं द्विज रामलाल जो एक आचार्य कवि थे। पांडे जी का जन्म छतरपुर में सन् १८०० के आस–पास माना जाता है। इनकी रचनायें सन् १८२० से सन् १८६२ के बीच हुई है। इनमें वारामासी, धनुष पचासा, अंगद बाद एवं झोलना संग्रह प्रसिद्ध हैं।

उत्तर मध्य काल के अंतिम चरण और आधुनिक काल के प्रथम चरण के संधि काल में रीति परम्परा के एक ऐसे यशस्वी आचार्य कवि का जन्म हुआ जो छतरपुर जिला के रीति काव्य का कालजयी रचनाकार है, और वह है कविराज बिहारी जिसका पूरा नाम बिहारी लाल भट्ट है। कविराज बिहारी का जन्म विजयादशमी सम्वत् १९४६ को (तत्कालीन रियासत) बिजावर जिला छतरपुर में हुआ। ये बिजावर महाराजा के राजकवि थे और छतरपुर, चरखारी, टीकमगढ़ तथा पन्ना, अजयगढ़ और धौलपुर नरेश का राजाश्रय अथवा राज–सम्मान इन्हें प्राप्त था। राजकवि काल में राजोचित ठाट–वाट वेष–भूषा तथा जीवन रचना थी किन्तु रियासत का अवसान होने पर उन्होंने एक संत–कवि की जीवन शैली, दिनचर्या एवं परिवेष धारण किया। इनकी प्रमुख रचनायें – १. साहित्य–सागर, २. मथुरा–गमन ३. बिहारी–विहार ४. बिहारी विनोद, ५. वीर–वावनी, ६. वैराग्य–संवाद ७. ज्ञान–गीतावली, ८. गीता–गंगोत्री, ९. ईश्वरी–गीता, १०. शांति सम्वाद, ११. लगन–लीला, १२. कुण्डली–कल्पलता, १३. वारिद–वसीठ, १४. पाप–प्रक्षालन–अष्टादशी, १५. गांधी–गमन, १६. गुरीरी–गारी, १७. शरीर–सप्तक हैं। साहित्य सागर लगभग दो सहस्त्र छंदों का वृहत लक्षण ग्रंथ है जो १५ तरंगों में तरंगायित है। कविराज बिहारी के इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक छंद में भाव और शिल्प का सामन्जस्य है। हर स्थल पर अलंकार कविता के भाव का सम्वाहक है और रस–परियाक में साधक है, बाधक नहीं। कवि ने विगत उन सभी रीति–कवियों के अलंकार मोह अथवा मोहातिरेक से कविता के सहज सौंदर्य को आच्छादित नहीं होने दिया जिन्होंने अलंकार को कविता की शोभा नहीं बोझ बना दिया। कविराज बिहारी ने अलंकारों का सार्थक निर्वाह करके कविता के अनूठेपन को आंच नहीं आने दी। कुछ उदाहरण दिये बिना कवि के काव्य–कौशल और अनूठेपन को आंका नहीं जा सकता। सहोक्ति अलंकार का उदाहरण एक दोहा में अंकित है –

सखि गोरस–बेचन कठिन, मग छेड़त ब्रजनाथ।
लोक–लाज, कुल–कानि सब लूटत दधि के साथ।।

गोरस बेचने वाली ब्रजांगना अपनी सखी से रसिक ब्रजनाथ द्वारा दधि लूटने के साथ लोक–लाज लूटने की लीला जिस सहजता और रसावेग में सुना जाती है वह दृष्टव्य है।

अल्प–वैभव पाकर इतराने और अहंकार करने वालों पर चोट करने का नयापन देखिये निम्न दोहे में विशेष निबंधना अलंकार द्वारा –

सेस सहस फान विष धरै, नहिं अभिमान अतंक।
वीछू एकै बिंदु पै, चलत उठाये डंक।

उत्तम मार्ग को तिलांजलि देकर अनीति भरे ओछे मार्ग का अवलम्वन करने वाले व्यक्तिपर चुटीला व्यंग्य प्रस्तुतकाकुर अलंकार में, इसमें से अंतिम दो पंक्तियां –

"कैसी मलिंद भई मति वावरी
झूल से का वे सुभाव गये हौ
छोड़ कै सोनजुही कौ जहूर
वमूर के नूर पै चूर भयै हौ।"

उक्ति–वैचित्र्य–पूर्ण एक ललित श्रंगारिक रचना विरोधाभाष के उदाहरण में देखिये –

ज्यों ज्यों बंधि रहयौ गोरी गति कौ नियम नीकौ
त्यों त्यों छुटि रहयौ उन्हें खेलन खयाल कौ
उठिवौ चहैं जे ज्यों ज्यों उन्नत उरोज तेरे
बैठिवौ चहै वे त्यों त्यों भवन विशाल कौ

कहत 'बिहारी' बढ़ रहे री नितंव ज्यों ज्यों
घटि रहयौ त्यों त्यों उन्हें प्रेम पर—वाल कौ
ज्यों ज्यों तोर नैनन कौ नीरखिवो नीचो होत
त्यों त्यों मन ऊँचौ होत मदन—गुपाल कौ।

शब्दालंकार अर्थालंकार, आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, भाव, विभाव, अनुभव के साथ साथ नायिका भेद के सरस दृष्टांत भरे पड़े हैं। छतरपुर जिला में अलीपुरा के निकटस्थ ग्राम चुरवारी के स्व. दीवान बहादुर श्री बट्टूराजा ने 'शिव परिणय' नामक रीति—परक प्रबंध—काव्य की रचना की। लगभग ४०—५० वर्ष पूर्व वे इसकी पाण्डुलिपि लेकर मेरे पास इस अपेक्षा से आये थे कि उस काव्य के प्रकाशन की व्यवस्था हो सके। मैंने विंध्य—प्रादेशिक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से उसके प्रकाशन का प्रयास भी किया किन्तु संस्था की आर्थिक सीमाओं के कारण वह संभव नहीं हो सका। अब ग्रंथ की पाण्डुलिपि किसके पास है यह अज्ञात है।

जहां तक यहां के मध्य युगीन रीति काव्य और अन्य ललित कलाओं के अन्तर्सम्बन्धों का प्रश्न है यह भी कला की विराटता और व्यापकता को स्पर्श करने वाला महत्वपूर्ण माध्यम है। वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत, काव्य आदि में इस परिप्रेक्ष्य में जो सामग्री भरी पड़ी है उससे कला की अनंतता का आभास होता है। शुक्राचार्य ने अपने ग्रंथ नीति—सार में कला के अशेषायामी स्वरूप का उल्लेख किया है फिर भी उन्होंने प्रमुख रूप से ६४ कलायें गिनाई हैं जिनमें साहित्य के अतिरिक्त संगीत, नृत्य, नाट्य, वाद्य, शिल्प, वास्तु आदि हैं। जिसके रसास्वादन से मूक भी रस विभोर हो जाय वह कला है। ''शक्तों मूकोऽपि यत्र कर्तु कला संज्ञा तु तत् स्मृतम्'' आचार्य वात्स्यायन, भरत मुनि, जय मंगल, श्रीधर स्वामी आदि ने कलाओं का विशद् विश्लेषण किया है।

छतरपुर जिलांतर्गत विश्व विख्यात खजुराहो का वास्तु शिल्प अथवा मूर्ति कला— सौष्ठव मध्य युगीन चंदेल शासकों के कार्य—काल में उद्‌भासित हुआ। यहां विभिन्न भाव—भैगिमाओं में रूपायित विविध आकर्षक मूर्तियों में रीति—प्रभावित अनेक नायिकायें आकार पा सकीं हैं जिनमें नव यौवना रूप—गर्विता, स्वकीया, परकीया, रति—प्रीता, अभिसारिका, खंडिता, प्रोषित—पतिका, आनंद—सम्मोहिता, ऊढ़ा, अनूढ़ा, प्रौढ़ा आदि लक्षण सहित लक्षित हैं। रीति—काव्य का प्रधान रस श्रृंगार रस तो मानो इन लावण्यमयी मूर्तियों में मूर्त हो गया है और मुखर भी।

इन मंदिरों में उत्कीर्ण अनेक मूर्तियाँ संगीत—समागम, नृत्यांगनाओं का नर्तन—नैपुण्य, कृष्ण—लीलायें और अनेक पौराणिक कथानकों को अभिव्यंजित करती है।

खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर में कृष्ण—लीला सम्बन्धी बारह दृश्यों की मूर्तियां मंदिर के प्रदक्षिण—पथ के चारों ओर गर्भ गृह, जंघा स्थल पर शिल्पित है। इनमें पूतना—बध, शकट—भंग, तृणावर्त—बध, यमलार्जुन उद्धार, वत्सासुर बध, कालिय—मर्दन, अरिष्टासुर—बध, कुबलयापीड—वध, चाणूर—बध, शल—युद्ध, बलराम द्वारा लोमहर्षण—बध के अतिरिक्त कुब्जानुग्रह की मूर्ति का श्रृंगार—भावना से प्रेरित सुंदर और आकर्षक अंकन है। इसमें मथुरा के भ्रमण करते हुए बलराम, कृष्ण को रूप यौवना कुब्जा कुबड़ी के रूप में मिलती है। वह अपने हाथ ऊपर उठाकर कृष्ण को अंगराग भेंट करते हुए दिखाई गई है और भेंट स्वीकार करने के लिये अपने बड़े भाई बलराम से अनुमति लेने हेतु उनकी ओर अपेक्षा की मुद्रा में मुड़कर देखते हुए कृष्ण चित्रित किये गये हैं। तात्पर्य यह कि जिन रस—सिंचित भाव भूमियों पर काव्य—सर्जनायें लहलहायी हैं — खजुराहो की पाषाण प्रतिमाओं में भी उन्हीं रसोन्मेषकारी कोमल भाव—भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। नारी का अंग—सौष्ठव, श्रृंगार प्रियता, जिसमें केश विन्यास, बेणी—बंधन, नेत्रांजन, अंगराग—आवेष्टन, आभूषण—अलंकरण आदि में रीति प्रभावित नख—शिख रचना शैली का शिल्प है।

यह तो निर्विवाद है कि खजुराहो की कला कृतियां मुख्यत: ईसवीं सन् ९०० से सन् १२०० के बीच उत्कीर्णित हुई है जिसे हम मध्य—काल का पूर्व काल कहेंगे किंतु काल—बिन्दु को गौण मानकर कलाओं के परस्पर अन्तर्सबंधों को लक्षित करना मेरा प्रधान उद्देश्य है।

यहां के लोक जीवन के जिन जिन अंगों में कला का प्रवेश है उसमें भी रीति काव्य का प्रभाव प्रतिबिम्बित है। उदाहरणार्थ वाद्य के रूप में थाली, लोटा, तमुरिया के स्वर ताल में ढिमरा राग, खंजड़ी मंजीरा के साथ कछया राग, ढोलक, कर—ताल, नगड़िया और चांचर यष्टियों के ताल में दिवरया नर्तकों की टोलियां विभिन्न लीला—गीतों, लोक गीतों के साथ साथ अनेक श्रृंगारिक रचनाओं को गाते नाचते दिखती हैं।

— शुक्लाना, छतरपुर □

भक्ति और शौर्य के प्रतीक कारसदेव

— डॉ. दुर्गेश दीक्षित

यह बुन्देल वसुन्धरा धन्य है जिस पर अवतरित होने वाले अमर सपूत, भक्ति भावना के प्रतीक और शौर्य के साक्षात् स्वरूप रहे हैं। बुन्देलखण्ड की अधिकांश लोक भाषायें भक्तिप्रधान और शौर्य प्रधान है। परमाल रासो, जगदेव कौ पवारौ और कारसदेव की लोकगाथायें इसके उत्तम उदाहरण हैं। बुन्देलखण्ड के हर गांव में लाला हरदौल और कारसदेव के चबूतरे पाये जाते हैं। कारसदेव की मढ़िया के सामने मिट्टी के घोड़े दिखाई देते हैं। जिन पर चढ़कर कारस युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराजित कर देते थे। इस क्षेत्र में भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी को कारसदेव की विशेष पूजा की जाती है। क्षेत्रभर के पशुपालक यादव—बन्धु और गड़रिया लोग शाम को एकत्रित होकर बड़े ही श्रद्धा—भाव से यशुधन के देवता की पूजा करते हैं। घी, दूध और नारियलों का भण्डार भर जाता है। भगोने भर भर कर खीर और टोकनियां भर भरकर पूड़ियाँ तैयार की जाती हैं। गरी चिरौंजी दाने पंजीरी और हलवा से बड़े बड़े थाल भर जाते हैं। विनती करने वालों की भीड़ लग जाती है। डोरू (डमरू) की ध्वनि से सारा वातावरण गूंज जाता है। पैरों से डोरू बाँधकर रात भर गोटे गाई जाती हैं। बड़ा ही मनोरंजक और आनंद—प्रदायक दृश्य होता है वह। कारसदेव की लोकगाथा एक विशेष प्रकार के लोकगीत 'गोटों' के रूप में गाई जाती है। इसे डोरू नामक लोकवाद्य के साथ एक विचित्र लोकध्वनि में गाया जाता है।

कारसदेव हैहय वंशी राजा अजयपाल के आश्रित और समकालीन थे। हैहयवंश राजपूतकाल के अन्तर्गत आता है। अत: कारसदेव का समय ग्यारहवीं और बारहवीं सदी के मध्य अनुमानित है। इनके साथ उनके हीरामन और सूरजपाल नाम के दो चचेरे भाइयों का भी नाम आता है। ऐसा कहा जाता है कि ये तीनों भाई मिलजुलकर जंगल में गायें चराया करते थे। उनका जन्म 'झांझ' नाम के ग्राम में एक गूजर परिवार में हुआ था। उनकी माता को नाम 'सरनी' और बहिन का नाम 'ऐलादी' था। सरनी नि:संतान थी। उसने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से बारह वर्ष तक निराहार रहकर भगवान शंकर की कठोर तपस्या की थी। ऐसा लोकगाथा में कहा गया है कि उनकी पुत्री ऐलादी ने भी शिवजी की पूजा—आराधना में जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया था। भगवान शंकर तो आशुतोष और अवढरदानी है। वे सरनी और ऐलादी पर प्रसन्न हो गये और उन्होंने तेजस्वी पुत्र हेतु वरदान दे दिया। सरनी प्रदोष व्रत के दिन स्नान करने सरोवर के किनारे पहुँची। उन्हें 'कमल पुष्प पर अलौकिक आलोक दिखाई दिया। सरनी जब आश्चर्य चकित होती हुई कमल पुष्पों के समीप पहुँची। तब उन्हें कमल की पंखुड़ियों पर लेटा हुआ बालक दिखाई दिया। उन्होंने भगवान शंकर का वरदान समझकर बालक को उठाकर बड़े प्यार से गोद में ले लिया। पुत्र प्राप्त होते ही सरनी आनंदित हो गई और उसका घर सुख और समृद्धि से आपूरित हो गया। वह 'गोट' में इस घटना का विस्तृत वर्णन किया गया है —

"बारा बरस तपिया तपी, करे न अन्न अहार
सरनी गई असनान खौं, अहेले तला के पार।।
सौ सौ दल कमला खिले, भ्रमर रये गुंजार।
एक कमल पै ऐसैं लगै, जैसे दियला जरे हजार।।
कमल पै पौढ़ो राज कुमार।
उठा सरनी ओली लये, कारस खौं पुचकार।
जप तप सब पूरन भये, मोरी शिव नें सुनीं पुकार।।
कमल पै पोंढ़ो राजकुमार।।
सुरजा थके चंदा थके, माँ की जोत निहार।
जनम जनम कौ सरनी घर कौ, मिट गओ सब अंधियार
कमल पै पोढ़ो राजकुमार।।"

गोटकार का कथन कितना सटीक और सार्थक है —

'जनम जनम कौ सरनी घर कौ, मिट गओ सब अंधियार'

पुत्र माता—पिता के घर को प्रकाशित कर देता है फिर कारस जैसे तेजस्वी पुत्र से माता सरनी का घर प्रकाशित क्यों नहीं होगा। माता सरनी ने बड़े प्यार से पुत्र का पालन—पोषण किया। बड़े होकर कारस गौ सेवा में जुट गये। उनके घर में दूध दही की कोई कमी नहीं थी। गायों का शुद्ध दुग्धपान करना। मन चाहा दधि—माखन खाना उनका नित्य कृत्य था। उन्हें भगवान कृष्ण का पर्याय कहा जाता है। एक गोट में कारस की बहिन ऐलादी की तपस्या का वर्णन किया गया है —

"जनम सें कारसदेव कनइया पतौ भेद काउयें नइयाँ"
ऐलादी नें बारा बरस सेवा कर लई। भोला अड़वंगे नाथ की।
तारी खुली भोला अड़वंगे नाथ की। आज कौ माँगों पाय।
ऐलादी ऐसे वीर मांग रई, कुरइयल के चरइया।
धौरी के रखबइया।
सूरजपाल के भइया, जेठौ बल पाय।

शंकर जी ने प्रसन्न होते हुए ऐंलादी से कहा —

गूजर की बिटिया, तैंने मौसें माँग लये अटपटे वरदान
जा आजई कौ माँगौ पाय।
इतनें बचना सुन लये, भोले अड़बंगे नाथ के।
बदलत आ रई ती अपने घरई द्वार,
बिटिया घर—घर बुलौवा दै रई, माना सी झाँझ।
मोरी बैंनी हो कातक अनालो सीते सी पार"

एक गोट में कृष्ण और कारस की समानता का वर्णन किया गया है —

''कै भये कनइया, कै कारस भये, जिनने गईयन की रखी लाज
धन धन झांझ की गइयां, धन धन कारस महाराज
समारौ सबई हमाओ काज।
चाँवल सीं बयें दूद की नदियाँ, बाजैं दुहिनिया कछार।
दूदन–पूतन गोरी धन फलबै, हार–पहारन करें सिंगार
कारस होबैं जै जैकार।''

कारसदेव की गौ–सेवा के कारण उनके घर और गांव में दूध–दही की नदियाँ बहनें लगीं। ऐलादी खेप भर भरकर दूध बांटने लगी। एक गोट में इसका यथार्थ चित्रण है–

''डगरी ऐलादी अपने खोरन द्वार होओ।
करवा पै दोनिया बगरन माँझ होओ।।
ढीले पड़ेला भुवरी भैंस कौ होओ।
ढीलो बछला नग नावन गाय कौ होओ।
०० ०० ००
जब ऐंलादी नें धर लई नामन दुदुवा की खेप होओ
मद कौ भारी हथिया डोलत, तामें आड़ी गैल होओ।।

ऐलादी झांझ के राजू गूजर की बेटी थी। अपने घर परिवार की सुख–समृद्धि देखकर किसको आनंद प्राप्त न होगा। उनके पास अपार गौ–सम्पदा थी। कारसदेव, हीरामन और सूरजपाल गायें चराते थे। ये अपनीं गायों से हिल–मिल गये थे। 'गोट' की पंक्तियों से यह बात सिद्ध हो जाती है।

''धौरी ठाँढ़ी कान उठाय, कारस ने दुदुवा पियौ।
मन में भरै उमाव, सुमर भुमानी कौ चलौ।।
मुरली में उचारे नाँव, हीरामन मुरली बजाय।
मुरली की धुन में, धौरी कजरी गाय।''

गौरक्षा के लिए वे प्राणार्पण करने को तत्पर रहते थे। गौहिंसक कौ वे अपना शत्रु समझते थे। वे परम वीर और साहसी योद्धा थे। उनके घोड़े तीव्रगामी और चंचल थे। वे बड़े से बड़े शक्तिशाली शत्रु का सामना करने के लिए तैयार रहते थे। उनके आसपास 'भुवनसिंह' नाम का एक शक्तिशाली योद्धा निवास करता था। वह दुष्ट और हिंसक था। यदा कदा वह गायों को अपहृत कर लेता था। कारसदेव भुवन सिंह की कुवृत्तियों से रुष्ट रहा करते थे। एक बार उन्होंने भुवन सिंह को युद्ध के लिए ललकार दिया। दोनों का घमासान युद्ध हुआ। अंत में भुवन सिंह की पराजय हुई। युद्ध का दृश्य देखने योग्य है —

'बढ़ा दये बछेरा अपने खिरक के।'
कारस पौंचे भुमन के दोर।।
रूरूर खुरून बच्छा डारे। ठढ़ौ बदलौ लै लेओ बहोर।।
बिजुरिया ऐसौ खाड़ौ काड़ौ, जैसें जीभी काड़ै करिया नाग।
भुमना आग बबूला भयो, आयौ सामें मार छलांग।
बोलौ दै अओ मजा चखाय
कारस सुन भुमना की बात, मनें रओ मुस्काय।।
करलै दो दो दावरे, बोलौ खाड़ौ उठाय।
अपनौ बदलौ लैव चुकाय।।
भुमना धरन गिरे रे ऐसैं, जैसे गिरे टूट कैं डार।
बीरा बरस कौ कारस खेलै, लैकैं नगन तलवार।।
झांझ के मिट गये दुक्ख अपार।''

कारस के शौर्य और पराक्रम के समक्ष भुवन सिंह क्षण भर भी नहीं टिक सका। गोट में बिजुरिया खाँड़े की उपमा करिया नाग की जीभ से दी गई है। जो कितनी सार्थक है। दूसरी उपमा देखने योग्य है– 'भुमना धरन पै ऐसे गिरे रे, जैसें गिरें टूट कैं डार।' किसी योद्धा का धराशायी होना, एक वृक्ष की टूटी हुई डाल के समान है। गोटकार के द्वारा की गई तुलना कितनी सुन्दर और सटीक है।

कारसदेव के पराक्रम की चर्चा दूर दूर तक फैल गई। भगवान शंकर के वरदान से अवतरित कारस भगवान शंकर के परम भक्त थे। उनकी ही कृपा से उनमें अटूट शौर्य और साहस विद्यमान था। अच्छे अच्छे पराक्रममी और शक्तिशाली शत्रु उनके चरणों पर माथा टेक देते थे। राजा 'गढ़वाढार' की बेटी 'जयदेव' का सौन्दर्यवृत्त सुनकर कारस उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो गये। माता सरनी ने समझाया कि ''बेटा! तुम 'बांगर' जाने की बात छोड़ दो। अभी तुम वहाँ जाने योग्य नहीं हो।'' गाथा में कहा गया है —

''इतनें बचना सरनी माता नें सुन लये वीरन के
वीरन बागर की रटना छोड़ दो।
वीरन तोरी छोटी उमर कइये लिलोर,
टूटे नइयाँ दूद के दाँत।
तोपैं ऐड़न में बछेरा दबें ना, तोपें सधें ना दुधारो सेल
बाँगर में बारा कोस कौ जंगल कइये।
सरगन में मड़राय रये कटंगी बांस, मोरे वीरन।
पैले पारे सिंहन के लगे, दूजे पारे नाथन के लगे,
हैं झाड़ी बीच मझार।
तीजे पारे कइये पाँचो कलरया के लगे मैड़े मझार।
चौथे पारे लगे हथियन के, उर गेरऊ खाई दई खुदवाय।।

अधिक हठ करने पर माता ने आज्ञा दे दी। कारस घोड़े पर चढ़कर चल दिये। गोटकार ने उनके उत्साह का वर्णन करते हुए कहा है —

''पांच परकम्मा बछेराखौं दै दये, उचट कैं भये बछेरा पै सवार।
तोरे बल भरोसैं जा रये बछेरा, बाँगर सी बैरी भूमि खौं
बछेरा कारस वीरन खौं समजा रये कैं ऐसैं झुला दओ।
जैसें सरनी ने झुलाये पलना मझार।

वे तीव्र गति से बढ़ते हुए बाँगर के राजा की गढ़िया के समीप पहुंच गये। गोटकार कह उठता है —

'कारस देव ने बदला दये बछेरा, बेरी की भूमि लों।
कछुअक बछेरा धरनी लगे, कछुअक चले असमान

पैले पारे पै सिंहा मारे कारसदेव ने।
दूसरे पारे पै नाथन के फोर डारे मौन बाजे,
तीसरे पारे पै सिंहा मारे कारसदेव ने।
कसइया की लगी हैं जीकी दुकाने मैंड़ै पै दई डुरुकाय।
चौथे पारे हथियन के कारसदेव ने दये हुमसाय।
आड़ी ठाँड़ी खाई नाकी बछेरा नें।
उड़ उड़ कैं पौच गये जाँ पलका डरे बेटी जमदेव के।
उड़कैं बछेरा बदलत आ रये माना सी झांझ खौं।
इक वन चाले तीजे वन आ गये माना सी झाँझ।''

कारस बेटी जमदेव का अपहरण करके झांझ ले गये। सुनते ही राजा बहुत क्रोधित हुआ और कारस को मारने का उपाय सोचने लगा। किन्तु कारस की वीरता को देखकर चकित रह गये और उन्हें अवतारी समझकर शांत रह गये। फिर भी राजा की क्रोधाग्नि भीतर ही भीतर भबकती रही। राजा ने एक ब्राह्मण के बालक को झांझ भेजकर कारस की मृत्यु का उपाय खोज निकाला।

गोटकार ने कहा है —

''बामुन के वारे ने चुरियाँ खरीद लई, धर लओ चुरेरे कौ भेष।
चुरियँन के पसारे धर लयें मूढ़ै मझार।
बदलत जा रये माना सी झाँझ में
माना सी झांझ की खोरन में लम्मीं दै रये आवाज।
अरे बाई बेनियाँ हो, चुरियां तौ पैर लो बड़े भारी मोल की।
सरनी माता भीतर सैं बाहर कड़ आई, समजा रई चुरेरे को
बैन ऐलादी चुरेरे खौ समजां रई।
मोरे कारस खौं पैर में पदम उर माथे पै चन्द्रमा होय
जिनके बछेरा उड़ आसमान खौं जाय।
जीकौ मरइया नइया कोनऊ लोक में।
इतने बचना चुरेरे नें सुन लये।''

कहा जाता है कि राजा ने कारस की मृत्यु का उपाय जानकर उन्हें युद्ध के लिये ललकारा। कारस उस चुनौती को कैसे न स्वीकार कर सकते थे। राजा ने मैंदान में नीचे बर्छियां गढ़वा दी और नीचें गहरी खाई खुदवा दी। युद्ध करते समय कारस का घोड़ा खाई में समा गया। बर्छियों से कारस के पांव का पदम फट गया और उनकी मृत्यु हो गई। यह एक विस्तृत लोकगाथा है। विस्तार भय के कारण सम्पूर्ण गाथा को प्रस्तुत करना कठिन है। कारस अपने जीवन काल में तन मन धन से गौ रक्षा करते रहे। वें तत्कालीन राजा अजयपाल के पद—चिन्हों पर चल रहे थे। अजयपाल को शिवजी की कृपा से मंत्र शक्ति प्राप्त की थी, जिसके द्वारा पशु रोगों का उपचार किया जाता था। आज भी कहीं कहीं बुन्देलखण्ड में अजय पाल के मन्दिर बने हुए हैं। जहाँ लोग जाकर पशु रोगों से बचने की मनौती मनाते हैं। कारसदेव जीवन भर जन कल्याण करते रहे। इसी कारण से आज उन्हें देव—तुल्य पूजा जाता है। यादव—बन्धु और गड़रिया लोग डोरू ध्वनि के साथ गोटों में कारस की कीर्ति का गायन किया करते हैं।

— कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ म.प्र.□

बुन्देली जनश्रुतियों में इतिहास-तत्व

— डॉ. हरिसिंह घोष

जनश्रुतियां लोक में प्रचलित ऐसे लोग स्वीकृत सत्य हैं जिनमें इतिहास तत्वों का संयोजन सूत्रवत् होता है। लोकचेतना की सूक्ष्मदर्शी आंखें ऐतिहासिक घटना के तथ्यों को साफ–साफ केवल पढ़ती ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ी के लिये स्मृति पटल पर अंकित करके रखती भी हैं। ये तथ्य सत्यता में खरे होने पर ही स्थायित्व पातें है। इनके स्थायित्व पाये रूप का सतत प्रचलन ही इनकी सत्यता की पुष्टि करता है अर्थात् इनका साक्ष्य लोक के लिये लोक द्वारा स्वीकृत होता है और धीरे–धीरे लोकमान्य होकर लोकप्रचलित हो जाता है।

इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना में सत्ता की प्रधानता रही है। सत्ता द्वारा निर्मित ताम्रपत्र, सनदें और शिलालेख आदि के आधार पर परिनिष्ठित इतिहास की रचना में प्रमुख शासकों को केन्द्रित कर एक विशेष दृष्टि से विजय–पराजय की घटनाओं के साथ ही तत्कालीन आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों का विवरण तो लिखा गया किन्तु जनकेन्द्रित दृष्टि के अभाव में जनसामान्य का यथार्थ जहां अछूता रह गया वहीं सामन्ती स्वार्थ ने अपने प्रतिकूल ऐतिहासिक सत्य को उजागर न होने देने का प्रयास भी किया। फिर भी, लोक सदैव जागरूक रहता है, और निरपेक्ष भाव से सत्यता को मौखिक परम्परा में जीवित रखता है जिसे परिष्कृत रूप में लोककवि रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है एवं लोक कलाकार उसी को चित्रांकन अथवा उत्कीर्णन द्वारा प्रस्तुत करता है।

जनश्रुतियों में निहित तथ्यों को इतिहास के पन्नों पर भले ही न लिखा गया हो किन्तु लोकविश्वास ने उन्हें प्रामाणिकता देकर उनकी प्रभावक्षमता को अमर बना दिया है जिसकी पुष्टि में अनेक लोकगाथाओं के उदाहरण लिये जा सकते हैं। प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक जनश्रुतियों पर आधारित लोकगाथाओं में इतिहास की बहुत कुछ सामग्री भरी पड़ी है यह बात अलग है कि उनके नायकों मे से अनेकों को लोक ने देवत्व प्रदान कर दिया। कारसदेव की लोकगाथा भी ऐसा ही एक प्रमाण है, गोटों में वर्णित घटना को इतिहासकारों ने जैसे नकार दिया है किन्तु लोक ने उसे अमरत्व दिया।

आल्हखण्ड में परमर्दिदेव के पुत्र से पृथ्वीराज की बेटी बेला का विवाह इतिहास की पोथियों से नहीं लोकसाक्ष्यों से प्रमाणित है। चन्देल नरेश और पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए संघर्ष के संबंध में इतिहासकार एकमत हैं किन्तु इसके कारणों की पुष्टि के लिए पर्याप्त साक्ष्यों का अभाव है। इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र लिखते हैं कि 'चंद के काव्य में आल्हा–ऊदल द्वारा अनेक युद्धों में भाग लेने और सफलता प्राप्त करने की चर्चा मिलती है। इनमें अधिकांश युद्ध तो चौहान सम्राट पृथ्वीराज और चंदेल सम्राट परमर्दिदेव के बीच हुए। इन दो वंशों के बीच दो लोमहर्षण युद्ध हुए — पहला ११८२–८३ में जब पृथ्वीराज ने अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए महोबा पर आक्रमण किया, दूसरा जब पृथ्वीराज की कन्या बेला का विवाह परमर्दि के पुत्र कुंवर ब्रह्मानंद से होने का प्रस्ताव हुआ।'[१] इतिहासकार एन.एस. बोस ने भी बोला के विवाह को ऐतिहासिक रूप दिया है। वे लिखते हैं कि '......... किन्तु हम सोचते हैं कि इन गाथाओं के पीछे सत्य अवश्य है।'[२]

''लाला तोरौ भलौ है लछारौ नांउ'' — एक मांगलिक अनुगूंज के साथ जनश्रुतियों में चर्चित लाला हरदौल की अमर गाथा को इतिहास ने मात्र ऐतिहासिक घटनाक्रम का एक अंग मानते हुए उसका उल्लेख किया है। इतिहासकार पं. गोरेलाल तिवारी ने अपनी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' में यह स्वीकारा भी है कि उन्होंने यह तथ्य जनप्रचलित कथा से लिया है।

जनश्रुति में जो तथ्य संजोया गया है उसमें पक्षपात का भाव हो ही नहीं सकता, बुन्देली धरा पर दलेल खाँ का आक्रमण जब बुन्देलों को पीछे हटने के लिये मजबूर करता है तो जनश्रुति गवाही देती है — 'दलेल की उलेल में बुन्देल बहे जात हैं।' लोक के इसी कथन के 'जगतराज दिग्विजय' के कवि ने स्वीकारते हुए लिखा है — 'जासु उलेल बुन्देल बहे लखि तौन दलेल हतौ जगता नें।'[३] जनश्रुति ने छत्रसाल के राज्य का भी सीमांकन करके इतिहासकार को एक दृष्टि दी है' — इत जमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौंस, छत्रसाल सौं लरन की रही न काहूँ हौंस।''

आजादी की लड़ाई से संबंधित अनेक जनश्रुतियां इतिहास तत्वों के सूत्र संजोये हुए हैं। इन सूत्रों के संकेत इतिहास को बहुत कुछ दे सकते हैं। 'सब राजा दगा दै गये नृप लड़े अकेले' — जनश्रुति में जैतपुर नरेश पारीछत की अंग्रेजों के विरुद्ध सन् १८४०–४२ ई. में लड़ी गई आजादी की लड़ाई की जानकारी के साथ ही — 'सब राजा दगा दै गये' का अर्थ संकेत करता है उस आयोजन का जो 'बुढ़वा मंगल' के नाम से चरखारी में आयोजित हुआ। इस आयोजन में बुन्देलखण्ड के अनेक राजाओं ने राजा पारीछत के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी की लड़ाई लड़ने की शपथ ली और चरखारी नरेश रतनसिंह ने छाती में लवा छिपाकर पूरा सहयोग करने का वचन दिया था। जनश्रुति कहती है कि 'सबरे राजा जुर बैठे चरखारी में बुढ़वा मंगल कीन, पुन सब जेई आड़ गढ़िया में पारीछत को मुहरा

दीन।' इतना तो इतिहासकार ने स्वीकार भी किया है।[४] किन्तु, चरखारी नरेश ने भी अन्य राजाओं की तरह राजा पारीछत के साथ विश्वासघात किया। इस ऐतिहासिक सत्य को लोक ने व्यंग की इन पंक्तियों में संजोकर रखा है — 'खरी दुपहरिया पहरिया की ओट, मुरक देखौ कक्का भतीजे की चोट'। कक्का शब्द का प्रयोग करके लोक ने बड़े मार्मिक सत्य को उजागर किया है। चरखारी नरेश रतनसिंह राजा पारीछत के कक्का (चाचा) थे। छतरपुर राज्य की झींझन के जागीरदार दिमान देशपत ने राजा पारीछत के बाद सन् १८४१ से १८६३ तक अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहाग्नि सुलगाने का कार्य बड़ी कुशलता और साहस के साथ किया। अंग्रेजों के दांत खट्टे करने का काम उन्होंने जीवन पर्यन्त किया।[५] इस ऐतिहासिक सत्य का संकेत जनश्रुति की इस पंक्ति से मिलता है — 'हंडियां में रांधो खपरिया में खाओ, भागो भाई हरो देशपत है आओ।'

जनश्रुतियों में ब्रिटिशकालीन इतिहास को उजागर करने के लिए और अंग्रेजों द्वारा लिखे गये इतिहास को झुठलाने के लिये पर्याप्त सामग्री है। उदाहरणार्थ दतिया राजा की अंग्रेजों से सांठगांठ की कहानी और झांसी की जनता पर हुए अत्याचारों को उजागर करने के लिए जनश्रुति की यह पंक्ति पर्याप्त है — 'झांसी गले की फांसी दतिया गले कौ हार।'[६]

कहने का तात्पर्य केवल यही है कि जनश्रुतियों में निहित इतिहास — तथ्यों पर गंभीरता से विचार कर सत्य अन्वेषण की आवश्यकता है। लोक ने जो कुछ देखा, समझा और परखा उसे ही स्वीकारा है। अत: वह सत्य के अधिक निकट हो सकता है। ऐतिहासिक काव्यों के इतिहासपरक तथ्यों की पुष्टि इतिहास—ग्रंथों तक ही सीमित रख कर निर्णय लेने के बजाय हमें लोक में बिखरे जनश्रुतियों ऐतिहासिक सत्यों को भी समझना और परखना होगा ताकि इतिहास की भूलों में सुधार हो सके।

संदर्भ संकेत :

१. चन्देल और उनका राजस्वकाल — केशव चन्द्र मिश्र पृ. १३१
२. हिस्ट्री ऑफ द चन्देलाज — एन.एस. बोस पृ. १९४
३. जगतराज दिग्विजय — द्विजहरिकेश कवि — छंद ३४३
४. सन् १८४१ के बुन्देला विद्रोह के जनक जैतपुर नरेश पारीछत — रामसेवक रिछारिया — १९९३ पृ. ४०
५. वही, पृष्ठ ७५—८१
६. लेखक का शोध प्रबन्ध — बुन्देलखण्ड के इतिहासिक काव्य — एक मूल्यांकन, पृ. ११

— घोषयाना, संकटमोचन रोड,
छतरपुर म.प्र. ४७१००१

शाहगढ़ : वो भूली दास्तां...

– राघवेन्द्र सिंह ठाकुर

विंध्याचल की हरितिमा सिक्त सुरम्य पर्वत मालाओं से अलंकृत, अमर शहीद महाराजा बखतबली शाह जू देव के कर्म आहूतियों की यह पवित्र यज्ञशाला जिसे शाहगढ़ (शाह+गढ़ अतैव शाह का गढ़) नाम से जाना जाता है आज इतिहास के पन्नों पर सर्वथा उपेक्षित स्थिति में रहने को विवश है। इस उपेक्षा के प्रति जिम्मेदार कौन है? इसकी विवेचना न करते हुए आइये हम शाहगढ़ के गौरवशाली अतीत से रूबरू हो लें।

महाराजा छत्रसाल ने मुगल सल्तनत से शाहगढ़ का किला (जो कि वस्तुत: गौड़वाने राज्य का था) छीनकर अपने बड़े पुत्र हृदयशाह को पन्ना, कलिंजर, महू शाहगढ़ और गढ़ाकोटा का राज्य सौंप दिया। महाराज हृदयशाह बेहद पराक्रमी थे जिन्होंने सन् १७०० में शेर अफगान को परास्त कर उसका पन्ना के पास प्राणान्त कर दिया था। कवि 'भूषण' के शब्दों में हृदयशाह की वीरता कुछ इस तरह की थी –

''चीतन के झुंडन पर नजर गजेन्द्र राखे,
भूषण गजेन्द्र पर नजर मृगराज की।
सिंहन पे नजर एक राखत है बाज अरु,
बाज पे नजर गरुड़ पक्षराज की।।
नदिया पे नजर ज्यों राखत समुन्दर है,
समुन्दर पे नजर ज्यों अगस्त्य ऋषिराज की।
राजन पे नजर सदा राखत है बादशाह,
बादशाहन पे नजर हृदेश महाराज की।।''

शाहगढ़ एवं गढ़ाकोटा एक ही राज्य होने के कारण हृदयशाह गढ़ाकोटा को राजधानी बनाकर राजकाज संभालते थे। इस राज्य में 'बोधा' कवि (विरह वारिए के रचियता) एवं 'बदनेश' नाम से प्रख्यात् कवि भी हुए हैं।

सन् १७३९ में हृदयशाह के महाप्रयाणोपरान्त उनके पुत्र सभासिंह को यह राज्य प्राप्त हुआ किन्तु मराठों की मदद से इनके भाई पृथ्वीसिंह ने राजगढ़ और गढ़ाकोटा का राज्य ले लिया। पृथ्वीराज भी बेहद प्रतापी एवं पराक्रमी राजा हुए हैं। जिन्होंने कर्नाटक पर हमला करने के लिए मराठों को मदद प्रदान की। साथ ही दिल्ली में अहमदशाह अब्दाली से लड़ने जा रही मराठों की सेना को ५००० सैनिकों की सहायता प्रदान की थी।

पृथ्वीसिंह के देहान्तोपरान्त उनके पुत्र किशनजू तथा किशनजू के उपरान्त उनके भाई हरिसिंह यहां के राजा बने। दयालु एवं धार्मिक प्रवृत्ति के हरिसिंह का देहान्त सन् १७८५ में काशी में होने के बाद उनके पुत्र मर्दन सिंह ने शासन सम्हाला। महाराजा मर्दनसिंह का गढ़ाकोटा के प्रति अधिक लगाव था तथा गढ़ाकोटा का प्रसिद्ध 'रहस का मेला' इन्हीं का आरंभ किया हुआ था।

नागपुर के भोंसलों द्वारा गढ़ाकोटा पर चढ़ाई किये जाने पर महाराज मर्दनसिंह ने अपने पुत्र कुँ. अर्जुनसिंह को भेजकर ग्वालियर के सिंधिया परिवार से सहायता चाही। सिंधिया ने विजयी होने की स्थिति में आधे राज्य को लेने की शर्त पर 'जान वेपरिस्ट' नामक फ्रांसीसी सेनापति के नेतृत्व में सहायता भेजी। युद्ध में विजयी होने के तत्काल बाद मर्दनसिंह जी का अचानक देहांत होने के स्थिति में कुँवर अर्जुनसिंह ने राजकाज सम्हाला तथा पिता के वचनों का आदर करते हुए आधा राज्य (गौर झामर देवरी, नाहरमऊ मालथौन आदि) सिंधिया को दे दिया। इस आधे राज्य को सिंधिया ने अंग्रेजों को सौंप दिया जिसे अंग्रेजों ने 'सागर नर्मदा टेरीटरीज' में शामिल कर लिया। शेष राज्य पर शासन करते हुए अर्जुनसिंह ने प्रणामी (धामी) सम्प्रदाय के अनेक विशाल एवं भव्य मंदिरों का निर्माण कराया।

सन् १८४२ में अर्जुन सिंह के देहावसानोपरान्त उनके पुत्र महाराजा बखतबली शाह जू इस राज्य के राजा हुए जबकि अर्जुनसिंह के समय में ही इस राज्य की राजधानी शाहगढ़ हो चुकी थी।

महानप्रतापी महाराजा बखतबली शाहजू १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में पूरे जोश और पराक्रम के साथ शामिल हुए। सितम्बर १८५८ में जब अंग्रेजों की सेना ग्वालियर पर हमला कर रही थी तब नाना साहब की सहायतार्थ बानपुर नरेश मर्दनसिंह एवं शाहगढ़ नरेश बखतबली शाह जू मुरार के जंगलो तक पहुँच पाये थे कि दुर्भाग्यवश ग्वालियर राज्य का पतन हो गया एवं मुरार के जंगलों में ही दोनों राजाओं को २८ सितम्बर १८५८ को गिरफ्तार कर लाहौर भेज दिया गया। जहाँ मोरी गेट पर हकीम राय की हवेली पर इन्हें नजरबंद रखा गया। लाहौर से दिल्ली तथा दिल्ली से वृन्दावन में २९ सितम्बर १८७३ तक (कुल पन्द्रह वर्ष) नजरबंद रहकर २९ सितम्बर १८७३ को भारत माँ के इस लाल ने अंतिम सांसे ली। तब से आज तक २९ सितम्बर के दिन महाराजा बखतबली शाह की पुण्यतिथि प्रतिवर्ष शाहगढ़ नगर में मनाई जाती है।

अब आइये हम १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में महाराज बखतबली शाह के योगदान से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं पर दृष्टिपात करें –

१८ जुलाई १८५७, दिल्ली के तख्त पर बहादुर शाह जफर की ताजपोशी एवं क्रांतिकारियों द्वारा सम्राट घोषित किये जाने पर

शाहगढ़ में तोप के गोले दागकर खुशियां मनाई गईं।

२० जुलाई १८५७, बानपुर नरेश को लिखे पत्र में बखतबली शाह ने सागर (अंग्रेजों के राज्य पर) पर आक्रमण करने को कहा।

५ अगस्त १८५७ को अंग्रेज अधिकारी डब्ल्यू.सी. इर्कसिन ने अंग्रेज सरकार को पत्र लिखकर सूचित किया कि शाहगढ़ व बानपुर के राजाओं ने सागर पर आक्रमण करने की धमकी दी है।

६ अगस्त १८५७ कैप्टिन एफ.डी. पिंकने (डिप्टी कमिश्नर) द्वारा मद्रास से सेना मांगी गई क्योंकि शाहगढ़ की सेनाओं ने सागर एवं दमोह के लिये खतरा पैदा कर दिया था।

३१ दिसम्बर १८५८ तात्याटोपे ने बखतबली को सहायता हेतु पत्र लिखा। नाना साहब पेशवा ने भी इसी तरह का पत्र लिखा (३१ दिसम्बर १८५७ एवं २० जनवरी १८५८)

४ फरवरी १८५८ की खुफिया रिपोर्ट (अंग्रेजी खुफिया) अंग्रेजों के विरुद्ध शाहगढ़ एवं बानपुर राज्य द्वारा लड़े जा रहे युद्ध की सफलता के आधार पर झांसी की रानी आगे की रणनीति तय करेंगी।

२१ फरवरी १८५८ शाहगढ़ नरेश ने धामौनी पर अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा खोला तथा तात्याटोपे को तोपें एवं गोले भेजने के लिए पत्र लिखा।

३ मार्च से आगे : महाराजा बखतबली शाह अपने ८००० सैनिकों सहित, अंग्रेजों को झांसी पहुंचने से रोकने के लिए मदनपुर पहुँचे, मदनपुर की घाटी में अंग्रेज सेनापति 'कर्नल ह्यूरोज' की सेना से शाहगढ़ की सेना की मुठभेड़, अंग्रेज पराजित, ह्यूरोज के पांव में गोली लगी, उसका घोड़ा मारा गया, लेकिन कुछ ही समय में अंग्रेजों को भोपाल की बेगम तथा पन्ना से सैनिक सहायता प्राप्त। पुनः युद्ध एवं शाहगढ़ की सेनायें पराजित, बखतबली सेना सहित झांसी की ओर कूच कर गये जहां 'नोंट घाट' पर मेजर 'रोज' से टकराव, मेजर रोज मारा गया एवं उसकी सेना पराजित, तत्पश्चात् बखतबली ने तात्याटोपे के साथ चरखारी पर आक्रमण करके उसे परास्त किया। वहां से २२ तोपें तथा ३ लाख रुपये लेकर सेना झांसी की ओर बढ़ी। बांदा, वानपुर की सेनायें भी शामिल। मुख्य सेनापति तात्याटोपे तथा सेना के एक भाग के सेनापति बखतबली शाह नियुक्त। भीषण युद्धोपरान्त झांसी का पतन तथा महारानी की शहादत।

२८ सितम्बर १८५८ : को मुरार के पास महाराजा बखतबली शाह अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार, हकीमराय की हवेली लाहौर, दिल्ली और वृन्दावन में नजरबन्द रहते हुए २९ सितम्बर १८७३ को महाप्रयाण।

१ अप्रैल १८५९ को शिवपुरी में यूरोपीय जनरल कोर्ट मार्शल की धारा १४ के अन्तर्गत कार्यवाही हुई जिसके अध्यक्ष कैप्टिन बाध नौंवी रेजीमेंट नेटिव (बाम्बे) थे। इसमें तात्याटोपे ने शाहगढ़ नरेश द्वारा सहायता दिया जाना स्वीकार किया।

संवत १९१४ सन् १८५७ (तारीख अस्पष्ट) को झांसी की रानी ने बानपुर नरेश को लिखे पत्र में स्पष्ट लिखा था कि — 'हमारी, आपकी व शाहगढ़ वाले राजा की व तात्याटोपे तथा नाना साहिब की सलाह भइती कि स्वराज भव चाहिए।'

निश्चय ही उक्त घटनाक्रम को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि हमारी 'बुन्देली वसुन्धरा' अपने गौरवशाली अतीत में ऐसे कई अनछुए पहलुओं को समेटे हुए हैं जो वर्तमान में सर्वथा अनजाने से हैं। ऐसी बुन्देली धरा के महान सपूतों में से एक अमर शहीद महाराजा बखतबली शाह जू देव का स्मृति चिन्ह शाहगढ़ का किला आज अपने बदहाल पर रो रहा है क्या हमारी कृतघ्नता का इससे बड़ा प्रमाण और कुछ हो सकता है कि हम अपनी ऐतिहासिक धरोहरों की रक्षा तक न कर सकें?

— १३/३०, बखतबली शाह वार्ड,
शाहगढ़ ☐

छतरपुर जिले का

उत्तरगुप्त, प्रतिहार एवं चन्देलकालीन मंदिर स्थापत्य

— डॉ. चन्द्रमौलि शुक्ल

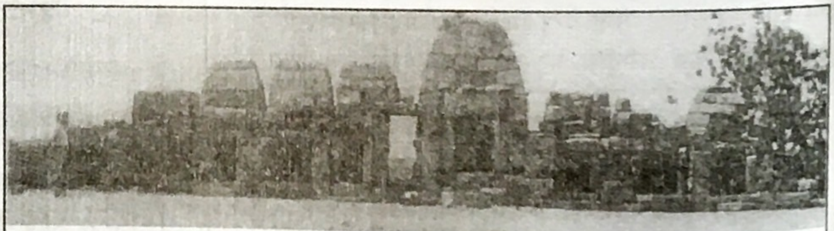
आवश्यकता आविष्कार की जननी कही गई है। जैसे–जैसे मानव की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई वैसे–वैसे स्थापत्य के विविध रूपों का विकास हुआ। लौकिक सुख, आध्यात्मिक शान्ति तथा सुरक्षा के लिये स्थापत्य के क्षेत्र में विविध प्रकार के निर्माण किये गये। लौकिक सुख के लिये भवनों, नगरों, सड़कों तथा जलाशयों का, आध्यात्मिक शान्ति के लिए मन्दिरों, स्तूपों, चैत्यों एवं अन्य धार्मिक स्थलों का तथा सुरक्षा के लिये दुर्गों का निर्माण किया गया। छतरपुर जिले के विभिन्न क्षेत्रों के सर्वेक्षण से मुझे अनेक मंदिरों, दुर्गों तथा जलाशयों की जानकारी मिली। ये स्थापत्य कला के श्रेष्ठतम उदाहरणों में से गिने जा सकते हैं। खजुराहो के मंदिर तो अपने स्थापत्य तथा मूर्तिकला के लिये विश्व विख्यात है। लेकिन खजुराहो के अतिरिक्त अन्य स्थलों में स्थित विवेच्य कालीन स्थापत्य की उपेक्षा की गई है। जबकि कुछ उदाहरण खजुराहो के स्थापत्य के समतुल्य है।


हिड़ोराबारी का शिवमन्दिर

छतरपुर जिले के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित विवेच्य कालीन अधिकांश मंदिर तल से लेकर शिखर तक पाषाण से निर्मित हैं। जबकि चौका का शिवमन्दिर और अचट्ट का विष्णु मंदिर क्रमांक एक का निर्माण कटि भाग तक पाषाण से तथा उसके ऊपर ईटों से किया गया है। चौका का शिव मन्दिर सपाट छत का है। उसके गर्भगृह के ऊपर ईटों के शिखर का निर्माण सम्भवतः बाद में किया गया है। कुछ मन्दिरों के निर्माण में ग्रेनाइट का और कुछ में बलुये पत्थर का प्रयोग हुआ है। बलुये पत्थर में मुख्यतः भूरे बलुये पत्थर का प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण लाल बलुए पत्थर के भी मिलते हैं। मन्दिरों के निर्माण के लिये प्रयुक्त पत्थर प्रायः समीप ही उपलब्ध था। अनेक मन्दिरों के समीप निर्मित कुछ तालाबों को देखकर ऐसा लगता है कि उस स्थान पर भूमि के अंदर दबे पत्थरों का उत्खनन करके उन्हें मन्दिरों के निर्माण में प्रयुक्त किया गया और उत्खनन में जो गड्डे निर्मित हुये उन्हें तालाब का रूप दे दिया गया। इन मन्दिरों का निर्माण नागर शैली में वास्तु के नियमों को ध्यान में रखकर हुआ है।

अधिकांश मन्दिरों का निर्माण चबूतरा निर्मित कर उस पर किया गया है। कुछ उदाहरण ऐसे मन्दिरों के भी मिलते हैं जो चबूतरे पर निर्मित नहीं है। तिंदनी का शिव योगिनी मन्दिर, कैंड़ी का देव मन्दिर, तथा व्यास बदौरा का विष्णु मन्दिर ऐसे ही मंदिर हैं। चबूतरों का निर्माण प्रायः सामान्य पत्थरों से हुआ है। कुछ मन्दिरों के चबूतरे के बाह्य भागों में तराशे गये पत्थर प्रयुक्त हैं। प्रारंभिक मन्दिरों के चबूतरों की ऊँचाई अपेक्षाकृत कम है जबकि बाद में निर्मित मन्दिरों के चबूतरों की ऊँचाई अधिक है। मन्दिर चारों ओर से चहार दीवारी से घेरे नहीं गये हैं।

जिस तरह से खजुराहो के अधिकांश मन्दिर पूर्वाभिमुख हैं उसी तरह से विभिन्न क्षेत्रों में स्थित अधिकांश मन्दिर भी पूर्वाभिमुख हैं। मन्दिरों के सामान्यतः तीन प्रधान अंग हैं – गर्भगृह, मण्डप और अर्द्धमण्डप। जबकि कुछ मन्दिरों में अंतराल महामण्डप और प्रदक्षिणा पथ का भी निर्माण किया गया है। अर्द्धमण्डप तक पहुंचने के लिये सोपान पथों का निर्माण मिलता है। खजुराहो के अधिकांश मन्दिरों में प्रवेश के लिये जहां एक ही प्रवेश द्वार की योजना है वहीं अन्य क्षेत्रों में स्थित अनेक मन्दिरों में एक से अधिक प्रवेश द्वार निर्मित हैं। व्यास बदौरा के शिव मन्दिर, योगिनीमन्दिर, देवमन्दिर, बंजारी के सूर्यमन्दिर, बट्टसड़ेरी के शिवयोगिनी मन्दिर और छपरा के योगिनी मन्दिर में एक से अधिक प्रवेश द्वारों का निर्माण किया गया है। इन मन्दिरों के मुख्य प्रवेश द्वार अन्य प्रवेश द्वारों की अपेक्षा अधिक बड़े हैं।


खजुराहो का चौंसठ योगिनी मन्दिर

कुछ मन्दिरों के आंतरिक तथा बाह्य भागों को मूर्तियों, लतावल्लरियों, घटपल्लवों, ज्यामितीय आकृतियों और कुछ

को केवल लतावल्लरियों, घटपल्लवों तथा ज्यामितीय आकृतियों से अलंकृत किया गया है। जबकि अनेक मन्दिरों में अलंकरण का अभाव है। वे पूर्णतः सादा निर्मित हैं। व्यास बदौरा के शिव मन्दिर, बंजारी का सूर्य मंदिर, बृजपुरा का शिव मन्दिर, बट्टसड़ेरी का शिव मन्दि, अचट के विष्णु मन्दिर और शंकरपुर का शिव मन्दिर मूर्तियों, लतावल्लरियों, घटपल्लवों तथा ज्यामितीय आकृतियों से अलंकृत हैं। खजुराहो के मन्दिरों की भांति इन मन्दिरों की मूर्तियां भी तत्कालीन मूर्ति कला की श्रेष्ठ उदाहरण कही जा सकती है। ये प्रायः मन्दिरों के बाह्य भागों और प्रवेश द्वारों में अंकित हैं। बंजारी के सूर्य मंदिर, अचट्ट के विष्णु मन्दिर और व्यास बदौरा के शिवमन्दिरों के प्रवेश द्वारों में मिथुन मूर्तियों का अंकन इन मन्दिरों की प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

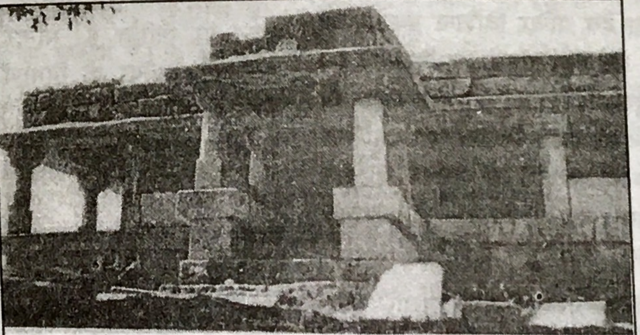


मऊ का प्रतिहारकालीन मन्दिर

मन्दिरों की निर्माण शैली के आधार पर कहा जा सकता है कि यहां मन्दिरों के निर्माण के क्षेत्र में तरह–तरह के प्रयोग किये गये। निर्माण की दृष्टि से यहां के मन्दिरों को पांच प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम प्रकार के मन्दिरों में चौका का शिव मन्दिर और अचट्ट का विष्णुमन्दिर क्रमांक एक है। इन मन्दिरों का कटि भाग तक का निर्माण पाषाण से किया गया था जबकि उसके ऊपर का निर्माण ईंटों का है। चौका के शिव मन्दिर की बाह्य दीवारों में तो प्रस्तर पट्टिकायें खड़ी लगाई गई हैं।

द्वितीय प्रकार के मन्दिरों में छठी बम्होरी का देव मन्दिर और कैंड़ी के दो मन्दिरों को रखा जा सकता है। छठीबम्होरी के एक ही मन्दिर में तीन गर्भगृह निर्मित हैं। इन तीनों गर्भगृहों के सामने एक ही मण्डप है। कैंड़ी के जांगड़ा तालाब की बंधान पर स्थित मंदिर में पांच गर्भगृह हैं। इन पांचों गर्भगृहों के ऊपर अलग अलग शिखर निर्मित हैं। कणाश्म पत्थर से निर्मित कैड़ी का यह पांच गर्भगृहों वाला मन्दिर अपने आप में विशिष्ट प्रकार का है। इसके पांचों गर्भगृह एक ही पंक्ति में हैं। कैंडी में इस मंदिर से मिलता जुलता एक अन्य मन्दिर भी स्थित है।



कैंड़ी का मन्दिर

तृतीय प्रकार के अन्तर्गत व्यास बदौरा के शिव मंदिर हैं। इन दो मन्दिरों का निर्माण एक ही चबूतरे पर एक साथ किया गया है। ये दोनों मंदिर एक जैसे हैं। इनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों दोनों मन्दिरों को एक ही सांचे में ढाल दिया गया हो। इन दोनों मन्दिरों को एक संयुक्त अंतराल से इस तरह से जोड़ा गया है कि एक मन्दिर में प्रवेश करने के बाद बिना बाहर निकले ही दूसरे मन्दिर में प्रवेश किया जा सकता है।

चतुर्थ प्रकार के मंदिर बट्ट सड़ेरी और छपरा के मन्दिर हैं। इन मन्दिरों का निर्माण तालाबों के किनारे किया गया है। इनके तीन ओर तालाब का पानी है। केवल प्रमुख्य प्रवेश द्वारों की ओर ही पानी नहीं है। इन मन्दिरों के प्रतिबिम्ब पानी में बहुतही भव्य दिखाई देते हैं। इन मन्दिरों में मुख्य प्रवेश द्वार के अतिरिक्त तीन–तीन और प्रवेश द्वार हैं। ये प्रवेश द्वार पानी की ओर खुलते हैं। प्रवेश द्वारों से पानी तक पहुंचने के लिये सोपान पथ निर्मित हैं।

पांचवे प्रकार के मन्दिरों में शेष सभी मन्दिर सम्मिलित हैं। इन मंदिरों में से कुछ पंचायतन शैली के हैं।

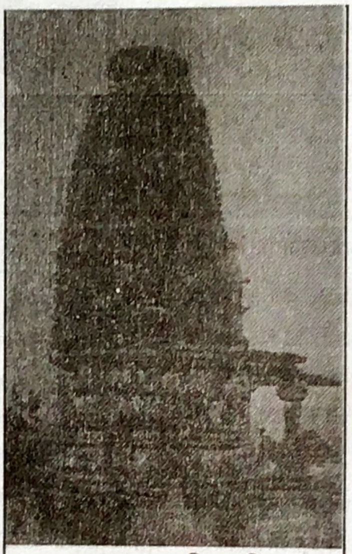
छतरपुर नगर में स्थित सूर्य मन्दिर जो कि मूलतः शिवमन्दिर प्रतीत होता है। कणाश्म से निर्मित है। ऊँचे चबूतरे पर स्थित यह मन्दिर सादा है। इसके सिरदल के मध्य गणेश की मूर्ति का अंकन है। मन्दिर के बाह्य भागों में कुलिकायें निर्मित की गई थी। ये भद्दी हैं। मन्दिर का निर्माण कटि प्रदेश तक किया गया है इसमें शिखर नहीं है।

चौका का शिवमन्दिर मूलतः सपाट छत वाला है। इसके गर्भगृह के ऊपर ईटों का शिखर बाद में निर्मित किया गया प्रतीत होता है। मन्दिर के गर्भगृह की बाहय दीवारों में पाषाण की लम्बी पट्टिकायें खड़ी लगाई गई हैं और प्रत्येक पट्टिका के ऊपरी तथा निचले भाग में घटपल्लवों का अलंकरण है। खड़ी पट्टिकाओं से मंदिर की सुन्दरता में और अधिक वृद्धि हो गई है। यह मन्दिर इस जिले के विवेच्य कालीन स्थापत्य के सुन्दर स्मारकों में से एक है। सपाट छत, ईटों का शिखर, पाषाण की खड़ी पट्टिकाओं से गर्भगृह की बाहरी दीवारों का निर्माण और खड़ी पट्टिकाओं में

घट पल्लवों का अलंकरण इस मंदिर की प्रमुख विशेषतायें हैं।

अचट्ट में विष्णु को समर्पित दो मन्दिरों में से मन्दिर क्रमांक एक का कटि भाग के ऊपर का निर्माण ईटों से किया गया है। मन्दिर में मण्डप की योजना नहीं है। इसका प्रवेश द्वारा सुन्दर है। कटिभाग के ऊपर का ईटों से निर्माण और सिरदल के स्थान पर देहरी के दाहिनी ओर ब्रह्मा सरस्वती और बांयीं ओर शिव तथा उमा की मूर्तियों का ललितासन मुद्रा में निर्माण इस मन्दिर की प्रमुख विशेषतायें हैं। अचट्ट के विष्णु मन्दिर क्रमांक २ का बाह्य भाग नवीन निर्माण के कारण पूर्णत: परिवर्तित हो गया है। मन्दिर के अन्दर का अधिकांश भाग मूलरूप में सुरक्षित है। इसका प्रवेश द्वार स्तम्भ तथा सिरदल मूर्तियों, ज्यामितीय आकृतियों, घट पल्लवों तथा लतावल्लरियों से अलंकृत है। मन्दिर के स्थानीय पुजारी द्वारा मूर्तियों के ऊपर चूने की पुताई कर दी गई है। इससे मूर्तियां खराब हो रही हैं।

दोनों के विवेच्य कालीन विशाल तालाब के किनारे स्थित तीन मन्दिर स्थापत्य कला के सुन्दर उदाहरण हैं। शिव को समर्पित मन्दिर के महामण्डप के स्तम्भ सुदृढ़ तथा सुन्दर हैं। इस मन्दिर में प्रवेश के लिये यद्यपि एक प्रवेश द्वारा की योजना है। किन्तु इसमें तीन अर्द्धमण्डप हैं। दो खुले अर्द्धमण्डपों से विशाल महामण्डप में प्रकाश आने की सुन्दर व्यवस्था है। यहां स्थित योगिनी मन्दिर में कक्षासन गवाक्षों की व्यवस्था है। इसके महामण्डप के हर ओर देव कुलिकायें निर्मित कर उसे ही गर्भगृह का रूप दे दिया गया है। यहां स्थित एक अन्य मन्दिर का गर्भगृह विशिष्ट प्रकार का है। इसके गर्भगृह के तल में पहुंचने के लिये सोपान पथ निर्मित है। यह मन्दिर कुछ ऊँचाई पर स्थित है। मन्दिर तक पहुंचने के लिये सुन्दर सोपान मार्ग बनाया गया है।



ब्रजपुरा का शिवमन्दिर

कणाश्म निर्मित कैड़ी का देव मन्दिर विशिष्ट प्रकार का है। एक मन्दिर में एक ही पंक्ति में पांच गर्भगृहों का निर्माण इस मन्दिर की सबसे बड़ी एवं प्रमुख विशेषता है। इस मन्दिर से लगभग आधा किलोमीटर दूर स्थित इससे मिलता जुलता मन्दिर जीर्ण शीर्ण अवस्था में है। छटी बम्होरी के मन्दिर में तीन गर्भगृहों की योजना है। मन्दिर स्थापत्य के विकास के अध्ययन की दृष्टि से तीनों मन्दिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अपने में अमूल्य पुरातात्विक धरोहर संजाये बंजारी का सूर्य मंदिर अपने मूल रूप में अत्यन्त भव्य रहा होगा। वर्तमान में इस मंदिर का गर्भगृह अंतराल, प्रवेश द्वार और महामण्डप का एक दरवाजा शेष है। मन्दिर विवेच्य कालीन सुन्दर मन्दिरों में से एक है। इस मन्दिर के महामण्डप के सामने की ओर तीन तथा दाहिनी और बांयी ओर दो–दो दरवाजों का निर्माण महामण्डप के स्तम्भों में शिव की पौराणिक कथाओं का भव्य अंकन और प्रवेश द्वार के बायीं ओर छरहरे शरीर वाले दाढ़ी में लम्बे बाल रहित ब्रह्मा की मूर्ति का निर्माण इस मन्दिर की प्रमुख विशेषता है। मन्दिर की बाह्य दीवारों पर निर्मित सुन्दर मूर्तियां मंदिर की शोभा में और अधिक वृद्धि करती हैं। सूर्य की सात अश्वों से युक्त रथ पर आरूढ़ मूर्ति सिरदल में निर्मित है। इसका कुछ भाग टूट गया है। शिव की पौराणिक कथाओं से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण जिस तरह से मन्दिर के स्तम्भों पर किया गया है वैसा इस क्षेत्र के अन्य किसी मंदिर में देखने को नहीं मिलता। शिव की पौराणिक कथाओं का मूर्तियों के रूप में अंकन के अध्ययन की दृष्टि से यह मन्दिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बट्टसड़ेरी का शिवयोगिनी मन्दिर विवेच्य कालीन स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है। तीन ओर से तालाब के पानी से घिरा मन्दिर भव्य दिखाई देता है। इसके दो प्रवेश द्वारों के सोपान तालाब के तल तक पहुंचते हैं। मन्दिर के बाह्य तथा आंतरिक भाग में अनेक देव कुलिकायें निर्मित हैं। इन देवकुलिकाओं और महामण्डप के मध्य में वेदिका को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंदिर तंत्र–मंत्र और योगिनी पूजा का प्रमुख केन्द्र रहा होगा।

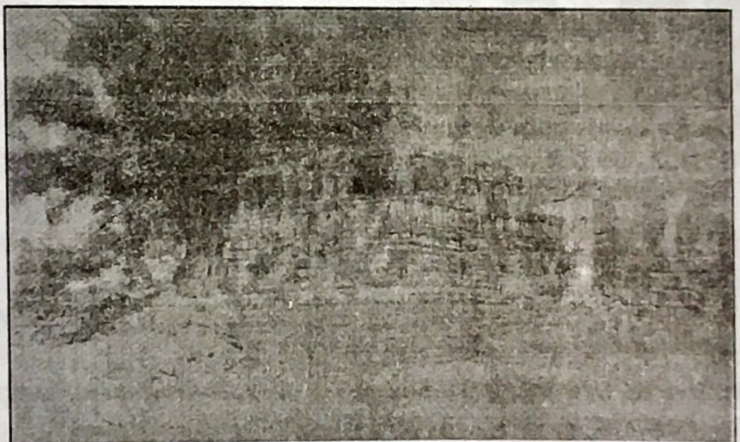
तिंदनी का योगिनी मन्दिर भूमिजा शैली में निर्मित है। एक प्रवेश द्वार और तीन अर्द्धमण्डप, खजुराहो के नन्दी मन्दिर और व्यास बदौरा के शिव मन्दिरों की भांति गुम्बद तथा गुम्बद के आंतरिक भाग में सिंह की मूर्तियों का निर्माण इस मन्दिर की प्रमुख विशेषतायें हैं।

पंचायतन शैली में निर्मित हिड़ोराबारी के शिव मन्दिर का प्रवेश द्वार और गर्भगृह शेष हैं। मूल मन्दिर में महामण्डप की योजना थी। मन्दिर के गर्भगृह की पिछली दीवार में स्थित कुलिका में सहस्त्र लिंग स्थापित हैं। हिड़ोराबारी के समीप ही घटरा का शिव मन्दिर एक चट्टान पर निर्मित है। मन्दिर में अर्द्धमण्डप प्रवेश द्वार और गर्भगृह है। मन्दिर के निर्माण के लिये अलग से चबूतरे का निर्माण नहीं किया गया है। चट्टान को ही चबूतरे का रूप दे दिया गया है।

ग्राम मऊ की पश्चिमोत्तर दिशा में पहाड़ी की ढलान पर स्थित पांच मन्दिर भीमकुण्ड के मन्दिर के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से चार लघु हैं और एक बड़ा मंदिर हैं। छोटे मन्दिरों की अपेक्षा बड़े मन्दिरों की स्थापत्य कला अधिक विकसित है। तल विन्यास की दृष्टि से गर्भगृह अंतराल और अर्द्धमण्डप इस मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। इसका बाह्य भाग विविध आकृतियों से अलंकृत है और शिखर में आमलक की योजना है। इस मन्दिर के सामने स्थित चार लघु मन्दिरों में गर्भगृह और प्रवेश द्वार ही हैं। मऊ ग्राम के मध्य धुबेला संग्रहालय पहुंच मार्ग के बांयी

ओर स्थित नाग मन्दिर निर्माण शैली की दृष्टि से प्रतिहार कालीन है। इसके गर्भगृह का आकार कम है और प्रवेश द्वार भी संकरा है। प्रतिहार कालीन मन्दिरों के स्थापत्य के अध्ययन की दृष्टि से यह मन्दिर महत्वपूर्ण हैं। मऊ के जगतसागर तालाब के किनारे स्थित गणेश मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से मऊ के ही भीमकुण्ड मन्दिर समूह के मुख्य मन्दिर से मिलता है। कणाश्म निर्मित इस मन्दिर का प्रवेश द्वार विशाल है। गणेश मन्दिर के पार्श्व में ही स्थित योगिनी मन्दिर के मूल स्वरूप का अधिकांश भाग नवीन निर्माण के कारण परिवर्तित हो गया है।

ग्राम व्यास बदौरा पहुंचते ही ऐसा प्रतीत होता है कि हम विवेच्य कालीन मन्दिरों की किसी नगरी में आ गये हैं। यहां स्थित मन्दिर दो समूहों में है — पूर्वी समूह और पश्चिमी समूह। पूर्वी समूह के ११ मन्दिरों में से पांच मन्दिर शेष हैं जबकि पश्चिमी समूह के ६ मन्दिरों में से एक मन्दिर बचा है। विशाल तालाब के किनारे स्थित पूर्वी समूह के मन्दिरों के समीप का वातावरण अत्यन्त मनोहारी है। मन्दिरों के पीछे दोनों ओर हरे भरे वृक्षों से आच्छादित पहाड़ियां और विशाल तालाब इनकी शोभा में और अधिक वृद्धि करते हैं। पूर्वी समूह के मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ मन्दिर शिव मन्दिर है। इनकी स्थापत्य कला इस जिले के विवेच्य कालीन स्थापत्य में अनुपम है। एक ही विशाल चबूतरे पर दो मन्दिरों का संयुक्त रूप से निर्माण इस जिले में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। दोनों मन्दिर इतना अधिक एक दूसरे से मिलते हैं इनको देखकर ऐसा लगता है कि मानों दोनों एक ही सांचे में ढाले गये हैं। दोनों के मध्य स्थित संयुक्त अंतराल से एक मंदिर से दूसरे मन्दिर में पहुंचा जा सकता है। मन्दिरों का अलंकरण सोपान पथ, अर्द्धमण्डप, महामण्डप, अंतराल और गर्भगृह दोनों मन्दिरों के एक जैसे हैं।



छपरा का मन्दिर

इस शिव मन्दिरों के समीप ही स्थित योगिनी मन्दिर की कुछ निजी विशेषतायें हैं। इस मन्दिर में मुख्य प्रवेश द्वार के अतिरिक्त तीन और प्रवेश द्वारों का निर्माण किया गया है। बाहरी भाग में स्थित प्रत्येक देव कुलिका तक पहुंचने के लिये सोपान पथों की व्यवस्था है। मन्दिर की उत्तरी दीवार से सटा एक विशाल चबूतरा है। इस चबूतरे के मध्य में यज्ञ वेदिका और चारों कोनों में लघु मन्दिर स्थित है। इस चबूतरे से मन्दिर में पहुंचने के लिये एक छोटा सा प्रवेश द्वार है।

पूर्वी समूह का देव मन्दिर तालाब की बंधान स्थित है। इसकी छत सपाट है। इसका पृष्ठ भाग तालाब की ओर स्थित है। योगिनी मन्दिर और शिव मन्दिरों के मध्य स्थित एक अन्य देव मन्दिर यहां के मन्दिरों में प्राचीनतम प्रतीत होता है।

पश्चिमी समूह का एक मात्र शेष मन्दिर विष्णु को समर्पित है। कणाश्म से निर्मित इस मन्दिर का दरवाजा विशाल है। इसका गर्भगृह विशेष प्रकार का है। गर्भगृह के तल तक पहुंचने के लिये सोपान पथ निर्मित है। गर्भगृह का तल गहराई में हैं। इसमें विशाल मूर्ति स्थापित रही होगी। गर्भगृह के आंतरिक भाग में पिछली दीवार से सटे सोपान पथ निर्मित हैं। ये क्रमशः ऊपर की ओर संकरे होते हुये एक दूसरे से जुड़े हुये हैं।

व्यास बदौरा ग्राम मंदिर स्थापत्य सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न हैं। वहां के मन्दिरों की कुछ अपनी मौलिक विशेषतायें पुरातत्ववेत्ताओं के लिये ही नहीं प्राचीन स्थापत्य में रुचि रखने वाले लोगों को भी आकर्षित कर सकती है। अगर इस स्थल को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित किया जाए तो बड़ी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है। व्यास बदौरा स्थित मन्दिर नष्ट हो रहे हैं, क्योंकि न तो इनके रखरखाव की कोई व्यवस्था है और न ही स्थानीय लोगों का इनके प्रति कोई लगाव है। शिवमंदिरों में बड़ी संख्या में भव्य मूर्तियां लगी हैं। कुछ मूर्तियां मन्दिरों के मलबे में दबी पड़ीं हैं।

बृजपुरा के समीप घने पेड़ों के मध्य स्थित शिव मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से ही नहीं अपितु मूर्ति कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। मन्दिर की बाह्य दीवारों पर कटि भाग तक भव्य मूर्तियां निर्मित हैं। इस मन्दिर का अर्द्धमण्डप अत्यन्त सुन्दर है।

छपरा का योगिनी मन्दिर तीन ओर से तालाब के जल से उसी तरह से घिरा है जैसे कि बट्ट सड़ेरी का योगिनी मन्दिर। इस मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है जबकि तीन लघु द्वार तालाब की ओर खुलते हैं और इनसे सटे सोपान पथ जल तक पहुंचते हैं।

परसेड़ी के दोनों मन्दिरों का स्थापत्य एक जैसा है। गर्भगृह और अर्द्धमण्डप इन दोनों मन्दिरों के प्रमुख अंग हैं।

पठापुर, डहर्रा, नई बस्ती शंकरपुर, बरा, धौरी, ललपुर, बारीगढ़, मह्यावा, दिदवारा, सिजई तथा लुधगांव के मन्दिर भी विवेच्य कालीन स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

— लोकनाथपुरम, सागर रोड
छतरपुर म.प्र. □

बुंदेली के विरोधाभासी : शब्द-युग्म

— सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

मानव–मन की सूक्ष्मतम अभिव्यक्तियों, आचारों–विचारों की विवरणात्मक प्रस्तुति एवं संसाधनों के बारीक से बारीक अन्तरों को स्पष्ट करने की क्षमता रखने वाली बुन्देली भाषा का विराट शब्द भण्डार हमें, आपको व किसी को भी चमत्कृत कर सकता है। लुप्तप्राय बुन्देली शब्दों के संकलन कार्य का श्री गणेश किया तो एकत्र होता चला गया, हो गया विशाल शब्द–भण्डार (लगभग दस हजार शब्दों का) संकलित। क्या क्रियायें, क्या विशेषण, क्या सम्बोधन एक से एक अनुपम और कई तो एकदम मौलिक जैसे — उरँइँयाँ, शब्द–रत्न हाथ लगे हर गोते में। जितनी प्रशस्ति गाऊँ, कम होगी।

इस अंक में प्रस्तुत है विलोम–मूलक, विरोध–आभासी, विरोधाभासी शब्दों की एक लड़ी। रस भरी बुन्देली का आनन्द लेवें। विद्वज्जन कहीं कोई अर्थ–अनर्थ हुआ तो छात्रवत जान क्षमा करेंगे।

अँगीत–पछीत = घर के आगे वाला भाग; जगह — घर में पीछे वाला भाग; भूमि

अँगीतै–पछीतै = घर में आगे–घर में पीछे

अग्गू–पिच्छू = आगे–पीछे

अँगर–पछर = (गाड़ी में) आगे बोझ बढ़ना–पीछे बोझ बढ़ना

अँगाड़ें–पछाड़े = आगे–पीछे, भविष्य में–भूतकाल में।

अँदयारें–उजयारें = अँधेरे में–प्रकाश में

अपुन–तुपुन = हम–तुम

अबेर–सबेर = विलम्ब–जल्दी

अजा–आजी = दादा–दादी, बब्बा–बऊ

अपड़ा–पड़ो = अशिक्षित–शिक्षित

आँवन–जाँवन = आना–जाना

आँन–जाँन = आना–जाना।

आबा–गई = आना–जाना

अलच्छ–लच्छन = दोष–आचरण

आबौ–जैबौ = आना जाना, जन्म–मरण

आसों–पर = इस वर्ष — अगली या पिछली वर्ष

अँदयाइँ–संजावेरा = सुबह–सन्ध्या

अँगाउँ–पछाउँ = आगे–पीछे

अनवन–मेर = बोलचाल न होना (बुराई होना) — मित्रता

अबाई–जवाई = आगमन–प्रस्थान

असगुनया–सगुनया = जिसको देखना अपशकुन हो — जिसको देखना शकुन (अच्छा) हो।

अरोंनों–रौनौ = नमक विहीन — नमक युक्त

अगरी–कमती = अधिक होना–कम होना (मात्रा या तौल में)

अरैवौ–उलछारवौ = रस्सी बांध कोई वस्तु कुयें में उतारना —जल भरे पात्र को पाट से ऊपर लाने की क्रिया।

अतरे–दूसरे/आंतरे–दूसरे = एक दिन के अंतर से दूसरा (द्वितीय दिन)

आँसबौ–रूचबौ = अखरना अच्छा

अचला–अचरा = पुरुषों का कंधे पर डालने वाला वस्त्र–स्त्रियों की साड़ी का अंचल, स्तन

आँयें–गयें = आने से — जाने से (सम्पर्क रखने से)

आँटौ–साँटौ = एक दूसरे की बहिनों से विवाह करना

असुद्द–सुद्द = अशुद्ध, अपवित्र–शुद्ध, पवित्र

असल–नकल = वास्तविक–बनावटी (कृत्रिम)

अनहोंनी–होंनी = कल्पनातीत का घटना–नियति।

असेराक–सेरक = आधा सेर (आठ छटाँक) — सेर भर (पुरानी बाँट प्रणाली)

अतपई–पउवा = दो छटाँक, आधा पाव — पाव भर (चार छटांक)

ओड़ गोड़ = सिर–पैर

आई–गई = आ चुकी हैं — जा चुकी हैं। (कई बार आ जा चुकी)

ओंदौ–सीदौ = उलटा, मुंह के बल = सीधा, पीठ के बल।

अक्तां = पहले से

आरौं–तक्का = दीवाल में सामान रखने का स्थान — दीवाल में छेदनुमा स्थान।

अलफा–अलफी = पुरुषों का कुर्ता–स्त्रियों की कुर्ती।

अँगुरयावौ — बताबौ = उंगली से संकेत करना, बतलाना।

अटकाबौ–बजड़बौ = धीरे से किवाड़ लगाना — जोर से किवाड़ लगाना।

आसरौ–बेआसरें = आश्रय–आश्रयहीन

औदौ–सूकौ = गीला–सूखा।

इनें–उनें = इनको–उनको

इतै–उतै = यहाँ–वहाँ, इधर–उधर

इताँय–उताँय = इधर–उधर, इस ओर–उसओर

इत्तान–उत्तान = इतना–उतना

इकारौ–दुहरौ = दुबला–तन्दुरुस्त (मोटा)

इष्ट–अनिष्ट = जो/जिसे चाहा जाये — जो/जिसे चाहा न जाये।

इमला–इमली = इमली का वृक्ष, इमली का फल

इकतरा–तिजारी = एक दिन छोड़ कर आने वाला ज्वर — हर तीसरे दिन आने वाला ज्वर

ई–ऊ = यह–वह, इस–उस।

ईहाँ–ऊहाँ = इसको–उसको।

ईतराँ–ऊतराँ = इस तरह–उस तरह

ईसें–ऊसें = इससे–उससे

इकलाई–धुतिया = खास अवसरों हेतु साड़ी–रोजाना की धोती

इतराजी–राजी = असहमति–सहमति

उठवौ–बैठवौ = उठना–बैठना (सम्पर्क रखना)

उड़ौनौं–बिछौना = ओढ़ने के वस्त्र–बिछावन

के वस्त्र

ठीं–सुदीं = झूठीं – सही (बातें)

तियाँ–चुँअँना = खपड़ों की पनालियों से गिरती पानी की धार या बूंदे जो कमरे के बाहर गिरें, छप्पर से टपकतीं बूंदे कमरे में भीतर

कतावौ–उकलावौ = ऊबना, अकुलाहट होना

–मेर = बोलचाल बंद होना–दोस्ती

ऊँचौ–नेंचौ = श्रेष्ठ–निकृष्ठ, अच्छा–बुरा

ऊँचे–नेंचे = ऊपर–नीचे

ऊँचा–खाली = ऊँची जगह–नीची जगह

उरजावौ–सुरजाबौ = उलझाना–सुलझाना

ठूठवौ–पीकवौ = जड़ सहित पेड़ सूख जाना– ठूंठ में कोपलें निकलना।

अटा–टकरावौ = पैर में अंगूठे–उंगलियों का रास्तें के पत्थर से टकराना– शरीर या अंग को टकरा जाना

ऐंड़–बेंड = टेढ़े–टाप्टे (पिचके)

ऐरौ–सुनाबौ = आहट लेना – सुनाई देना

एकउअल–दुबउअल = एक पर्त होना– दो पर्त का होना

कहैया–सुनैया = कहने वाला–सुनने वाला

करुए – गुरीरे = कडुवे–मीठे

करौ–कोंरौ/कर्री–कोंरी = कठोर–मुलायम

करें कें/हरां कँ = पूरी ताकत लगाकर कम ताकत से (जोर से, धीरे से)

कनात–दिशा मैंदान = शौचालय–खुले में शौंच जाना

बतावौ–जतावौ = बतलाना, अनुभव कराना हावभाव से

कुल्ला–मुखारी = पानी से मुँह की सफाई करना – दातौन से दाँत जीभ साफ करना

कूदा–फांदी = कूदना–लांघना

करिया–धौरी = कालेरंग की–श्वेत रंग की

कानों–अँदरा = एक आँख फूटी हो वह, दोनों आंखें फूटीं हों वह

कलेवा–व्यारी (व्यालू) = नाश्ता–रात्रि का भोजन

ककरा–पथरा = कंकड़–पत्थर

कन्नारी–अलालिन = खूब काम करने वाली–आलसी, कामचोर

कूतां–तुलाकें = अनुमान से बजन कर क्रय करना – तराजू से तौल पश्चात् क्रय करना

कुतकौ–मुतकौ = कुछ न देना – काफी मात्रा में

कौर–कौरा = ग्रास–सूखी रोटी के टुकड़े

कोनें–सामूं = कोने में–समक्ष

कड़बौ–पिड़वौ = बाहर निकलना – भीतर जाना

कूतखांड–अटकर पेंड़ौ = ज्ञान व अनुभव की अल्पता, अटकल के बल पर

कसतौ–ढिल्लौ = कस रहा हो (छोटा) –ढीलाढाला

कमइया (कमाउ) खाऊउड़ाऊ = धन अर्जित करने वाला–धन को बर्बाद करने वाला

ककरा–पथरा = कंकड़–पत्थर

करया–करयाई = कमर–कमर के पीछे का भाग

काँप–तिल्ली = छाताकी, साइकिल के पहिया की

कन्नारी–अलालन = खूब कार्य करने वाली औरत – आलसी महिला

कटसिर्री–कटान = अर्द्धपागल–झक्की

कुकरा–कूकर = मुर्गा–कुत्ता

कमती–जास्ती = कम होना – अधिक होना

खरी–सीरी = अधिक सेंकी हुई – कम सिकी हुई (कच्ची)

खाँन–पिंयन = खाना–पीना, खाने–पीने के सम्बन्ध होना

खट्टीं–मीठीं = बुरीं–अच्छीं (बातें, यादें)

खिरकी–किवारे = खिड़कियाँ–दरवाजे

खट्टौ–मिट्ठौ = खट्टे स्वाद वाला – मीठे स्वाद वाला

खिरविर्रो – घनो = जिसके बीच–बीच में जगह हो – सघन

खिर्रबिर्र–संजोबौ = अव्यवस्थित/व्यवस्थित करना

खरीं–खोटीं = सच्ची–झूंठी

खरा–खोटा = चोखा (शुद्ध) – दागदार

ख्वावौ–प्याबौ = खिलाना–पिलाना

खैबौ–पीबौ = खाना–पीना (भोजन करना)

खरा–खरी = खरगोश पुरुष/स्त्री

खेलीं–खाँईं = खेल कौ गई बार जिसने खेला हो–कई बार खेलने से अनुभवी (खा चुकी हो)

खस्सी (खसुवा) – मर्दानगी = नपुंसक–पुंसत्वपूर्णता

खीर–महेरी = दूध में चावल उबाल कर मेवा डाल पकाई गई – मठा में चावल उबालकर पकाई गई

खावौ–सैवौ = नपट करना – पालन पोषण भरना

खुंसयाबौ–पुटयावौ = गुस्सा आना–मनाना

खिसयांट–मनहार = गुस्सा–मनाना

खलाई–उँचाई = नीची जगह–ऊँची जगह

खटांद–सडांद = खट्टे होने की गंध, सड़ जाने की गंध

खटास–मिठास = खट्टापन–मीठापन, मधुरता

खटकौ–निर्दन्द = शंका, डर–निश्चिंतता (चिंता होना)

खुरमा–खुरमी (पकवान) = गुड़ मिले आटा के घी/तैल में सिके चौकोर चपटे टुकड़े आटा/मैदा के घी में पके शक्कर में पगे चौकोर चपटे टुकड़े

खपबौ–जी चुराबौ = परिश्रम करना – श्रम से बचना (काम चोरी)

खपन–झूरौ = दलदलनुमा कीचड़–सूखा

खता–खतिया = फोड़ा–फुंसी

गतकौ–धौल थपरिया = मुक्का–थप्पड़

गत–गती = हालत, आचरण, चाल–ढाल

गमयाऊ–शहरू = गाँव की – शहर की

गँमइयाँ–शहरी = गांव का निकासी शहर का निवासी, शहर सम्बंधी बात या वस्तु।

गुपत–जगजाहर = जिसे छिपाया गया हो – जिसे सभी जानते हों।

गोली–गट्टा = दवा की छोटी गोलियाँ/बड़ी गोलियां

गुलगुलाबौ–रुआबौ = हँसाना (गुदगुदी करके) रुलाना

गिलयाबौ–मांड़वौ = कड़े आटा को पानी लगा नरम करना – पानी डालकर आटा सानना

गरेंट–अदभरी = गले तक भरी–आधी भरी।

गाड़ी–घोड़ा = सवारी गाड़ी–सवारी वाला घोड़ा (संयुक्तार्थ–सवारी का साधन)

गरमावौ–सिरावौ = गर्म करना–ठंडा करना
गरओ–हरओ = बजनीकाय–कमवजन का
गदा (गधा) – हुश्यार = मूर्ख–चतुर
गुलगुला–मंगौरा = आटा–गुड़ की पकोड़ी, पिसी दाल (पिठी) की पकौड़ी/पकौड़े
गैरौ – ऊधरौ = गहरा–उथला
गानों–गुरिया = आभूषण–माला जिसमें गुरिये हों
गोड़–मूंड़ = पैर–सिर
गुर्र–गुर्राबौ = मनस्थ बैर – बड़बड़ाना (क्रोध करना)
गुर–गुरयाई = शिक्षा, गुड़सूत्र–मिठाई
गुरा गुरा–दियांय (दुयाँय) = अंगों के जोड़ स्थल – देह
गमरोंई–महाजनी = गँवारपन–सुसंस्कृत
गुदगुदारौ – चंदा घाइँ = चेचक या अन्य चिन्हों से भरा चेहरा – चंद्रमा जैसा सुन्दर
घर – बखरी = कमरा–पूर्ण मकान
घर–दोर = भीतर से – बाहर तक
घरके–घरसें = पति, पत्नी
घरा–आरा = वस्तु का नियत स्थान, दीवाल में बना आला
घरौट – परौस = घर के सम्बन्ध–पड़ोस
घैला–मटका = (दोनों मिट्टी के बर्तन) संकरे मुह का कलश आकार का बर्तन बड़े मुंह का बड़े पेटे का बर्तन
घैरे–फट्टे = झूठे बोल–झूठी क्रियायें
घरीक–घंटाक = एक धड़ी तक–एक घंटे तक (ढाई घरी का एक घंटा)
घरी–घंटा = घड़ी–बजे की सूचना वाला घंटा, घंटा भर का समय
घूंसा–ठूंसा = मुट्ठी बाँध छिंगुरी के पास के स्थान से मारना–मुट्ठी की उंगलियों से मारना
घामौं–जुँदइया = धूप–चांदनी
घंटी–गड़ई = लघु लोटा – लोटा
घेर–घौर = घेरे की लम्बाई–केलों का पूर्ण गुच्छा जो पेड़ में लगता है।
घनो–बिरौं = सघन–दूरदूर
घटोतरी–बढ़ोतरी = क्रमशः घटता जाना–क्रमशः बढ़ते जाना
घुड़ला–घुल्ला = पीतल या लकड़ी से बना घोड़ा – शक्कर के बने विभिन्न आकार
घलोय–मरामल्ल = लाठियाँ बंदूक चलना – मारपीट होना।
घूम–घुमारौ = मोड़ – चक्करदार
घोकबो–विसराबौ = याद करना – भूलना
घटिया–बढ़िया = निम्न प्रकृति का – उत्तम गुणों से मुक्त
घामों–छाँयरौ = धूप–छाँह
घाट–घटोइया = तट–प्रेत
घाव–घत्ता = चोट से कटाफटा अंग स्थल – बार बार की रगड़ का निशान व स्थान
घरु–पराई = घर की (निजी) – दूसरों की
चिनार–अनचिनार = परिचित–अपरिचित
चौंड़ों–चकरौ = सकरौ (चौड़ाई या संकीर्णयुक्त)
चोट्टा–चौट्टू = चोर पुरुष/स्त्री
चैंन–बेचैंन = अराम/व्याकुल
चउअर– अठउअर = चार पर्त का–आठ पर्त का।
च्योंटिया–बकटौ = उंगलियों में दो नाखूनों से त्वचा नोंचना – पांचों उंगलियों में नाखनों से नोंचना।
चनकट–झापड़ा = थप्पड़–तमाचा
चल्लीं–चल्लां = आटा आदि चालने की छोटे – बड़े आकार चलना (छजना) रेत आदि चालने में
चिरइ–चिरवा = चिड़िया–चिड़ा (पुरुष)
चमीट–दोंची = वस्तु के जोड़ में त्वचा का दब जाना/गाड़ी या अचानक धचके में पड़ना सवारी को कमर में नीचे होकर लगना
चानें–नइँचानें = चाहिए–नहीं चाहिए।
चित्त–फद्द = पीठ के बल होना – पेट के बल होना
चोखौ–दगैल = शुद्ध–मिलावटी (दागदार)
चीं चपाट = सांतयाई = हल्लागुल्ला (शोर) शांति
चमीटवौ = पकड़ तगड़ी करना
दौंचबौ = नीचे लिटा कर ऊपर चढ़ शक्तिभर दबाना
चीं–जीतबौ = हार जाना–जीत जाना
चपिया–चुकरिया = मिट्टी निर्मित दूध–दही रखने की चौंड़े मुह की छोटी गागर/मिट्टी निर्मित दूध–दही रखने की मायने की घंटी के आकार की डबुलिया/घी रखने की
चिरी–फटी = कागज या कपड़ा को बीच से दो भाग कागज या वस्त्र के कई भाग हों
चीर–फार = चीरना–फाड़ना (ऑपरेशन के अर्थ में)
चेंकवौ–जरवौ = अंगारे या तप्त वस्तु से क्षण मात्र का स्पर्श/त्वचा झुलस जाना
छल्ला–बिछिया = हाथों की उंगली के आभूषण–पैरों की उंगली के आभूषण
छिनार–पतिब्रता = कई पुरुषों से संबंध रखने वाली स्त्री – पति परायणा पत्नी
छोंकबौ–बगार बौ (बघारबौ) = सब्जी को मसालों युक्त कड़ाही आदि में तलना –बनी दालों को जीरा, हींग, लौंग, आदि का तड़का लगाना
छबला–टुकनियां = बड़ा टोकरा/टोकरी
छुबवौ–बरकबौ = स्पर्श होना, स्पर्श से बचना
छिमा–डंड = क्षमा–दण्ड
छिपी–छिपिन = दर्जी–दर्जी की पत्नी
छूत–अछूत = छूने योग्य, अश्पर्श्य (जो छूने योग्य न हो)
छुतया–सपरें खोरें = छूत का होना/छूने योग्य न होना – स्नानादि करके पवित्र हो, छूने योग्य
छी–छी/वाह–वाह = निंदा करना/प्रशंसा करना
छींकबौ/पादवौ = (अपशकुन करना) छींकना/ अपान वायु खारिज करना
छीप–छिपनी = शीप (जिसमें मोती होता है)/छेददार शीप जो छिलनी के रूप में प्रयुक्त होती है।
छीद–छीदा = एक प्रेत जो रात में मार्ग भुला देता है/दोषारोपण
जस–अपजस = यश,कीर्ति,नाम होना – बदनामी

जनीं–मुंसेलू = स्त्री–पुरुष
जाँ–ताँ = जहाँ–तहाँ
जनीं–जनें = औरतें–पुरुष, घरवाली–घरवाला
जमबौ–उड़बौ = बीज का अंकुरित होना, बीज का न जमना
जमा–खर्च = पूंजी–व्यय, खाते में – नामें में (लिखना)
जाँतौ–जतरिया = (पहले चलन में रहे) गेहूँ पीसने का पत्थर के विशेष आकृति के पाटों वाला घरू साधन – दालों को दलने की दो पाटों वाला घरू साधन।
जुड़ी–ताप = ठंडी का बुखार/सामान्य बुखार, निमौनियां, ज्वर
जड़कारौ – जेठमास = शीतऋतु/ग्रीष्मऋतु
जाड़ौ–गरमी = जाड़े/ठंड के दिन, गर्मियों के दिन
जादां–थोरौ = अधिक–कम
जिमावौ–जेंवौ = भोजन कराना–भोजन करना
जगर मगर–अंदर खुक्क = जगमगाहट से भरा/अंधकार में डूबा हुआ
जिया–छुहौ = बड़ी बहिन –छोटी बहिन
जेंबौ–अचेबौ = भोजन करना – हाथ धोना
जोग–विजोग = जुड़ना (मिलना)–बिछुड़ना (बिछोह)
जोरबो–घटाबौ = जोड़ करना – बाकी निकालना
ज्योरा – ज्योरिया = रस्सा–चारपाई बुन्ने की रस्सी
जैसें–तैसें = इस प्रकार से – उस प्रकार सें (सम्मिलित अर्थ–किसी भी प्रकार से)
जोग–कुजोग = अच्छा योग, संयोग, अच्छा समय–बुरा समय
जुड़े–ताते = ठंडे–गर्म गर्म, पुराने–नये (संबंधों के संदर्भ में)
जात–कुजात = ऊँची जाति–नीची जातियां, जाति में शापित–जाति में च्युत
गिंस – सीदौ = बिना पकी भोजन सामग्री काफी मात्रा में भोज हेतु बिना पकी सामग्री एक व्यक्ति के लिए पंडित को दान देने को।
जंगला–खिरकी = बगैर किवड़िया की खिड़की–किवड़ियादार खिड़की
जबरा–जबरू = जबरदस्ती करने वाला पुरुष/जबरदस्ती करने वाली महिला
जबर–दूबरौ = मोटा–ताजा/दुबला–पतला
जबरैं–राजीसें (खुसिंयन) = जोर और जबरदस्ती के बल पर – सहमति (स्वीकृति सहित) के बल पर
जेंवनार–उपास = पंगत (भोज) – भोजन ग्रहण न करना/उपवास
जोरसें–हरईहराँ = शक्ति के साथ (तेजी से) धीरे–धीरे (ऊँची आवाज में–धीरे से)
जानमानकें–अजानें = जानबूझकर–अनजाने में
झुरपटौ–झुलीपरें = सुबह का समय, शाम का समय
झुण्ड बिदार पटियां पारें = बाल बिखेरे –बाल संवारे हुए
भण्डार–झार = जोर से आग
झण्डार–झार = जोर से आग से जलना/आंच
झाड़े–झांड़ौ = सौच को जाना–चुराना
झरां–झारौ = सबके सब (सभी) एक भी शेष नहीं
झट्टई–झेल = शीघ्रता–देरी
झड़ास–मुतास = टट्टी करने की इच्छा/मूत्र विसर्जन करने की इच्छा
झंझरी–झंझरा = छेदों वाली पत्थर की जाली–छोटी बड़ी जाली
झरप–परदा = चिलमन–जो पारदर्शी न हो और जिसमें से दिखे नहीं
झेलझाल–दन्नदीना = देर का होना–तुरन्त
झामझड़प – झाड़ना = डरवाना/भयभीत करना–डांट फटकार करना
टींका–टिकली = तिलक–टिकली/बूंदा
टींका–भांवर = द्वारचार, पाणिग्रहण
टींका–पटौ = तिलक करना–भेंट में वस्त्र देना
टपरा–टपरिया = खम्बों पर बना सभी ओर खुला छप्पर–अस्थायी आवास
टोटौ–बड़त=घाटा/कमी – वृद्धि/अधिकता
टकासौ–मौदेखी = बिना संकोच लिहाज के–सामने वाले के अनुसार चाहे रूप में कहना करना
टूंका–सबरी = टुकड़ा/अंश – सम्पूर्ण
टुकयाबौ–चोट मारबौ = धीरेधीरे धक्का मारना/ठोकर देना–करारी ठोकर या धक्का देना
टुलकौ–छिद्दौ = छोटा छेद – बड़ा छेद
टिकना–टिकबौ = ठहरना–लगातार रहना/करना
टुटपुंजया–धनीमानी = कमपूंजी वाला–अमीर
टुटझन्टू–मदलवा = बहुत दुर्बल–बहुत मोटा ताजा
टंच–ढिल्लमुतान = तैयार–ढीलाढाला
टुंगाबौ–गहाबौ = थोड़ा थोड़ा देना – पूर्ण सौंपना
टिरौआ–बुलौआ = भोजनार्थ बुलावा भेजना–किसी कार्य हेतु किसी से बुलाया जाना
ठक्काठाई–ठकुरसुहाती/लागलपेटी/लिहाजू = निःसंकोच/सहीसही –संकोचपूर्ण/ मुंहदेखी/ स्वार्थपूर्ण/अपनी ओर से कुछ जोड़कर कहना
ठुकबौ–ठोकबौ = मारखाना–मारनापीटना
ठडूला–मालपुआ = दालों के आटा की पूड़ी(मिष्ठान) – आटा व गुड़ के घोल को तैया में सेंकी पूड़ी (पकवान)
ठांसबौ–ठूसबौ = दबादबा कर दबाना – बलपूर्वक भरना/थोड़ी जगह में अधिक भरना
ठेंसा–ठूसी = दबावदेकर भरना/डालना–सामर्थय से अधिक भरना
ठोल–ढुक्क = पैर के पंजे के अग्र भाग से ठोकर मारना – पैर में पंजे के बगल वाले भाग से जोर से किसी को मारना
ठांव–कुठांव = सही स्थान–गलत स्थान
ढीलढाल–हड़वरी = देर–शीघ्रता
ढूंढ़ा–सिंगया = बिना सींगपूंछ का – बड़ेबड़े सींगों वाला
डम्पलाट–ठिंगु = विशालकाय–छोटे कद का

डील—डौल = शरीर—आचरण

डौल—डाल = माल मिलने की आशा— मलविर्सजन हेतु जाने का संकेत

डिंगरा—डिंगरिया = बड़ा टुकड़ा जैसे गुड़ का — छोटा टुकड़ा जैसा नमक का

डंडा—डंडी = तीन हाथ का बांस का टुकड़ा — छड़ी या तराजू की डंडी

डुकरा—डुकरिया = वृद्ध—वृद्धा

डँगरा—कलींदौ = तरबूज—खरबूज

डगरमगर—ठैरी = चलायमान—स्थिर

डोला—पालकी = कहारों द्वारा कंधों पर ढोने वाली/परदा वाली स्त्री की चारों ओर से बन्द पालकी — दूल्हा को या रावराजा को कहारों द्वारा कंधों पर ढोने वाली आसन युक्त साधन (चलन लगभग समाप्त)

डँड़ेला—साजौ = कड़ाही में सेकने के बाद बचा तेल — प्रयुक्त न हुआ तेल

ढिलयाबौ—कसबौ = ढीला करना — चुस्त करना

ढँड़क—चढ़ाई = ढालदार मार्ग—ऊंचाई की ओर का मार्ग

ढलाचला—चालढाल = जीवन यापन — आचरण

ढड़कपैला = कभी इस पाली, कभी उस पाली में जाने वाला

तनक—मनक = थोड़ा—मनचाहा

तनतन—खूबखूब = थोड़ा थोड़ा — गरमागरम ठंडा

ताती—बासी = ताजी गत समय की बीते कल की बनी

ताजौ—बासौ = अभी अभी का — बीते कल का

तर ऊपर/तरा ऊपर = नीचे ऊपर — संयुक्त अर्थ एक के बाद एक लगातार होना

तिगड्डा—चौगड्डा = तीन मार्गो का संगम स्थल—चार मार्गो का संगम स्थल

तींती—सूकी = गीली—सूखी

तरांतरां—एकतरां = तरह तरह के — एक तरह से

तलफ—तलफना = वस्तु के भोग की इच्छा — दुख या दर्द की तीव्रता से वेहाल होना

थार—थरिया = कोपरनुमा बड़ी थाली—भोजन करने की थाली

थोरौ—बिलात/कुल्ल = थोड़ा—काफी मात्रा में

थुड्डू—थूथू = निन्दित होना—अपमानित होना

दिनाऊ—नऔ = पुराना—नया

दई—दानव = देवता—राक्षस

दई—लई = दी—ली

दुकबौ—निकरबौ = छिपना—निकलना

दुदार—उसरिया = दूध देने वाली — जो अभी गाभिन न हुयी हो

दुक्ख—सुक्ख = दुख—सुख

दूला—दुलैन = दुल्हा/वर — दुल्हन/वधु

दौंदरया — सीदरौ/सांतौ = ऊधमी— सीधासादा

दूदन—पूतन (फरौ) = दूध से — पूत से (भरी रहो)

दांय — सांतई = ऊधम — शांति

दांतकाटी—मेरी = गहरीमित्रता—सामान्य मित्रता

दुखिया—सुखिया = दुखी—सुख से पूर्ण

द्वारौ—द्वारिया = बड़ा द्वार—छोटा द्वार

दौल्ला—दौरिया = बांस की खपच्चियों की सघन बुनाई वाली मजबूत घेरे की टोकनी तसलानुमा— बांस की सीकों की बुनी दौल्ला के आकार की टोकरी

दैबो—लैबो = देना—लेना

दैनों—देनगी = ऋण — विवाह में वर पक्ष द्वारा व्ययों का भुगतान

दरस — परस = दरशन/देखने को मिलना — स्पर्श/छूने को मिलना

दायनें—डेरे = दाहिनी ओर—बांयी ओर

दादरे—सोहरे = खुशी भरे उत्सव के गीत — जन्मोत्सव के गीत

दान—दायजौ = पुण्य अर्जन हेतु धन देना — विवाह में दी गयी वस्तुएं

दमरी—छिदाम = पुराने पैसे का आंठवां भाग वाला सिक्का — पुराने पैसे का आधा मूल्य का सिक्का

दब्बू—दमंग = डरपोंक—उत्साहभरा/निडर

दिया—देउलिया = माटी का दीपक — माटी के छोटे—छोटे दीपक

दरद—पीर = दर्द — पीड़ा

दवा — दारू = औषधि — मदिरा

दारक — घरीक = क्षण भर — घरी भर

दूसरां—तीसरां = दूसरी बार—तीसरी बार

दिसावरी—देसू = दूसरे देश की—उसी क्षेत्र की

दिखउअल — असल = दिखावटी—असली

दिनछित—दिनउएँ = संध्या/दिन रहते — भोर/दिन उगते

धन्नासेठ—दरिद्र = अमीर—गरीब

धौल—थपरिया = हल्का तमाचा — थपकीनुमा मारना

धना—धनी = पत्नि—पति

धोती—अगौंछी = परदनियां—तौलिया

नुनखरौ—गुरीरौ = नमकीन स्वाद वाला—मीठे स्वाद वाला

नैबो—हांकबौ = बैलों के गरदन पर जुआरी रख पट्टा बांधना — चलाना

नरवा—नरइया = नाला—नाली

नांय—मांय = इधर—उधर

न्यारौ—सोंज = बंटवारे के बाद अलग — सामिलात/इकट्ठे रहना

निगौना—चना = कच्चे हरे चना—सूखे चना

निचाट—मौं देखी = सत्यसत्य/यथारूप — रुख देखकर कहना

निंगबौ—धौरबौ = चलना—दौड़ना

नीचट—पुलखर (पोली) = ठोस— जिसमें पोल हो

निकासू—मौं चायनों = विवाह हेतु वर का घर से निकालते समय महिलाओं से टीका कराकर प्रस्थान करना — विवाह बाद वधु का घर पर प्रथम आगमन के समय महिलाओं द्वारा मुंह देखना व भेंट देना।

नन्नौ—बड़ौ = कम उम्र का बालक — बड़ी उम्र का बालक

नुंगरौ—लांगर = चूनर—लंहगा

नौरा—नौरिया = नेवला—नेवली

(शेष अगले अंक में)

—शुक्लाना मुहल्ला, छतरपुर □

दुर्गाउत्सव के अवसर पर बुन्देली लोकगीतों, लोकनृत्यों एवं बुन्देली कवि सम्मेलन का सफल आयोजन

— हशमत छतरपुरी एवं अनुराग खरे

विगत ५ वर्षों से बुन्देली विकास संस्थान बसारी जिला छतरपुर के मुख्य संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्ना राजा' के अथक एवं सार्थक प्रयासों से प्रति वर्ष बुन्देली उत्सव के पश्चात् क्वांर (आश्विन) मास की नवरात्रि के पावन अवसर पर प्रदेश के प्रथम पर्यटक ग्राम बसारी में बुन्देली संस्कृति को प्रोत्साहित करने हेतु तीन दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन होता है। इसमें बुन्देली लोकगीतों, लोकनृत्यों एवं बुन्देली रचनाधर्मियों की रचनाओं को प्रस्तुत करने हेतु कार्यक्रम आयोजित होते हैं। इस वर्ष भी ९ से ११ अक्टूबर २००२ तक यह त्रिदिवसीय आयोजन सम्पन्न हुआ।

इस तीन दिवसीय सांस्कृतिक आयोजन की प्रथम निशा में बुन्देली के विख्यात लोकगीत कलाकार श्री देशराज पटैरिया एवं उनके साथियों ने पूरी रात्रि अपनी कला से जनता का मन मोह लिया। उन्होंने जहां एक ओर श्रृंगार प्रधान रचनाओं को प्रस्तुत किया तो वहीं दूसरी ओर भक्ति और ओज की रचनाएं प्रस्तुत कर बुन्देली माटी की महक से लोगों को परिचित कराया। १० अक्टूबर की दूसरी रात्रि को बुन्देली कलाकारों के द्वारा आकर्षक लोकनृत्यों की प्रस्तुति की गयी। जिसको दर्शकों ने काफी सराहा।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के इस तीन दिवसीय त्रिवेणी की अंतिम निशा बुन्देली कवियों को समर्पित थी। इस अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में पूरे बुन्देलखण्ड अंचल से बुन्देली के श्रेष्ठ कवि पधारे। इस कवि सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में जिले के सम्वेदनशील व लोकप्रिय कलेक्टर श्री रामानन्द शुक्ल एवं अध्यक्ष के रूप में जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री जगदीश शुक्ल उपस्थित थे। अतिथियों एवं कवियों का स्वागत समिति पदाधिकारियों ने किया। तदोपरान्त बुन्देली की रचनाओं के माध्यम से अपना विशिष्ट साहित्यिक अवदान प्रदत्त करने वाले कवियों को सम्मानित किया गया। इसमें प्रथम रीति परम्परा के प्रसिद्ध कवि पंडित प्रमोद बड़ामलहरा तथा बुन्देली कविताओं के माध्यम से जन अभिव्यक्ति देने वाले श्री हरगोविन्द विश्व सागर को उनकी साहित्यिक सेवाओं को देखते हुए शाल, श्रीफल तथा सम्मान पत्र से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर आयोजन से जुड़े हशमत छतरपुरी को भी सार्थक सेवाओं हेतु सम्मानित किया गया। इसके पश्चात् कलेक्टर श्री रामानन्द शुक्ल ने अपनी स्वरचित कविताओं का पाठ कर लोगों को मनमुग्ध कर दिया। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से आम आदमी की पीड़ाओं को रेखांकित करते हुए चिन्तन हेतु विवश किया। इस कवि सम्मेलन में पधारे प्रमुख कवियों में पंडित प्रमोद कवि बड़ामलहरा श्री जयेन्द्र सिंह पृथ्वीपुर, श्री हरगोविन्द 'विश्व' सागर, श्री कृपाराम 'अचानक' बम्होरी, श्री रतिभान तिवारी 'कंज' पृथ्वीपुर, सुश्री प्रेमलता 'नीलम' दमोह, श्री साकेत सुमन चतुर्वेदी झांसी, श्री विमल जैन बमीठा, श्री रमेश 'शेष' चन्द्रनगर, श्री डी.पी. खरे 'पारदर्शी' झांसी, श्री नवल किशोर सोनी 'मायूस', श्री रतन लाल नामदेव 'रत्नेश' छतरपुर एवं सुश्री प्रभा विधु छतरपुर आदि प्रमुख हैं। इस बुन्देली कवि सम्मेलन का सफल संचालन बुन्देली के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. अवध किशोर जड़िया हरपालपुर ने किया।

इस पूरे कार्यक्रम में अंचल के हजारों लोगों ने उपस्थित होकर आनन्द उठाया।

— संकट मोचन कॉलोनी, छतरपुर म.प्र. □

गीत

— डॉ. हरिसिंह घोष

न जाने का का होन लगो, आगलगी ई दुनियां में
अब जी ऊबन लगो लगत कउं रइये दूर अकेले में।।

हर रोज अंधेरे की छाया
सूरज की किरनें बहकाबै,
न रात पतौ न दिन निकरै,
न कोउ काऊ सें कछु काबै,
बदरा की ओर लुको चंदा,
सूरज पर गओ झमेले में।। अब जी.......।।

सरग नसैनी लगवे कौ
हो हल्ला हो रओ गली–गली,
प्यासे पनघट की चर्चा तक,
भला बता दो कबै चली,
श्रद्धा सिसकै उपदेसन में,
गंगा विकबै धेले में।। अब जी.......।।

किरनन कौ पंच्यात फैसला,
दुष्ट अंधेरे खां कनने है,
असल गड़ैंता की करतूतें,
भइया अजगर खां सुनने हैं,
तुम की सें का कात, रान दो,
पिस जैहौ ई रेले में।। अब जी.......।।

— घोषयाना, छतरपुर □

उतसौ में बढ़ चढ़कें भाग लेव

— श्रीमती विजयश्री बुन्देला

> *बुन्देली उत्सव के संस्थापक, संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा' महाराज छत्रसाल के वंशज होने की उस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं, जो महाराज छत्रसाल ने महाकवि भूषण की पालकी को स्वयं कंधा देकर कायम की थी। लोककलाओं तथा लोककलाकारों के उत्थान के साथ ही समाज से विलुप्त होती सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण व संवर्धन की चिन्ता में सतत् डूबे रहने वाले श्री 'मुन्नाराजा' ने बुन्देली उत्सव का एक सपना संजोया था, जो उनकी कर्मनिष्ठता और अटूट दृढ़ संकल्प से साकार हो रहा है। इस उत्सव के बारे में उनकी सहधर्मिणी संवेदनशील कवयित्री श्रीमती विजयश्री बुन्देला के विचार निश्चित तौर पर महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने बेबाकी से प्रस्तुत करते हुए समाज के सभी लोगों से इस उत्सव में सक्रिय भागीदारी का अनुरोध किया है।*
>
> *—सम्पादक*

कछू करबे की भावना जब मन में होत है, तबई ऐंसें 'उतसौ' की शुरुआत होत है। १९८४ में जब हम ब्याह के बसारी आय ते, तब से आज लो अपने 'साबजी' के बारे में जा बात हमने बहुतई अच्छे से जानी है, जो कछू 'ठान लैबे' पूरो करतई है। ई बुन्देली उतसौ की जौन रूप रेखा इनके दिल दिमाग में बसी ती बा आज देखबे खां मिल रई है। होरी की फाग, दिवाली की दिवारी, ढिमरयाई, कछयाई और 'राई' के छुटपुट आयोजन तो गढ़ी में आम तरे होतई रात ते जो हमें बहुतई बुरय भी लगत ते। सही बात कहबें में हमें कौनऊ संकोच भी नइयाँ। अब भी ऐसे आयोजन खां बड़ो रूप देंकें करवाबे की बात इन्ने सोची, हमें कछू समझावें की कोशिश करी, हमने हमेशा 'फालतू प्रोग्राम' कहकें इनकी बातई नई सुनी। घरई सें कछू प्रोत्साहन न मिलवे के बाद भी १९९६ में जब ई आयोजन की शुरुआत भई, आम लोगन के लाने, तब जौ उतसौ तीन दिना को हतो। शुरुआती टेंम में कार्यक्रम खां व्यवस्थित करबे की पूरी कोशिश के बाद भी, कमियां कुछ रई आईं। गैर सरकारी आयोजन होबे की वजह सें पूरी जिम्मेवारी आयोजन कर्तन पै रही। जुड़े भये लोगन नें तब भी मदद करी ती, आज भी कर रय हैं। ऊ समय व्यवस्थित कार्यक्रम न होबे की वजह से इनकी ई उतसौ के लाने हैरानी परेशानी देखी, खावो–पीवो सब भूल कें दिन–रात एक करवो देखो, साथ ही कार्यक्रम खां देखो तो हमें पहली बार जौ लगो कै बात में दम है। दिन के कार्यक्रम पूरे हो न पात ते, रात के प्रोग्राम की बारी आ जात ती, दिन भर के थके होबे के बाद, अतिथियन के स्वागत के लाने फिर तैयारी, देर रात तक प्रोग्राम चलें, सो भी न पात ते, खबर आ जात ती, फलां मंत्री, फलां विध ाायक उदघाटन खां आ रये हैं भागी–भागी कौ सब मिला कें पहले साल को उतसौ रहो। हर साल की कमियन सें सीख लैकें उनें दूर करबे की कोशिश भी जारी रई। ऐई वजह से जो कार्यक्रम हर साल नई राह लेत गऔ। बसारी गाँव की जनता के लानें तो जैसे हफ्ता भर को त्यौहार आय। मेहनत मजूरी बाले भी काम छोड़ कें जांगन तांगन व्यवस्था संभालें रात हैं कछू बिलुर न जाय, बसारी को नांव न खराब हो जाय ईसें जैसे घरई कौ कौनऊँ उतसौ होय, ऐसौ माहौल सो बन जात है, लोग प्राण प्रण से जुटे रात है। सोबे जागबे को कौनऊ टेम नई रात।

आज बुन्देली उत्सव के नाम सेंई जो एक छवि मन में उकरत है व बड़ी साफ–सुथरी और बुन्देली लोक कलाअन से सजे एक ऐसे मंच की होत है। जहां ऐसी सबरी बुन्देली लोक कलाअन खों इकट्ठों करबें को सार्थक प्रयास होत दिखात है, जो हमें बिसर सी चली ती। अपनी क्षेत्रीयता खां भी बनायें रखने की जा भावना आज बहुत कम लोगन में रै गई है, ई भावना खां जिन्दा रखबे को जौ प्रयास एक अच्छो संकेत है। जौन बुन्देली प्रतिभाएं छिपी भई तीं बे उजागर होत जा रई है, आयोजन के माध्यम सें ऐसी प्रतिभाआन खां एक उपयुक्त मंच मिलौ है, जिनमें कछु करबे कौ सामर्थ्य तो दिखात है, पर उनें अबैलौ कौनऊँ उपयुक्त अवसर न मिल पाओ तो। ऐसौ नईयां कि लोगन के मन में बुन्देली लोक विधाअन के लाने सम्मान की भावना न होय। आयोजन के पैले साल को दृश्य कछु तो दूसरें साल को दृश्य कछु, मतलब इन छह सालन में ई उतसौ को लगातार निखरत रूप सामने आ रऔ है, जनमानस ई के लाने पैले सें तैयारी करन लगो है, एक झिझक जो स्वयं बुन्देली कलाकारन के मन में हती ब जाती रई है। जो उतसौ उनकौ अपनो उतसौ है, जा भावना बलवती भई है। जुरबे बारे लोग भी ऐसे जुरे जो प्रोग्राम के लाने समय सुझाव सब कछू करबे खां तैयार मिले। पी.डब्ल्यू.डी. के आठिया जी, अजमत भाई, दिलीप शुक्ला जी, डॉ. पिपरसानियां, डॉ. जगत सिंह, डॉ. बहादुर सिंह परमार, कलाकार रामकुमार सोनी, टिकरी के वर्मा जी, भारतकृष्णदेव सिंह बुन्देला, जीतेन्द्र सिंह 'जित्तू', और भी ऐसे कई नाम हैं जिने हम नाम सें जानत भी नईयां, इन्ने तब ई उतसौ के लाने दिन रात एक करें हैं। सब ई उतसौ के बारे में कोऊ कछू जानतई न हतो। जे कछू शुरू के ऐसे मजबूत स्तंभ है जिनके सहारे ई उतसौ को खाका खींचो गओ तो। १९९७ से लेंके आज अब २००३ में सातौ बुन्देली उतसौ मनावे की बेरा हो आई है, देखबे वालन खों ई को नित निखरत रूप देखवें खां मिल रओ है। अपेक्षायें लोगन की ज्यादा होती हैं, सहयोग कम।

ई बुन्देली धरा में ऊँगली में गिनबे लायक लोग ही बचे हैं, जो सहयोग की भावना लेंके चले हों। अलग बुन्देलखण्ड राज्य की मांग करबें में तो आगें हैं, लेकिन अपनी संस्कृति की रक्षा के लानें कोऊ कछू करत है तो पूरी जिम्मेवारी ओई के मूड़े

है। छिदाम न लगे संस्कृति की रक्षा हो जाये, जा भावना मन से हटावे की जरूरत है। समाज संस्कृति के लाने कोऊ भी कछू करत है, तो सम्बन्धितजन खां खुदई आंगे बड़कें सहयोग करो चाईये। सहयोग भी केवल पईसन सेंई नई होत। आप आकें इत्ते बड़े कार्यक्रम में कछू भी अपने सहुलियत की जिम्मेवारी लै सकत हो, स्वागत–सत्कार, खेल–कूँद, रात्रि के सांस्कृतिक प्रोग्राम का नई होत......। कछु लोग तो सातँ दिना में पिर से जात है। ई बुन्देली धरा केई कछू लोगन की अवाई ईसें नई होत है काय से उनें न्यौतो नई मिलो। कोनऊँ लड़का को ब्याऔ तो कर नई रये, जौन न्यौतो न मिलो तो न गये। ऐसें उतसौ में बढ़–चढ़ के भाग लऔ चाईये। बैसे आयोजन समिति के लोगन की कोशिश तो पूरी रात है, कोऊ बिसर न जाय, पर बड़े आयोजनन में ऐसो तो होई जात है। ईसे लोगन खां मलाल भी न भओ चाईये। सांस्कृतिक विरासत की रक्षा को ठेका कौनऊँ एक को नई, हम सबई जन को है जब लौ जा भावना लोगन के मन में घर न कर जैहे, तब लौ ऐसी भूलें–चूकें तौ होतई रानें हैं।

—राजमहल परिसर, छतरपुर म.प्र.☐

बुन्देली कविता

जौ लरका...

— डॉ. अमिता अरजरिया

जौ लरका नेता बन जातो
खूबई नाम कमातो
बड़े बूड़न के आसीसन सें
अपनौ हुनर दिखातो। जौ लरका....।।
नई रंभाती भैंस सार में
गैरज घर बन जाते
कार देखकें पुरा परोसी
हओ जू हओ जू काते
लुक जाते सब ऐब लला के
भइया जू कहलातो। जौ लरका....।।
नई पिसान पीसतीं गुइयां
न पनिहारिन के बतकारे
न बैला की जोड़ी को
रातब कोऊ मिलवातो
एक बटन के दाबत ही
तुक तुक, पीं–पीं हुर्र सुनातो। जौ लरका....।।
चोर उचक्का डाकू लुच्चा
सब कहते अच्छा भई अच्छा
अपने मम्मा अपने कक्का
हाथ जोर सब ठांड़े होते
नोटन वोट बिकवाते
गिनते दिनभर नोट सबई
घरई टकसाल खुलवातो। जौ लरका....।।

— चौबे कॉलोनी, छतरपुर ☐

खड़ी फागें

— प्रस्तुति मुन्नीलाल चौबे

खर के अरि बोले सुनहु सरवा, खामोस रखौ दिल हारन खां।
खटकत उनके करतब हमखां, खबर करौ मनि रचो लखा।
खल दुस्सासन कसर नाराखी, खैंचत खैंचत थके बखा।
खोबै कह 'कल्यान' अरी खां, खेत पै भाई बनाय रखा।

गिरधर जू समझावन लागे, गह लेव धनुस कैसें त्यागे।
गये हम तुम हित जुरजोधन ढिग, गाँव पांच ना दमें मांगे।
गम्म खाई ना कोई कहेंगे, गये हार रन सें भागे।
गलन गलन 'कल्यान' गबेंगे, गीत अजस के तुम आगे।।

— पीरा, छतरपुर म.प्र. ☐

चौकड़ियाँ

— डॉ. कुन्जीलाल पटेल 'मनोहर'

खुरमा लुचई ठडूला कां गये, मुरका लटा बिला गये।
डुबरी लपसी मठा महेरौ, सपनन नई दिखारये।
समां बसारा कुटकी कांकुन, कुदवन खां भैरा गये।।
भतुआ चैंच नौनियां पोई, फांग बिलइया खा गये।
भूल गई पड़रैन 'मनोहर', अजब जमाने आ गये।।
काँ गये तरसा राँट बरारु, भौंरा भौंरी भारू।
बैंड़ा माल सिंगारे भैंसा, कोंठा पई किलवारू।
भौंन गदेलौ जेर चोइया, बदरौट अरैया मारू।।
जुआँ तरौंची सैल पचाई, पनरा मलई पनारू।
अरा अठारा बरये 'मनोहर', ऐरा सैरा ढारू।।
परगओ असर बिदेसी भौंड़ा, बिगरे मौंड़ी मौंड़ा।
अमल करें गुटका सिगरेटें, छोड़ लायची डौंड़ा।
बोतल चलन लगे दारू के, देत चाय जां बौंड़ा।।
लोकलाज बेलाज देखलो, उघरो सीना चौंड़ा।
देख घिनौंनो चलन 'मनोहर', जी में लगो कसौंड़ा।।
बोलें जेठन सें अरयाकें, बहु बिटियां गरयाकें।।
सात पिड़ी की लाज उघारी, ढकतीं नइयां ढांकें।
कक्का बब्बा हाल देखकें, रै गये सिमट ससाकें।।
नई फैसन के उन्नन में हो, सब झाँकौ बिन झांकें।
ज्वानी ने धर दई 'मनोहर', लोकलाज घरयाकें।।

—३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

घबरा कें झट उठ बैठो मैं, सोउत हतो अटारी में।
बुन्देली उच्छयाव देखबे, जैहौं आज बसारी में।।
भागो दौड़ो फिरो और झट, बैठ गओ फिर लारी में।
बुन्देलखण्ड कौ वैभव देखन, पौंचो तुरत बसारी में।

— काशीराम अकेला, सहकारी प्रेस, छतरपुर ☐

बुन्देलखण्ड की झांकी बना बुन्देली उत्सव

— भरत श्रीवास्तव

बुन्देली और बसंत मानों मिश्री और मधु। जी हां, बुन्देलखण्ड में बसंत ऐसा ही है जैसे किसी ने शहद में मिश्री घोल दी हो। बुन्देलखण्ड वैसे ही प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर है नदी–नाले, पहाड़–घाटी, वन–खेत, झरना–प्रपात, लता–पेड़–झाड़ी और सोंधी–सोंधी माटी। जिस पर लोगों द्वारा बनाये पहाड़ टौरियों में मंदिर–मड़िया, बावड़ी–तालाब, झील–बांध, बंधान और हरियालियों के बीच गांव। गांव में मिट्टी के बने घर, घरों के लाल–काले खपरैल और गांव के बीच चौपाल, कई मंदिर, दिवाला, अटाले, अथाई और इन मंदिरों में होती पूजा बजते घड़े घड़ियाल, त्योहारों और उमंग उत्सव सामूहिक नृत्य गायन, और अनेक परम्परागत सामूहिक उत्सव भरे आयोजन। यही नहीं बुन्देलखण्ड का हर घर यहां की अनोखी संस्कृति का केन्द्र है। जहां आये दिन किसी न किसी त्योहार की गूंज रहती है। पकवान बनते हैं भजन, कीर्तन और न जाने क्या–क्या होता है, यहां की बात ही अलग है अन्य संस्कारों में भी अनेकों बार विवाह जैसा उत्सव देखने को मिलता है। यह सब ही तो इस बुन्देलखण्ड की संस्कृति है, परम्परायें है। यहां का जीवन है और फिर हर मौसम के अनुसार उत्सव होते हैं। गरमी के उत्सव परम्परा में अलग तो शरद ऋतु की छटा अलग परन्तु जो बसंत का उत्साह है वह तो बिल्कुल ही निराला।

लेकिन लोग कहते हैं कि अब वह बुन्देलखण्ड कहां बुन्देली के रस पगे समारोह कहां? वे उत्सव, वे कार्यक्रम आयोजन भी कहां? आधुनिकता ने, समय के परिवर्तन ने जीवन की आपाधापी में बहुत कुछ डूबता जा रहा है, खोता जा रहा है, मिटता जा रहा है, अत: जरूरत इस बात की महसूस हुयी है बुन्देली की जीवन्तता को मनमोहनी संस्कृति को प्रेरणादायक परम्पराओं को न केवल जीवित रखा जावे वरन उनको घर–घर तक जन–जन तक पहुंचाया जावे। इसी उद्देश्य को लेकर बुन्देलखण्ड के एक गांव बसारी में आज से सात वर्ष पूर्व बुन्देली उत्सव की शुरूआत की गयी। बुन्देलखण्ड के ही एक सपूत बुन्देली में रचे–बसे, पले–बढ़े, **''शंकर प्रताप सिंह जू बुन्देला''** द्वारा। जिन्हें बुन्देलखण्ड की परम्परानुसार उन्हें दिये गये स्नेहिल और प्यार भरे नाम ''मुन्नाराजा'' के रूप में लोग जानते हैं ने यह बीड़ा उठाया था और अब तक छ: सफलतम बुन्देली उत्सवों का आयोजन ग्राम बसारी में हो चुका है तथा सातवां उत्सव हो रहा है।

अब तो यह निश्चित कर लिया गया है कि हर साल बसंत पर्व पर यानि बसंत पंचमी से यह आयोजन होगा जो एक सप्ताह तक तो चलेगा ही। पिछले वर्ष की भांति वर्ष २००२ में बसंत पंचमी पर छठवां बुन्देली उत्सव प्रारम्भ हुआ था जिसका बसारी के स्टेडियम में उद्घाटन १७ फरवरी को किया गया था। उद्घाटन का रंगारंग समारोह सभी दर्शकों के दिलों को छू गया। जिसमें छतरपुर खजुराहो एवं अन्य स्थानों के स्कूली बच्चों ने स्टेडियम मैदान के सामूहिक नृत्य और गायन, वादन आदि प्रदर्शित किये गये। इस उत्सव में बुन्देलखण्ड के खेलों का बड़ा ही मनोरंजक, रोमांचक एवं उन्माद भरा आयोजन होता है। इस आयोजन के दो पहलू है एक — महाराजा छत्रसाल स्मारक टूर्नामेन्ट, जिसमें बुन्देलखण्ड के भूले बिसरे खेलों के साथ साथ प्रचलित एवं लोकप्रिय खेलों को भी शामिल किया गया है और दूसरा पहलू है सांस्कृतिक कार्यक्रमों का जिसमें बुन्देली लोक परम्पराओं एवं विधाओं के अनेक आयोजन प्रतियोगिताओं के रूप में होते हैं। पिछले वर्ष भी इन्हीं दो पक्षों को समेटे इसको बुन्देली उत्सव बड़े ही सफलतम रूप में सम्पन्न हुआ था।

सात दिनों तक लगातार दिन में खेल–कूद तथा रात में सांस्कृतिक कार्यक्रम चलते रहे। छठवें उत्सव के पहले दिन बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय खेल कबड्डी की प्रतियोगितायें प्रारम्भ हुयी साथ ही बालीबाल के मंच भी शुरू हुये इनके बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों से आयी कबड्डी और बालीवाल टीमों ने भाग लिया। जिसका भरपूर आनन्द दर्शकों ने लिया। इसके साथ ही सौ, चार सौ, और आठ सौ मीटर की सीनियर और जूनियर ग्रुप की दौड़ों की रोमांचक प्रतियोगितायें हुयीं।

शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ और बालीवाल के मैच हुये साथ ही बुन्देलखण्ड के एक प्रिय खेल चौपर की भी प्रतियोगितायें हुयी। साथ ही लम्बीकूद ऊँचीकूद की प्रतियोगितायें हुयी। इसी दिन शाम को स्कूली बच्चों के अनेक मनभावन सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। इस कार्यक्रम में अधिकतर ग्रामीण स्कूल के बच्चों ने भाग लिया और बड़े ही मनोहारी तथा परिवर्तन एवं प्रभावकारी नृत्य गायन, प्रदर्शन आदि प्रस्तुत किये गये।

छठवें बुन्देली उत्सव के तीसरे दिन कबड्डी और बालीवाल के शेष बचे किये हुए साथ ही फायनल मैच खेले गये जिनमें दर्शकों का उत्साह देखते बनता था। शाम को बुन्देली एवं अन्य नाटकों की प्रतियोगितायें हुयी इस दिन खजुराहो के सांसद सत्यव्रत चतुर्वेदी मुख्य अतिथि के रूप में शामिल हुये। छतरपुर के समाजसेवी डॉ. सुभाष चौबे विशिष्ट अतिथि रहे। मुख्य अतिथि सांसद चतुर्वेदी ने बुन्देली विकास संस्थान द्वारा प्रकाशित ''बुन्देलखण्ड की साहित्य की धरोहर'' पुस्तक का विमोचन भी

किया जिसका सम्पादन डॉ. बहादुर सिंह परमार, डॉ. हरिसिंह घोष एवं के.एल. पटेल ने किया।

नाटक प्रतियोगिता में चन्द्रनगर की एकता लोक कला मण्डल द्वारा प्रस्तुत नाटक ''समझ'' प्रथम रहा दूसरा भारतीय जननाट्य कलामंच इप्टा द्वारा प्रस्तुत ''भोलाराम का जीव'' नाटक रहा। तीन और नाटक भी इस दिन प्रस्तुत किये गये।

छठवें बुन्देली उत्सव के चौथे दिन यानी २० फरवरी को पूरा दिन रोमांचक दंगल की गहमा गहमी से भरा रहा। छोटे से गांव का यह स्टेडियम खचाखच भरा था दूर दूर के पहलवानी की कुश्ती और उनके दांव पेंच, हार जीत की एक एक कला को देखकर दर्शक उत्साह से भरे रहे। इसी दिन बुन्देलखण्ड के एक बड़े प्रचलित खेल गिल्ली डण्डा की प्रतियोगितायें भी हुयी।

शाम को बुन्देलखण्ड के विविध परम्परागत गायन और नृत्यों की प्रतियोगितायें हुयीं। जिसमें दिवारी नृत्य की टोलियों ने खूब धूम मचाई, साथ ही रावला नाचा गया तो कछियाई, ढिमरयाई और चमरयाई बैठक के गायन हुये साथ ही बधैया नृत्यों ने तो समा ही बांध दिया सागर की पार्टी का बधैया नृत्य देखते ही बना। इस चौथे दिवस के कार्यक्रम में प्रदेश के तत्कालीन लोकनिर्माण राज्य मंत्री जो अब जन सम्पर्क राज्य मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह ने मुख्य अतिथि के रूप में हिस्सेदारी की और अपने सारगर्भित उद्बोधन में बुन्देली रीति रिवाजों, की भूरि–भूरि प्रशंसा की। छठवें उत्सव के पांचवे दिवस के अन्तर्गत दिन में चौपर और गिल्ली डण्डा के फायनल मैच चलते रहे। शाम को आल्हा गायन की गूंज से पूरा स्टेडियम रोमांच और वीर रस से सराबोर हो गया। दल दल घोड़ी नृत्य, ख्याल, गायन के साथ ही सोहरे दादरे, बिलवारी, कहरवा, गारी, लमटेरा, चक्की गीत कार्तिक गीतों की प्रतियोगितायें देर रात तक चलती रहीं।

इस दिन प्रदेश के राजस्व राज्य मंत्री वीर सिंह मुख्य अतिथि थे उन्होंने **बुन्देली बसन्त २००२** पत्रिका का विमोचन भी किया और श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' का साहित्य सेवा के लिए सम्मान पत्र भी प्रदान किया। छठवें उत्सव का छठवां दिन बड़ा ही उत्साह और रोमांस से भरा रहा। इस दिन बैलगाड़ी दौड़ का आयोजन हुआ। समारोह स्थल से कुछ दूर खुले बड़े मैदान में यह प्रतियोगिता हुयी। जिसमें २७ बैलगाड़ियों ने हिस्सा लिया और ढाई घंटे चली यह दौड़ प्रतियोगिता लुगासी के मुन्नीलाल पटेल ने जीत ली। जिन्हें ५१०० रुपये नगद एवं सजी धजी बैलगाड़ी पुरस्कार स्वरूप मिली। गोमाखुर्द के बद्री सिंह की बैलगाड़ी द्वितीय स्थान पर रही।

शाम को सजे धजे मंच पर बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध राई नृत्य हुआ। राई नृत्य को देखने दूर–दूर से लोग आये और पूरा स्टेडियम भर गया। जहां देखो वहां लोग ही लोग। सर्दी का समय रात में अच्छी खासी कड़ाके की सर्दी होने के बाद भी लोग राई देखने को उमड़ पड़े। यह आयोजन देर रात तक चलता रहा जिसमें विभिन्न दलों द्वारा फाग गायन तथा राई नृत्य प्रतियोगिता में भाग लिया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के तौर पर महाराजपुर के विधायक श्री रामदयाल अहिरवार उपस्थित रहे। उनके द्वारा रामराजा ओरछा के परम भक्त, साहित्य साधक तथा वयोवृद्ध इतिहास लेखक ठाकुर लक्ष्मण सिंह गौर का सम्मान किया गया। इन्हें राव बहादुर सिंह स्मृति सम्मान २००२ के तहत ११०० रुपये नकद शाल, श्रीफल तथा सम्मान पत्र भेंट किया गया।

समारोह का समापन २३ फरवरी को हुआ। इस अवसर पर दिन में बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता हुयी। जिसमें कु. सुधा अग्रवाल तथा रुचि अग्रवाल के स्टाल ने प्रथम स्थान तथा खजुराहो के अशोका होटल ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। बालू सेठ सहित अनेक प्रतिभागियों ने अपने स्टाल लगाकर इस प्रतियोगिता में भाग लिया। इस प्रतियोगिता का शुभारम्भ टीकमगढ़ रियासत के पूर्व नरेश श्री मधुकर शाह ने किया। इसी दिन अश्वनृत्य प्रतियोगिता हुयी जिसमें करीब आधा सैकड़ा अश्वों ने भाग लेते हुए अनेक अचरज भरे करतब दिखाये। जिन्हें देखकर उपस्थित दर्शकों ने दांतों तले उंगली दबा ली। संध्या में समापन समारोह प्रदेश के लोक निर्माण राज्य मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। उन्होंने सभी विजेताओं, उप विजेताओं को पुरस्कार वितरित किये। इसके बाद राई आल्हा, ढिमरयाई, बधइया तथा कछयाई की प्रस्तुतियां हुयीं। इसी के उपरान्त राई नृत्य का विशेष प्रदर्शन किया गया। समापन के दिन ही बुन्देलखण्ड के पुरानी विधा नौटंकी का विशेष प्रदर्शन कानपुर के कलाकारों द्वारा किया गया।

इस तरह सात दिन चले छठवें बुन्देली उत्सव में अनेक आकर्षक, मनोरंजक, रोमांचक, आनन्ददायक कार्यक्रम हुये। इस समारोह के अन्तर्गत विंध्यकोकिल पं. भैया लाल व्यास को उनकी साहित्यिक साधना के लिए १८ फरवरी को सम्मानित किया गया। जबकि अगले दिन स्व. शंकर लाल महरोत्रा को बुन्देलखण्ड की सेवाओं हेतु मरणोपरान्त सम्मानित किया गया। जिनका सम्मान पत्र उनकी पत्नी ने प्राप्त किया। इस समारोह में प्रतिदिन ५ से १५ हजार लोग शामिल हुए, इसी दौरान देश–प्रदेश के अनेक मंत्री, विधायक सांसद जन प्रतिनिधि अधिकारी भी सम्मिलित हुए। इस उत्सव के आयोजन का मुख्य श्रेय यद्यपि श्री शंकर प्रताप सिंह 'मुन्नाराजा' को जाता परन्तु वे कभी भी इसे स्वीकारते नहीं और सदैव यह कहते हैं कि यह आयोजन उन तमाम लोगों के सहयोग से हो रहा है, जो प्राण प्रण से दिन–रात लगते हैं और वही इस सफलता के वास्तविक हकदार हैं।

—नल विभाग के सामने,
छतरपुर □

कार्टूनों में बुन्देली उत्सव

— नीरज सोनी





— पिपरसानिया मोहल्ला, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव के दौरान सम्पन्न होने वाली प्रतियोगिताओं की जानकारी

दिवसीय कार्यक्रम

उद्घाटन समारोह, कबड्डी, बॉलीबाल, गिल्ली–डण्डा, चौपर, १०० मी. (जूनियर/ सीनियर), ४०० एवं ८०० मी. दौड़, लम्बीकूद/ ऊँचीकूद (जूनियर/ सीनियर), कबड्डी, बॉलीबाल, चौपर फाइनल मैच, कुश्ती प्रतियोगिता (दंगल) बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता, अश्व नृत्य प्रतियोगिता, बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता

सांस्कृतिक कार्यक्रम

स्कूली बच्चों के बुन्देली आधारित कार्यक्रम तथा बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता (सीनियर/जूनियर), बुन्देली नाटक प्रतियोगिता, दिवारी, रावला, कछयाई, बरेदी नृत्य, दलदल घोड़ी, ख्याल, कहरवा, लमटेरा, कार्तिक गीत, गौटें गायन, प्रतियोगिता, आल्हा (सैरो), बधइया, ढिमरयाई, चमरयाई बैठक, कांड़रा, बहुरूपिया, सोहरे, दादरे, बिलवारी, गारी, बनरे, सैर, फाग और राई नृत्य प्रतियोगिता, समापन समारोह एवं पुरुस्कार वितरण, आल्हा, बधइया, दलदल घोड़ी, ढिमरयाई तथा राई नृत्य का फाइनल प्रदर्शन।

इतिहासकार दीवान प्रतिपाल सिंह के नाम पर सम्मान देने का निर्णय

बुन्देली विकास संस्थान बसारी ने बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध इतिहासकार स्व. दीवान प्रतिपाल सिंह, पहरा की स्मृति में इस वर्ष से बुन्देलखण्ड के ख्याति प्राप्त एवं शोधात्मक काम करने वाले इतिहासकारों को सम्मानित करने का निर्णय लिया है। यह प्रथम पुरस्कार नई दिल्ली निवासी श्री महेन्द्र प्रताप सिंह को देने का निर्णय जूरी ने सर्वसम्मति से लिया। ज्ञात हो कि श्री महेन्द्र प्रताप सिंह ने छत्रसाल प्रमाणावली का संपादन कर महत्वपूर्ण कार्य किया तथा गोरे लाल द्वारा लिखित छत्रप्रकाश का पुनर्प्रकाशन कर सम्पादन किया।

बुन्देली कविता

दूसरे में आबे की कान लगे...

— **श्रीमती विजयश्री बुन्देला**

बुन्देली उतसौ शुरू हो गओ भइया
अब छह से बारह लौ को टेंम नइयां,
कौनऊं खों नईं दिखानें अब घर में
मुन्नू की बाई, भोलू की काकी
गली मोहल्लन, पुरा–खोरन की नंद भौजाईं,
जांगन तांगन टोलियन में बँटीं लुगाईं
कौनऊं मेला में माँदी लगवाउतीं
मोंड़ा मोंड़ियन खां झूला झुलवाउतीं
कछू चुरियाँ बिंदी फीता के सौदा करतीं
तौ कछू 'पायल की झंकार' और प्रदर्शनी
में झुण्ड के झुण्ड मड़राते लोग लुगाईं
शाम भई टाट, फट्टी लें
प्रोग्राम में अपनी–अपनी जांगा बनातीं
आंगे पीछे की जांगा के लानें
लड़त–झगड़त लोग लुगाईं
घर के 'लोग' लगे हैं व्यवस्था में
साग पूड़ी पहुँच गई 'पैकिटन' में
औरतन खों देखनें बच्चन खों खानें
ऐंसई में जे सात दिना निकर जानें
उतसौ देखबे ऐंसे रिश्तेदार भी आंन लगे
जोंन कभउँ रात रुकत न ते
अब सात दिनां, रुकबे की कांन लगे
जिनके नइयां कछू, बे घबरान से लगे
उतसौ के अटाले में लगाई जुगाड़
दोऊ टेंम पूड़ी सब्जी सें छकानें पाहुँने
जौ उतसौ बीतो नइयां
दूसरे में आबे की कान लगे।

— राजमहल परिसर, छतरपुर ☐

सूचना—

बुन्देली विकास संस्थान बसारी ने बुन्देलखण्ड के निवासी अथवा बुन्देली में लिखे इतिहास, साहित्य, संस्कृति, कला आदि की उपयोगी पुस्तकों के प्रकाशन का निर्णय लिया है। आप की दृष्टि में कोई उपयोगी पाण्डुलिपि हो जिसका प्रकाशन आर्थिक अभाव के कारण न हो पा रहा हो और उसका प्रकाशन आप जरूरी महसूस करते हों तो बुन्देली विकास संस्थान से सम्पर्क करें। ☐

संपर्क सूत्र : डॉ. बहादुर सिंह परमार
४/२, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर म.प्र. ४७१००१



बुन्देली उत्सव २००३ आयोजन समिति, बसारी

संरक्षक मण्डल :

१. श्री राजा पटैरया, मंत्री, जनशक्ति नियोजन विभाग, म.प्र. शासन, भोपाल।
२. श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी, सांसद–खजुराहो क्षेत्र
३. श्री मानवेन्द्र सिंह, राज्य मंत्री, लोक निर्माण विभाग
४. श्री शंकर प्रताप सिंह, अध्यक्ष, म.प्र.कृ.ग्रा.वि. बैंक, भोपाल
५. श्री देवकीनन्दन पाण्डेय अध्यक्ष, जिला पंचायत, छतरपुर
६. श्री दीवान त्रिलोक सिंह सदस्य, जिला पंचायत
७. श्री रामानन्द शुक्ल, (भा.प्र.से.) जिला कलेक्टर, छतरपुर
८. श्री रवि गुप्ता, (भा.पु.से.) पुलिस अधीक्षक, छतरपुर
९. श्री पुष्कर सिंह (भा.व.से.) मुख्य कार्यपालन अधिकारी, जिला पंचायत, छतरपुर

आयोजन समिति :

१. श्री रामदयाल अहिरवार विधायक, महाराजपुर
२. श्री विजयबहादुर सिंह बुन्देला विधायक, चन्दला
३. श्री उमेश शुक्ला विधायक, छतरपुर
४. डॉ. स्वामी प्रसाद लोधी विधायक, बड़ामलहरा
५. श्री कुँ. विक्रम सिंह 'नाती राजा' अध्यक्ष, नगर पंचायत, खजुराहो
६. डॉ. ए.एस. खान, छतरपुर
७. श्री जगदीश शुक्ला अध्यक्ष, जिला कांग्रेस, छतरपुर
८. श्रीमती ललिता यादव अध्यक्ष, नगरपालिका, छतरपुर
९. श्री बहादुर सिंह चन्देल अध्यक्ष, म.प्र. कृ. और ग्रा. वि. बैंक छतरपुर
१०. श्री बहादुर सिंह बुन्देला, अध्यक्ष, जनपद राजनगर
११. श्री स्वरूपचन्द्र जैन, छतरपुर
१२. श्रीमती चन्द्रप्रभा कोरी
१३. सुश्री उमा यादव, पूर्व विधायक, बड़ामलहरा, निवासी छतरपुर
१४. श्री राजेश महतों, अध्यक्ष, सद्भाव नागरिक बैंक, छतरपुर
१५. श्री जगदीश तिवारी, एडवोकेट, छतरपुर
१६. डॉ. रज्जब खान सम्पादक, दैनिक फौलादी कलम
१७. सुश्री ऊषा सोनी, राजनगर
१८. श्री राम सेवक अग्रवाल, बसारी

स्वागत समिति :

१. श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल, छतरपुर
२. श्री पृथ्वीसिंह बुन्देला 'बब्बाजू', छतरपुर
३. श्री गुलाब चन्द्र, निदेशक आकाशवाणी छतरपुर
४. प्रो. के.डी. मिश्र प्राचार्य, महाराजा कालेज, छतरपुर
५. श्री गंधर्व सिंह गौर, जिला शिक्षा अधिकारी, छतरपुर
६. श्री देवेन्द्र प्रताप सिंह, बसारी
७. श्री भारत कृष्ण देव बुन्देला
८. श्री राजकपूर तिवारी, छतरपुर
९. श्री केदारनाथ अग्रवाल, बसारी
१०. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला, बसारी

खेलकूद व्यवस्था समिति :

१. श्री संजय सिंह, छतरपुर
२. श्री आदित्य दुबे, बसारी
३. श्री पर्वत सिंह, बसारी
४. श्री शरवत अली, बसारी
५. श्री प्रदीप अबिद्रा, जिला खेलकूद अधिकारी छतरपुर
६. श्री जानकी प्रसाद विश्वकर्मा, छतरपुर
७. श्री अशोक नायडू, छतरपुर
८. श्री कल्याण सिंह चौहान, छतरपुर

कृषि मेला समिति :

१. श्री धनीराम पटेल, उपाध्यक्ष, जिला पंचायत छतरपुर
२. श्री डीलमणि सिंह, अध्यक्ष, कृषि मण्डी छतरपुर
३. श्री लखन लाल तिवारी, नयागांव
४. श्री नरेन्द्र अवस्थी, गंज
५. श्री प्रभात अग्रवाल, छतरपुर
६. श्री पुष्पेन्द्र सिंह 'पप्पू राजा'
७. श्री कमलेश घोष, छतरपुर
८. विकल्प पाठक छतरपुर

जूरी आफ अपील (खेल कूद) :

१. श्री त्रिलोक सिंह, बसारी
२. श्री भारत कृष्ण देव, बसारी
३. श्री छोटे खान क्रीड़ा अधिकारी, छतरपुर
४. श्री सुरेश जैन, पी.टी.आई., छतरपुर
५. श्री भारत भूषण मिश्रा, छतरपुर

सांस्कृतिक आयोजन समिति :

१. श्री राकेश शुक्ला, पत्रकार, छतरपुर
२. श्री देशराज पटैरिया, छतरपुर
३. श्री अजय अवस्थी, खजुराहो
४. श्री बहादुर सिंह परमार, छतरपुर
५. श्रीमती उर्मिला पाण्डेय
६. श्री सुरेश चतुर्वेदी, छतरपुर
७. श्री राजू विश्वकर्मा, छतरपुर
८. श्री बी.एन. वर्मा, प्राचार्य बसारी
९. डॉ. मुराद अली, छतरपुर
१०. श्री प्रमोद दीक्षित, संवाददाता नवभारत, छतरपुर
११. श्री बद्री प्रसाद खरे निरंकार, छतरपुर
१२. श्री राकेश खरे, छतरपुर

पंजीयन समिति :

१. श्री राममूर्ति नामदेव, बसारी २. श्री कृपाराम पटेल, बसारी
३. श्री महेन्द्र शुक्ला, बसारी ४. श्री बीरेन्द्र खरे, बसारी
५. श्री नीलकण्ठ पटेल, कर्री

प्रचार प्रसार समिति :

१. श्री अजय वर्मा (जिला जनसम्पर्क अधिकारी)
२. श्री विनीत खरे ३. श्री सुरेन्द्र अग्रवाल
४. श्री लखन असाटी ५. श्री देवेन्दु पहारिया
६. श्री बॉली खान ७. श्री श्याम अग्रवाल
८. श्री भरत श्रीवास्तव ९. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल
१०. श्री हरि प्रकाश अग्रवाल ११. डॉ. अजय दोसाज
१२. श्री रविन्द्र व्यास १३. श्री अब्दुल रसीद खान
१४. श्री अशोक नायडू १५. श्री धीरज चतुर्वेदी
१६. श्री दिलीप बुनकर १७. श्री सुशील दुबे
१८. श्री कमलेश पाण्डेय १९. श्री रामावतार गुप्ता
२०. श्री हल्के चौरसिया २१. श्री जीतेन्द्र रिछारिया
२२. श्री पंकज पारासर २३. श्री दिलीप भाई
२४. श्री मन्नूलाल बेलदार २५. श्री शंकर लाल सोनी

बैलगाड़ी दौड़ समिति :

१. श्री आर.एन. चौबे २. श्री एच.एस. खरे
३. श्री भवानी दीन मिश्रा ४. श्री लखन लाल पटेल
५. श्री आर.एस. सोलंकी ६. श्री सावनेर, उपयंत्री
७. श्री मनीष सोनी, छतरपुर

अश्व नृत्य प्रतियोगिता समिति :

१. श्री रविन्द्र सिंह जी, गर्रोली
२. श्री बाबूराम चौरसिया, महाराजपुर
३. श्री रामबाबू ताम्रकार, छतरपुर
४. श्री पुरुषोत्तम सोनी, छतरपुर
५. श्री लोकपाल सिंह परमार, छतरपुर
६. श्री आर. सिंह खजुराहो
७. श्री यादव, खजुराहो
८. श्री मथुरा यादव, बसारी
९. श्री मन्नू लाल यादव, बसारी

प्रदर्शनी व्यवस्था समिति :

१. श्री बिहारी लाल अहिरवार, उपाध्यक्ष अपैक्स
२. श्री शेर सिंह उपसंचालक कृषि, छतरपुर
३. श्री जे.एस. ठाकुर, छतरपुर
४. श्री एस.बी. वरसैंया, छतरपुर
५. श्री बी.जी. पाण्डेय, छतरपुर
६. श्री नीरज सोनी, छतरपुर
७. श्रीमती अनवरी सिद्दीकी

कुश्ती प्रभारी :

१. श्री रफीक पहलवान, अतर्रा २. श्री मातादीन पहलवान, राजनगर
३. श्री घासीराम साहू, छतरपुर ४. श्री लुकमान खान उर्फ मैनू
५. श्री अवध अवस्थी राजनगर ६. श्री राजू प्रजापति छतरपुर
७. श्री भिम्मा पाठक

पुरस्कार वितरण समिति :

१. श्री जगदीश अरजरिया, छतरपुर
२. श्री सूर्यप्रताप सिंह 'चीनी राजा'
३. डॉ. एम.एल. पिपरसानिया ४. डॉ. जगत सिंह परिहार
५. श्री सईद बख्श खैयाम ६. श्री लखन लाल असाटी
७. श्री श्याम खरे, छतरपुर ८. श्री अजय खरे, छतरपुर
९. श्री श्रीकान्त शर्मा १०. श्री प्रतीक खरे

स्क्रीनिंग कमेटी :

१. श्री गुणसागर सत्यार्थी, टीकमगढ़
२. श्री नवल किशोर सोनी, मायूस
३. श्री बद्री खरे निरंकार, छतरपुर
४. श्री चन्द्रभूषण तिवारी, छतरपुर

मंच निर्माण प्रभारी :

१. श्री अनिल आठिया, विदिशा २. श्री प्रेमकिशोर खरे, छतरपुर
३. श्री अजमत अली, छतरपुर ४. श्री कमलेश मिश्रा, छतरपुर
५. श्री दिलीप पिपरसानिया, छतरपुर ६. श्री अनिल वर्मा, टिकरी

बुन्देली पोशाक प्रतियोगिता प्रभारी :

१. श्री बृजेन्द्र सिंह उर्फ मामाजी, खजुराहो
२. श्री जीतेन्द्र सिंह जित्तू, छतरपुर
३. श्री प्रमोद खरे, पत्रकार छतरपुर
४. श्री वेदप्रकाश चतुर्वेदी, छतरपुर
५. श्री केशव शर्मा, छतरपुर
६. श्री रवीन्द्र सोनकिया, छतरपुर
७. श्री नीरज खरे, छतरपुर
८. श्री संजीव सिंह राजपूत 'संजू'
९. श्री फैयाज अली, छतरपुर

बुन्देली नाटक प्रतियोगिता प्रभारी :

१. श्री हशमत छतरपुरी २. श्री अजमत अली
३. श्री अमरनाथ व्यास ४. श्री नवीन पाण्डे 'डब्बू'
५. श्री शिवेन्दु शुक्ला, छतरपुर

स्मारिका समिति :

१. डॉ. बहादुर सिंह परमार, छतरपुर
२. डॉ. कुन्जीलाल पटेल, छतरपुर
३. डॉ. हरिसिंह घोष, छतरपुर

☐

बुन्देली उत्सव एवं महाराजा छत्रसाल मेमोरियल टूर्नामेन्ट के आयोजन हेतु

ग्राम बसारी में कार्य हेतु समितियां

कार्यक्रम में सभी समिति के सदस्यों के क्रियान्वयन हेतु नियंत्रण समिति–

श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री भारत कृष्णदेव सिंह बुन्देला
श्री पर्वत सिंह बुन्देला
श्री शारदा प्रसाद शुक्ला

स्वागत व्यवस्था हेतु समिति –

श्री रामसेवक अग्रवाल
डॉ. अवधकिशोर अवस्थी
श्री संतोष अग्रवाल
डॉ. मुराद अली
डॉ. जगदीश अरजरिया
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री वृन्दावन रैकवार
श्री सिब्बा रैकवार

कृषि मेला समिति –

श्री प्रेमनारायण रूसिया
श्री आनंद शुक्ला
श्री जुगल किशोर गुप्ता
श्री सुरेश साहू
श्री बाबा अग्रवाल (महेन्द्रा ट्रैक्टर्स)
श्री असाटी जी (मैसी ट्रैक्टर्स)
श्री टंडन जी (टंडन बीज भण्डार)
श्री नन्नेभैया पटेल
श्री रमेश चौरसिया
श्री मोहन चौरसिया

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वितरण हेतु समिति –

श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पम्मू) प्रभारी
श्री किशोरी लाल अग्रवाल, प्रभारी
श्री धर्मेन्द्र खरे, सहायक
श्री संजय खरे
श्री मनोज अग्रवाल

मंच व्यवस्था समिति,

श्री शोभालाल गुप्ता, प्रभारी
श्री अच्छेलाल यादव, प्रभारी
श्री बारेलाल तनय धनुवां गड़रिया
श्री मुल्ली यादव
श्री लली गड़रिया
श्री हीरा गड़रिया
श्री बलराम अहिरवा
श्री बबलू तनय मठोर अहिरवार
श्री सुल्लू अहिरवार
श्री राकेश तनय सूरा अहिरवार
श्री पन्ना तनय सरिया अहिरवार
श्री मंगू तनय पिरबा अहिरवार
श्री मन्नू तनय गुटुआ गड़रिया

गेट व्यवस्था व झंडा बैनर समिति –

श्री शीतल प्रसाद रावत, प्रभारी
श्री महादेव यादव, प्रभारी
श्री मुल्ली अहिरवार
श्री भगवान दास तनय लल्लू अहिरवार
श्री दीपचन्द्र तनय अमरा अहिरवार
श्री देवराम तनय मुल्ली अहिरवार
श्री पप्पू तनय कन्दू अहिरवार
श्री किशोरी लाल कुशवाहा
श्री जगदीश प्रसाद पटेल 'पप्पू'

चाय–नाश्ता समिति (जलपान व्यवस्था समिति) –

श्री सुरेश अग्रवाल (पप्पू) प्रभारी
श्री शशिकान्त शर्मा, प्रभारी
श्री प्रकाश रैकवार
श्री राजेश रैकवार
श्री संतोष रैकवार
श्री सुरेन्द्र रैकवार

मेला व्यवस्था समिति –

श्री कैलाश अग्रवाल, प्रभारी
श्री केदारनाथ अग्रवाल
श्री सरजू यादव, प्रभारी
श्री अनारी लाल लोधी
श्री पुन्ना अहिरवार
श्री छोटा तनय रामदास अहिरवार
श्री दरवारी तनय बिहारी अहिरवार
श्री रमेश तनय बिरवा अहिरवार
श्री पंचा तनय पिरवा कोंदर

प्रदर्शनी व्यवस्था समिति –

श्री पंचम लाल विश्वकर्मा, प्रभारी
श्री महेश सोनी
श्री रामस्वरूप रावत
श्री धनुवां कोंदर
श्री रमेश तनय रजवा अहिरवार

विद्युत व्यवस्था समिति –.

श्री लल्ली जैन (समस्त व्यवस्था)
श्री ऋतेश अग्रवाल
श्री सुशील सोनी
श्री रामचरण रैकवार
श्री नत्थू कुशवाहा
श्री लक्ष्मी रैकवार
श्री सौकीलाल कोंदर
श्री बाबूलाल कोरी

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के तीन कमरों में) –

श्री लखन यादव, प्रभारी
श्री परमानन्द यादव, प्रभारी
श्री रामस्वरूप (दस्सू) रैकवार
श्री राजू तनय बल्दुआ रैकवार
श्री गज्जू तनय बिहारी लाल
श्री कल्लू तनय लल्लू अहिरवार
श्री मुकेश विश्वकर्मा (भोजन व्यवस्था)
श्री रामपाल सिंह (भोजन व्यवस्था)

आवास व्यवस्था समिति (स्कूल के अन्य तीन कमरों में) –

श्री वृन्द्रावन राजपूत (घस्सू) प्रभारी
श्री यूनुस 'इद्दूखां', प्रभारी
श्री कैलाश तनय पंचू रैकवार
श्री कलन तनय सेवा लाल रैकवार
श्री सुखलाल तनय भरोसा अहिरवार
श्री देशराज अहिरवार
श्री बाबूलाल कुशवाहा (भोजन व्यवस्था)
श्री रामकुमार यादव (भोजन व्यवस्था)

आवास व्यवस्था समिति (आर.आई.क्वार्टर में) –

श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी

श्री जगदीश तनय मुल्ली यादव
श्री कल्ला रैकवार
श्री रमेश तनय हरजुआ अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. १ में) –

श्री प्रभु यादव, प्रभारी
श्री शिब्बा रैकवार (पुन्नू)
श्री बिहारी लाल तनय हल्कइयां अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(न्यू कार्यालय भवन) –

श्री राजू तनय सरपटियां काछी, प्रभारी
श्री विजय रैकवार
श्री भगवान दास तनय तुलसीदास अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(पंचायत भवन क्र. २)

श्री राजेश अग्रवाल, प्रभारी
श्री सुरेश पटेल, भोजन व्यवस्था)
श्री सन्तू रैकवार
श्री नन्नाई कोंदर
श्री लछमन आदिवासी

टेंट व्यवस्था समिति –

श्री अखिलेश्वर प्रसाद चौबे, प्रभारी
श्री मिलन श्रीवास, प्रभारी
श्री सुरेश तनय तुलसीदास अहिरवार
श्री रामकृपाल यादव,

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति –

श्री आर. सिंह, प्रभारी
श्री मन्नू यादव, सहायक
श्री मथुरा यादव, सहायक
श्री खुमान धोबी
श्री रघुनंदन साहू

बैलगाड़ी दौड़ व्यवस्था समिति –

श्री देवी प्रसाद पटैल
श्री मथुरा प्रसाद पटेल
श्री भुमानीदीन पटेल
श्री परसू कुशवाहा
श्री करंजुआ अहिरवार
श्री बन्दू यादव तनय गुटियां अहिरवार
श्री प्यारे लाल अहिरवार
श्री रजुआ अहिरवार

कम्प्यूटर एवं पत्रलेखन समिति –

श्री महेन्द्र शुक्ला, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री अरूण शुक्ला, सहायक
श्री मंगल सिंह बुन्देला, सहायक

स्टेडियम में रात्रि सुरक्षा व्यवस्था समिति–

श्री सरमना चौकीदार
श्री मातादीन अहिरवार
श्री द्वारिका अहिरवार
श्री हीरालाल पाल
श्री टुड़ी कोंदर

खेल व्यवस्था समिति (कबड्डी) –

डॉ. बंगाली, प्रभारी
श्री कन्हैया लाल यादव, सहायक
श्री शहीद खान
श्री लखन प्रजापति
श्री मुकेश साहू
श्री हेमचन्द्र यादव (महादेव)
श्री मातादीन अहिरवार
श्री मिजाजी यादव
श्री गौरव राय
श्री रामस्वरूप रैकवार
श्री सुरेन्द्र रैकवार
श्री राकेश पटेल (कल्लू)
श्री राजू कुशवाहा

खेल व्यवस्था समिति (वालीबाल)–

श्री पर्वत सिंह बुन्देला, प्रभारी
श्री संजय सिंह, प्रभारी
श्री राममिलन पटेल
श्री एम.डी. विश्वकर्मा, सहायक
श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
श्री सिराज खान
श्री अनिल पटेल
श्री भागवत पटेल, कर्री
श्री दुर्गा अहिरवार
श्री विमलेश जोशी
श्री मुन्ना लाल अहिरवार
श्री दिनेश रैकवार
श्री अजय बाल्मीकि
श्री कमलेश कोरी
श्री सुरेन्द्र सिंह बुन्देला
श्री नीरज शुक्ला
श्री रवीन्द्र जैन
श्री रामकिशोर रैकवार
श्री सुरेश हरिजन

खेलकूद व्यवस्था समिति
(दौड़, कूद)–

श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
श्री छोटे खान
श्री विश्वनाथ सिंह बुन्देला
श्री अशोक जोशी
श्री राजू काछी तनय हरी कुशवाहा
श्री धर्मेन्द्र राजपूत
श्री खूबचन्द्र यादच
श्री हरिचरण अनुरागी

अखाड़ा व्यवस्था समिति –

श्री मातादीन रैकवार
श्री रामस्वरूप पटेल

चौपर व्यवस्था समिति –

पं. श्री गोकुल प्रसाद शुक्ला
श्री मूलचन्द्र जोशी
श्री सुल्ली रैकवार

कार्यालय प्रभारी –

श्री नवल किशोर अग्रवाल, प्रभारी
श्री भागवत राजपूत
श्री गयाप्रसाद साहू

पंजीयन समिति –

श्री बी.एन. वर्मा, प्राचार्य, प्रभारी
श्री राममूर्ति नामदेव
श्री कृपाराम पटेल
श्री महेन्द्र शुक्ला
श्री काशीप्रसाद प्रजापति

बैठक व्यवस्था समिति –

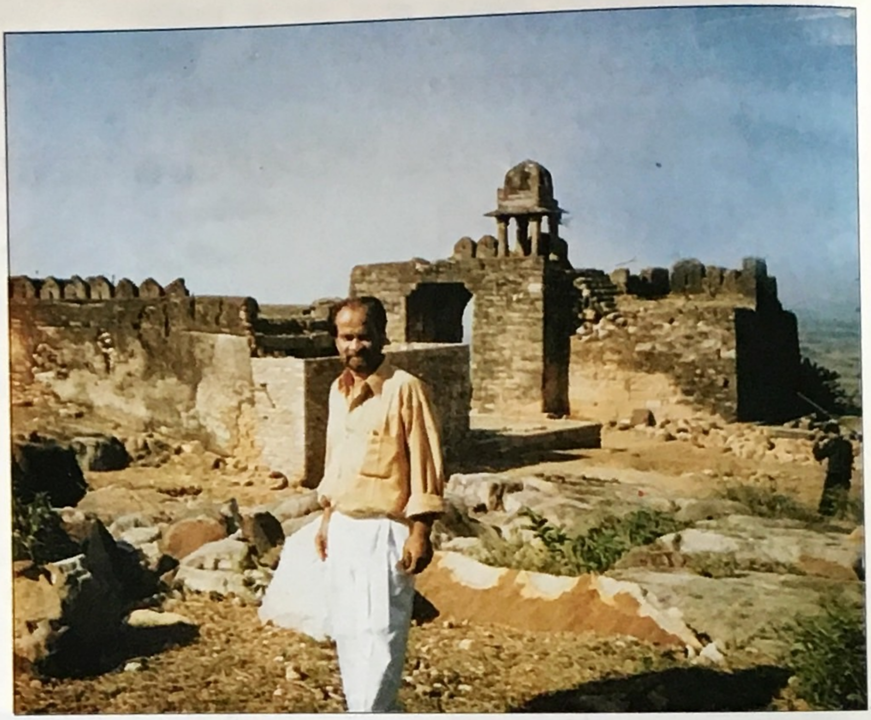
श्री कन्हैया लाल यादव प्रभारी
श्री बीरेन्द्र यादव 'मुन्नू'
श्री लखन तनय गोकुल यादव
श्री सिराज खां
श्री मथुरा यादव
श्री मुन्नू पटेल
श्री जीतेन्द्र सोनी
श्री सीताराम शिवहरे
श्री स्वामीदीन कुशवाहा
श्री भागचन्द्र कुशवाहा

बुन्देलखण्ड का गौरवशाली इतिहास, कला, संस्कृति और ऐतिहासिक धरोहर- चित्रमय झाँकी



महाराज छत्रसाल द्वारा बसाए गए छतरपुर में स्थित राजमहल का एक पार्श्व दृश्य।

अजेय किला कालिंजर



कालिंजर किले का एक विहंगम दृश्य।



कालिंजर किले में उत्कृत एक मूर्ति।

चरखारी



चरखारी की एक पुरातात्विक धरोहर के पार्श्व में किला।



बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक नगरी चरखारी के प्राचीन भवन का एक दृश्य।



चरखारी का एक ऐतिहासिक भवन।

बसारी
ग्रामीण पर्यटन



बसारी की ऐतिहासिक गढ़ी।



बसारी के तालाब का एक विहंगम दृश्य।

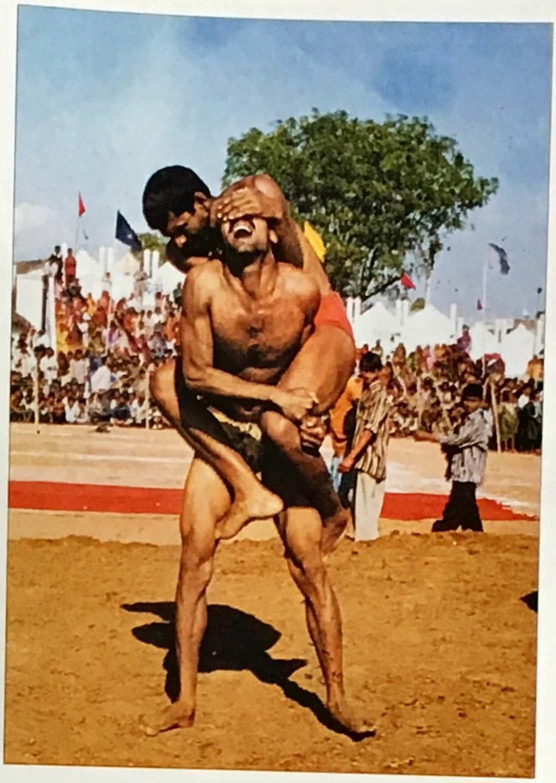


प्रदेश के प्रथम पर्यटक ग्राम बसारी स्थित तालाब में निर्माणाधीन पर्यटक विश्रामगृह।



बसारी स्थित पुरातात्विक धरोहर : छत्रसाल के वंशज गाजीशाह बुन्देला तथा अन्य वीरों के मकबरें।

बुन्देली उत्सव
ग्रामीण खेलकूद



दंगल प्रतियोगिता : पहलवानों के अनूठे दाँव।



मध्यप्रदेश शासन द्वारा बसारी को प्रथम पर्यटन ग्राम घोषित करने के उपरान्त प्रदेश के पर्यटन तथा संस्कृति मंत्री श्री अजय सिंह 'राहूल भैया', जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह 'भँवर राजा', पर्यटन सचिव श्री डी.के.सामन्त रे आदि ने बसारी आकर यहाँ की कार्य योजना पर चर्चा कर स्थल निरीक्षण किया। इसी अवसर का एक चित्र।



महाराजा छत्रसाल टूर्नामेंट में सम्पन्न कबड्डी मैच का एक दृश्य।



महाराजा छत्रसाल टूर्नामेंट के अवसर पर सम्पन्न हुई लम्बी कूद में छलॉग लगाती युवती।

रोमांच



महाराजपुर के श्री चौरसिया अपनी मूँछों से 20 ईटों को उठाते हुए।



अश्व नृत्य प्रतियोगिता में अपनी कला की प्रस्तुति देता एक घोड़ा ।



बैलगाड़ी दौड़ प्रतियोगिता में स्टाटिंग प्वांइट से दौड़ प्रारम्भ करती एक बैलगाड़ी।



खेलकूद के कार्यक्रमों का आनन्द लेते हुए भावविभोर दर्शक।



ढिमरयाई नृत्य के श्रेष्ठ कलाकार श्री चुन्नीलाल रैकवार तथा अन्य कलाकारों को पुरस्कार प्रदान करते हुए जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह 'भंवर राजा' तथा विधायक श्री ब्रिजेन्द्र सिंह राठौर आदि गणमान्य।



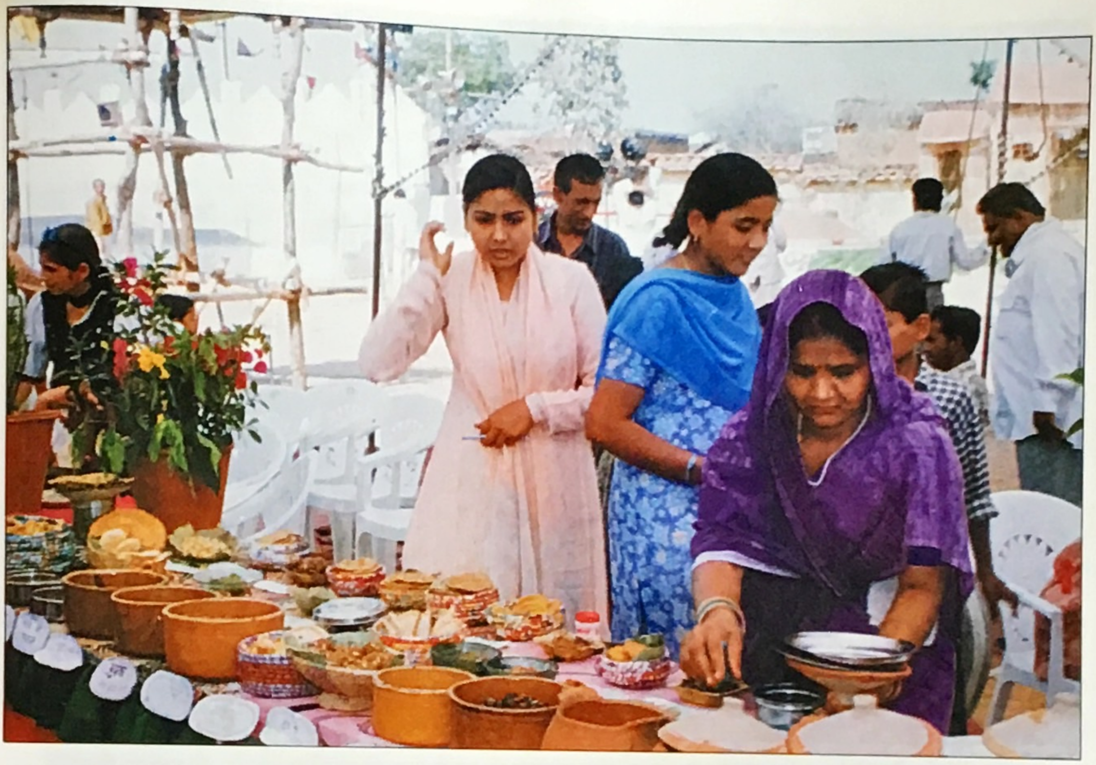
बुन्देली मंच पर बच्चों की एक टोली सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए।



महोबा के बाल कलाकार घट नृत्य प्रस्तुत करते हुए।



बुन्देली उत्सव के दौरान सम्पन्न होने वाली बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता सम्मिलित व्यंजनों का एक स्टॉल।



व्यंजन प्रतियोगिता का एक चित्र।



बुन्देली व्यंजन प्रतियोगिता में व्यंजनों का स्वाद लेते हुए टीकमगढ़ महाराज श्री मधुकर शाह जू।



बुन्देली मंच पर कछयाई प्रस्तुत करते हुए कलाकार।



बधैया नृत्य के विजेता कलाकारों के साथ जनसंपर्क मंत्री श्री मानवेन्द्र सिंह 'भँवर राजा'।



बुन्देली उत्सव के दौरान साहित्य विक्रय केन्द्र से पुस्तक क्रय करते हुए सहकारिता मंत्री डॉ. गोविन्द सिंह व सांसद श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी।



बुन्देली लोक संस्कृति के साधक श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', उरई को सम्मान पत्र व शाल श्रीफल भेंट करते हुए प्रदेश के राजस्व मंत्री श्री वीरसिंह रघुवंशी, बुन्देली समीक्षक डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त एवं अन्य गणमान्य ।



ओरछा निवासी इतिहासकार श्री लछमन सिंह गौर को सम्मान पत्र भेंट करते विधायक श्री रामदयाल अहिरवार व साहित्यकार श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल



दीप शिखा मंच, दतिया के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत नाटक 'हरदौल' का एक दृश्य।

चित्र : आर. के. स्टूडियो
श्री रामकुमार सोनी, छतरपुर